मानव और उसके जीवन की अवस्थाएँ

अलेक्जेण्डर तॉल्सतिख



राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लि
चमेलीवाला मार्केट, एम आई रोड जयपुर-302001

MAN AND HIS STAGES OF LIFE
का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक
गोविन्दलाल व्यास

1989 (RPPH 53)

मूल्य 50 00

भारती प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा दिल्ली 32 द्वारा मुद्रित तथा रामपाल द्वारा राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लि०, जयपुर की ओर से प्रकाशित

विषय-सूची

प्राक्कथन

जीवन की अवस्थाओ का अध्ययन

मानव और उसके जीवन की अवस्थाएँ (नामक पुस्तक) मे प्रस्तुत की गगी समस्याएँ वडे महत्व की है। आधुनिक मानव अपने जीवनकाल मे जिन बहुविध समस्याओ का सामना करता है वे, हमारी सम्मति मे, इस कारण पायी जाती हैं कि वतमान समय मे आयु-सापेक्ष सभावनाओ और दायित्वा मे सम्बधित अवधारणाएँ कुछ-कुछ अपविस्तृत है। उदाहरण के लिए, कुछ युवा लोगा की अपने व्यवहार के उत्तरदायित्व से बचने की इच्छा (यह मोटे रूप म 'शिशुता' की अवधारणा के अन्तगत आती है) यदा-कदा ऐसे असुदर रूप ग्रहण कर लेती है कि मानव-जीवन के जिस समय का हम यौवन के रूप मे वणन करत है उसे एक गभीर अध्ययन की वस्तु बनाना पडता है जिससे वह और अधिक स्पष्टता से स्थापित किया जा सके। और आज सारे ससार म बाल्यकाल के सम्बध मे जो असख्य समस्याएँ व्याप्त है उनके विषय मे क्या हो ? अधिकाश विचारधाराएँ अभी तक आयु विशेष के सक्रमणकालो—यथा बाल्यावस्था से किशोरावस्था, किशोरावस्था स युवावस्था आदि—के विशिष्ट दृष्टिकोण का पर्याप्त ध्यान नही रख पायी है। इसका सम्बध एक बडी समस्या से है यथा, मानव के पास तक एस किस माग स पहुँचा जाय जिससे इस जटिल ससार मे उसे उसका उचित स्थान प्राप्त करने मे सहायता दी जा सके। उस समस्या को सुलझाने मे आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान को एक ऐसा महत्वपूण कतव्य पूरा करना होगा जो किमी समाज की आत्म चेतना के विकास का अध्ययन करता है।

आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान को स्वय को समझने और अपने कार्यों के लिए तथा अपने आयु-वग के अनुसार अपन वतमान एव भविष्य मे जीवन के लिए अपने उत्तरदायित्व को जानने की योग्यता प्राप्त करने म सहायता देता है।

मेरी सम्मति म, आयु सापक्ष मनोविज्ञान केवल उस उपयुक्त भूमिका के लिए

तयारी कर रहा है जिसे वह ज्ञान के उस क्षेत्र म निभायेगा जिसका म्सी लखक मैक्सिम गोर्की न 'मानव के ज्ञान' के रूप म वणन किया है। आयु-सापक्ष मना-विज्ञान एक मानववादी विद्या विशेष है, किन्तु परिस्थितियो के दवाव के अधीन सबमे व्यापक अथ वाली मानववादी शिक्षा वतमान दशको मे प्राकृतिक एव तकनीकी विज्ञानो को अग्रणी भूमिका प्रदान करके पृष्ठभूमि म धकेल दी गयी है। सोवियत सघ के लिए ऐसी स्थिति नाजी जमनी के विरुद्ध महान् देशभक्ति-पूण युद्ध (1941-1945) के पश्चात पुनर्निर्माण के काल म उद्भूत एक व्याव हारिक आवश्यकता थी। युद्ध के दौरान नाजी अधिकृत सोवियत क्षेत्र म औद्योगिक एव कृपि व्यवसाय लगभग पूरी तरह नष्ट कर दिये गये थे। इसने सोवियत जनता के लिए माल उत्पादन के क्षेत्र पर सर्वाधिक सम्भव महत्व देना आवश्यक बना दिया। इसके अतिरिक्त, शान्तिकाल म भी, सोवियत सघ के लिए देश की सुरक्षा और विज्ञान एव तकनीकी विकास की आवश्यकताओ पर विशेष विचार करना आवश्यक हो जाता है ताकि सोवियत जनता शान्ति मे जीवित रह सके और किसी अन्य युद्ध की विभीपिकाओ से कभी सामना न हो।

किन्तु विज्ञान और तकनीक की क्रान्ति ने जहा सम्पूण सामाजिक विकास के अन्तगत मानववादी विपयो को आशिक रूप म पृष्ठभूमि म धकेल दिया है वही उन्हे तेजी से बढाया भी है। यह सत्य है कि आयु वर्गों की समस्या के सम्बन्ध मे आज के युवा लोग पहले की पीढियो की अपेक्षा अधिक सरलता से युग की नवीनताओ के अनुकूल बन जाते है और अधिक शीघ्रता से नवीन तकनीकी उपलब्धियो के अभ्यस्त हो जाते हैं। किन्तु उस अनुकूलता को कैसे नापा जाता है? विशेषज्ञ उल्लेख करते है कि अब बच्चे पहले की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से विकसित होते और वे वास्तव मे हो रहे है। उन्हे अधिक छोटी आयु से ही शिक्षा दी जा रही है। किन्तु क्या यही बात सदा रही है कि जिस रफ्तार से आज के बच्चे बढ रहे हैं क्या वह उनके व्यक्तित्व के अनुरूप गुणात्मक परिवतनो के साथ मेल खाती है?

वृद्धावस्था की समस्याओ की परिभाषाएँ भी नये ढग से की जा रही है। अब यह अधिक देर से आती है और इसका स्वरूप अत्यधिक परिवर्तित हो गया है क्योंकि युवको को महत्व देने पर भी वैज्ञानिक एव तकनीकी क्रान्ति सामाजिक उत्पादन के सभी क्षेत्रो म वयोवृद्ध एव अनुभवी श्रमिको को नियुक्त करने की आवश्यकता को नही मिटा सकती।

व्यक्तियो क मनोवैज्ञानिक रुख भी बदल गये है वे अपने काम के ज़रिये सामाजिक प्रगति की इतने लम्बे समय तक और इतने प्रभावशाली ढग से जितना सभव हो, आवश्यकता पूरी करने का प्रयत्न करते हैं। सक्षेप म, समस्याओ की

सख्या तजी से वढ चुकी है जबकि उनक अथ का ज्ञान प्राय अनुचित रूप से विलम्बित होता है। ऐसे सन्दर्भ मे **मानव और उसके जीवन की अवस्थाए** (नामक पुस्तक) का प्रकाशन, जिसका लेखक, एक मनोविज्ञानवेत्ता, मानव की आयु-सापेक्ष समस्याओ का यथेष्ट प्रतिपादन प्रस्तुत करता है, एक स्वागत योग्य घटना है। यद्यपि इन प्रश्नो के प्रति अभिरुचि ससार भर मे प्रत्यक्ष है, फिर भी, मुझे ज्ञात होता है, वैज्ञानिक इन प्रश्नो के सारतत्व की ओर प्रवृत्त होने मे अनिच्छुक बन रहे हैं जिनका सम्बध मानव-जीवन क आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान से है।

ज्यो ही मैंने अलेक्जेण्डर तॉल्सतिख की कृति का पढा मुझे उस दृश्य लेख का स्मरण हो आया जो एक दस वष के बालक के शब्दो से प्रारम्भ होता है, लेखक के द्वारा इस चरित्र का उपयोग प्रथम विश्व युद्ध के प्रारभिक वर्षों क वत्तात को प्रस्तुत करने के लिए किया गया था। वह बालक धूप से तप हुए रलवे-पथ के सिरे पर इसक भारी, तल की दुगन्ध तथा कोयले की धूल म आनन्द से साँस लेता हुआ एक वद्धा स्त्री क बगल म ही खडा हुआ था। उसका सारा रूप-रग और उसके चेहरे को भाव भगिमा एव उसकी जलती हुई आँखें सफर और लम्बी यात्राओ के लिए उसकी छिपी हुई लालसा को अभिव्यक्त कर रही थी। और वसन्त काल मे, जब सारी पृथ्वी पुनर्जीवित हो उठती है, क्या एक दस वष के बालक के मन मे भविष्य के लिए लालसा नही जगती। एक रेलगाडी उधर से गुजरी और उसे आँख से ओझल होते देखकर बालक न शिकायत की, "मैं अभी तक छोटा क्यो हूँ? मैं कितनी बार सुन चुका हूँ कि मैं बडा हो जाऊँगा? मैं इसे हर समय सुनता हूँ और फिर भी मैं हर तरह छोटा बना रहता हूँ?" वद्धा स्त्री ने उत्तर दिया, "चिन्ता मत करो, तुम बडे होओगे, विवाह करोगे, वृद्ध होओगे, इसके बाद मर जाओगे—ये सब बातें घटित होगी।"

जीवन और मृत्यु की अपरिहायता से सम्बन्ध रखने वाली यह वह सरल गणना है जो सामान्य जनता की विशिष्टता है। यह बहुत गहरा और प्राकृतिक दोनों ही है और मुझे यह ऐसा शास्त्रीय मानदड मालूम होता है जिसकी शब्दावली मे आधुनिक मानव भी पृथ्वी पर अपन अस्तित्व की सत्यता के समीप पहुँच सकता है अथवा अधिक सुस्पष्ट कह तो पहुँचना ही चाहिए। यह एक बाध्यता है, एव कत्तव्य है। इसम निर्विवाद रूप से किसी व्यक्ति की अपनी आत्मा और व्यक्ति के जीवन को उसकी सारी अवस्थाओ मे उसके स्थान को समझने की योग्यता सन्निहित है। फिर भी इस प्रकार की योग्यता स्वत ही उत्पन्न नही होती। इसके लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। व्यक्ति को युवा होना, प्रौढ होना तथा वृद्ध होना सीखना पडता है।

मानव और उसके जीवन की अवस्थाएँ (नामक पुस्तक) मे प्रौढ़ता...

मैं यह देख सका कि इस अवधारणा का उन ऐतिहासिक तथ्यों से भी समर्थन होता है जो मूल-पाठ में उद्धत किये हुए है और इसके अतिरिक्त वे एक नितान्त महत्वपूर्ण प्रस्ताव की ओर सकेत करते हैं कि व्यक्ति के स्वय के जीवन का निर्माण करने के लिए एक विशेष कला—जीवित रहने की कला—विद्यमान है। यह कला व्यक्ति के केवल सुखवादी प्रतिस्पद्धाओ से सम्बन्धित आत्म-उत्तेजित अह की मनमानी माँगो का उत्तर देकर नही, किन्तु मानवीय व्यक्तित्व के सामाजिक एव ऐतिहासिक विकास के अनुसार और आधुनिक सस्कृति के सबसे अच्छे उदाहरणो के अनुरूप ही प्राप्त की जा सकती है। यह यथार्थ मे मानव और प्रकृति के ऐसे सयोग के ज़रिये होता है कि किसी आयु विशेष के समय व्यक्तियो की प्राकृतिक स्थिति वास्तविक मानवीय स्थिति बन जाती है।

कई वर्ष पहले, एक फिल्म निर्माता के रूप में काम करते हुए, मैंने महान रूसी लेखक तॉल्सताय को समर्पित एक फिल्म को पूरा किया। इससे पहले उस समय तॉल्सताय की आयु का व्यक्ति, मैं केवल तॉल्सताय के स्वय के शक्तिशाली व्यक्तित्व, जीवन और मृत्यु, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढावस्था एव वृद्धावस्था पर उनके चिन्तन के सन्दर्भ में व्यक्ति के जीवन मे उसके विकास की समस्याओ के सम्बन्ध मे ही सोच सकता था। यह आश्चयजनक है कि जबकि आज ये सारे प्रश्न किसी भिन्न दृष्टिकोण के रूप में प्रकट होते हैं, कोई भी इस तथ्य की अवहेलना नही कर सकता कि स्वय मानव मानव जाति के लिए शाश्वत समस्याए प्रस्तुत करता है।

लव तॉल्सतॉय महान मानव आत्माओ में से एक के रूप में एक असाधारण उदाहरण उपस्थित करते हैं। उन्होने भूलें भी कीं, चरम स्थितियाँ ग्रहण की और बहुत से बिन्दुओ पर वे अतिवादी थे। किन्तु उनकी विचारधारा की शक्ति ने जीवन के अन्तर्विरोधो को निष्ठुरतापूर्वक उद्घाटित कर दिया और एक अक्षय नैतिक चेतना उन्हे उनका समाधान खोजने के मार्ग पर ले गयी। इनमे से बहुत सी समस्याएँ शुद्ध रूप से आयु-सापेक्ष थीं और उनका सम्बन्ध भिन्न भिन्न अवस्थाओ के व्यक्तियो के बीच के सम्बन्धो (उनके बच्चो के साथ, युवा लेखको के साथ) और वृद्धावस्था में मानव के पीडादायिनी आत्म चेतना, बुद्धिमानी के प्रदर्शन, युवावस्था में रत्यात्मक वासनाओ से सघर्ष, तथा इससे भी अधिक से था। इसके अतिरिक्त तॉल्सताय ने आत्म शिक्षा की यथार्थ में असीमित सभावनाओ पर भी बल दिया। इस विषय में वे हमारे समाज के लोगो तथा वास्तव में हमारे इस छोटे से ग्रह के विभिन्न भागो के उन सभी लोगो के, जो मानव प्रगति मे विश्वास करते हैं और उसे प्राप्त करने में सक्रिय रूप से सघर्ष कर रहे है, बहुत ही समीप हैं।

मैं विश्वास करता हूँ कि लव तॉल्सताय इस प्रस्ताव का समर्थन करते कि

मानव का अपने युग का बोध उसके आत्म-सुधार के स्रोत एव प्रेरक शक्ति के रूप म पूर्ण किया जाना चाहिए। इस कारण किसी एक अथवा दूसरे भाग से तॉल्सतॉय के सभी विचार एक बिन्दु पर केन्द्रित होते हैं, यथा, मानव-जाति को अधिक सम्पूर्ण बनाने के लिए सघर्ष। इस सम्बन्ध मे उन्होंने व्यक्ति के नैतिक आत्म-सुधार के लिए एक निश्चयात्मक भूमिका प्रदान की। प्रत्येक व्यक्ति के लिए ऐसा आत्म सुधार उसके द्वारा युग विशेष के सभी प्रासगिक परिणामो का ध्यान रखते हुए स्वय का वास्तविक मूल्याकन करने की योग्यता प्राप्त कर लेने के साथ-साथ प्रारभ होता है। हमम से प्रत्येक को आत्मालोचना, आत्म नियत्रण तथा आत्म व्यग्य का उपाय अपने पास रखना चाहिए। जब कोई व्यक्ति स्वय को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने योग्य हो जाता है तो वह आत्म-सम्पूर्णता के पथ पर पहले स ही खडा हुआ होता है। और जब कोई मनुष्य इस योग्यता को खो देता है तो यह दु खान्त होता है। आत्म-सन्तोष और आत्म-न्यायसगतता अवनति के प्रथम लक्षण हैं। ये ही प्राचीन ससार की शक्तिशालिनी सभ्यताओ के सबसे बुरे कालो की भविष्यवाणियाँ करने वाले प्रथम लक्षण थे। और इसे रखकर आज के व्यक्ति ठीक ही करेंगे।

इसके अतिरिक्त, आत्मालोचना व्यक्ति के स्वय की आत्मा के सच्चे ज्ञान को प्राप्त करने का माग है। क्योंकि, यह मानकर कि यह एक बडी नैतिक क्षति है प्राय इसकी अवहेलना की गयी है, अत बहुत कुछ नष्ट हो चुका है। तॉल्सतिख वास्तव मे सुरक्षित सचयो के उन स्वरूपो को विश्वासोत्पादकता के साथ प्रमाणित करत है जो युग की चेतना मे निहित हैं और, मानव-जीवन की अवस्थाओ के सार-तत्व का अधिक समझदारी से लाभ उठा सकता है। ये विचार समाजवादी देशो मे रहने वाले उन व्यक्तियो के सामाजिक चिन्तन मे पूर्णतया सामजस्य रखते है जो मानव के लिए अधिक सुदर ससार को प्राप्त करने के लिए अप्रतिबन्ध सघष करने वालो तथा उसक व्यक्तित्व एव अद्वितीय वशिष्ट्य के असीमित विकास के लिए पिपासा रखने वालो के रूप म अभिलक्षित होत हैं।

इस छोटे से प्राक्कथन मे मैंने, जो कुछ लेखक के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है, उसके प्रति सवप्रथम अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत करना उचित समझा। किन्तु इस कृति की विषय-सूची की विपुलता पर भी मैं ध्यान देना चाहूँगा। पाठक इसके दार्शनिक, ऐतिहासिक-सास्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, शिक्षाशास्त्रीय और मूल्य विषयक अन्य दृष्टिकोणो पर एक सर्वतोमुखी निरूपण पायेंगे। यह कृति रुचि से पढे जाने पर जीवन की अवस्थाओ के मनोविज्ञान से सम्बन्धित स्वतत्र विचारो को समझने का माग बतायगी। यह लेखक की उस स्थिति को स्पष्टतया अभिव्यक्त करती है जो उन मानव आदर्शों की, जो उन आदर्शों की, जो उसका पथ प्रदशन करते हैं, स्पष्ट परिभाषा करती है। मैं विश्वास करता हूँ कि अन्य देशो के पाठक

उन विचार बिन्दुओं को समझना रुचिकर पायेंगे जिनका सोवियत वैज्ञानिकों द्वारा उस रूप में विवेचन और अध्ययन किया जा रहा है जिस रूप में वे मानव के मनोवैज्ञानिक जीवन की जटिल समस्याओं को समझते हैं।

—सेर्गेई जिरासिमोव
सोवियत संघ की शिक्षाशास्त्रीय विज्ञानों की
अकादमी के सदस्य
सोवियत संघ के जनकलाकार

भूमिका

आधुनिक मानव का जीवन नानाविध है और अध्ययन तथा चिन्तन के लिए दृष्टि-कोणो का एक विशाल क्षेत्र प्रस्तुत करता है। किन्तु समार म अपेक्षाकृत इने-गिने प्रतिभास ही विश्वव्यापक रुचि जाग्रत करने म समथ होते हैं। जो विषय कुछ व्यक्तियो के लिए उत्कट रुचि का हो सकता है वही दूसरो को उदासीन बना देता है। फिर भी जीवन मे ऐसी घटनाएँ भी होती ह जिनका प्रत्यक व्यक्ति से ऐसा घनिष्ठ सम्बध होता है जो व्यक्तियो के लिए अनिवायत महत्वपूण समस्याओ के पूरे समूह मे अन्तर्निहित अथ को पाने का कारण बनता है। मानव के जीवन की अवस्थाओ की समस्या एक ऐसा ही उदाहरण है। इसका कारण यह तथ्य है कि विभिन्न व्यवसायो और अनेक विज्ञानो से सम्बध रखने वाले अधिकाश व्यक्ति मानव-अस्तित्व की जटिल समस्याओ के 'उनके अपने' उत्तर पाने मे लगे हुए है। अस्तित्व और विचार के अथ के अतिम स्रोत पर प्रकाश डालने वाले दार्शनिक मानव के जीवन की आयु-श्रेणियो के अथ को ढूढ़ते है, औषधविज्ञान मानव के एव यौवन के उत्साह को सुरक्षित रखने के लिए आयुपरक परिवतन की आभास रूप मे अपरिवतनीय अवधि को मानव विवेक के अधीन लाने का प्रयत्न करता है बाल-श्रम की सुरक्षा और पेंशन-आयु के व्यक्तियो क काय से सम्बध रखने वाली समस्याओ का ध्यान रखते हुए न्यायविद उन कानूनी मानदण्डो की परिभाषा करने का प्रयत्न करते है जो जनता की भिन्न भिन्न आयु-श्रेणियो के कार्य की गतिविधियो पर नियत्रण रख सके, अध्यापक बच्चो के विशिष्ट आयु-अभिलक्षणों म अध्यापन प्रक्रिया को सम्पूण बनाने के लिए वाछित पूर्वापेक्षाओ को अन्तर्विष्ट देखते हैं, और जन-साख्यिक, समाजविज्ञानवेत्ता तथा मानवविज्ञानवेत्ता आयु-सम्बधी समस्या म अपनी स्वय की एक विशिष्ट रुचि रखते है उन मनोविज्ञानवेत्ताओ के उल्लेख की तो आवश्यकता ही नही जो मानव-व्यक्तित्व के विकास को नियत्रित करने वाले आयु-सापेक्ष मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो का अध्ययन करते है।

जब आयुपरक परिवतन की समस्या के निर्विवाद महत्व पर ध्यान दिया जाय तो यह जोडा जाना चाहिए कि इसम सम्बध रखने वाली शिक्षाएँ विशुद्ध सैद्धातिक प्रश्न, अर्थात् एक ऐसी समस्या के रूप म नही रह सकती, जहाँ ज्ञान का जीवन

और यथाथ स पृथक किया जाता है और सिद्धान्त का व्यवहार स विच्छेद होता है।

जीवन की अवस्थाओं की समस्या के सम्बन्ध म उस सामान्य रुचि क, जो युवकों, प्रौढ वयस्कों और वृद्धों के बीच म अपने-आप को भिन्न भिन्न रूपो म अभिव्यक्त करती है, उत्तर मे हम इस विषय के लिए एक शुष्क अकादमिक प्रणाली से दूर रहने का प्रयत्न करेंगे जब हम अपने अध्ययन को वैज्ञानिक तथ्यों क आधार पर करेंगे। जहाँ तक सम्भव होगा हम शब्दावली के प्रयोग की अति से बचने का प्रयत्न करेंगे, यद्यपि, निस्सन्देह, बहुत-सी वैज्ञानिक अवधारणाओं के वर्णन से बचना सम्भव नहीं है। स्वभावत, प्रतिपादन की शैली को सरल बनाने के प्रयत्नों की भी सीमाएँ है। इस कारण प्रत्येक बात को सरलतापूर्वक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य को विकृत कर सकता है। हम इस अध्ययन के आरंभ म ही आभास रूप म गौण विचार बिन्दु पर बल देना चाहते है, क्योंकि आयु-सम्बन्धी समस्याओं के लिए सामान्य रुचि स्वय ही भ्रामक अवधारणाएँ उत्पन्न करती हैं। समस्या यह है कि विषयों की रुचियों के विशिष्ट समुदाय का सामना सम्मतियों के तदनुरूप समुदाय से होता है। अंग्रेजी कहावत 'जितने अधिक मनुष्य उतने अधिक मस्तिष्क' जीवन की अवस्थाओं की समस्या पर पूर्णतया लागू होती है। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति अलबर्ट आइन्स्टीन के सापेक्षता सिद्धान्त अथवा नील्स बोहर के अनुरूपता सिद्धान्त पर निर्णय देने की नहीं सोचता यदि वह भौतिकविज्ञानवेत्ता न हो। प्रत्येक व्यक्ति यह स्वीकार करेगा कि ये प्रकरण इतने जटिल हैं कि किसी साधारण आदमी के द्वारा इन पर विचार नहीं किया जा सकता। किन्तु वयोवृद्ध व्यक्तियों के मनोविज्ञान के सम्बन्ध म स्थिति इससे भिन्न है। वहाँ हमे तुलनात्मक रूप से आत्म-सयम नहीं मिलता। प्राय प्रत्येक मे विशिष्ट आयु-सापेक्ष आत्मचेतना होती है और किसी विशेष आयु-वर्ग म उसका एक अनुभवपूर्ण जीवन होता है। इससे वैज्ञानिक सिद्धान्त के निष्कर्षों पर अत्यधिक ध्यान स विचार किये बिना भी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करना सम्भव बन सकता है।

इसके अतिरिक्त बहुत से व्यक्ति मानव के जीवन की अवस्थाओं की समस्या को सरल समझते हैं। इस प्रकार के भ्रम के कुछ आधार हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न आयु-वर्ग के लोगों के बीच प्रभेद करने की अपेक्षा और कुछ भी अधिक सरल हो सकता था। इस बात की आवश्यकता नहीं है कि कोई आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान के क्षेत्र मे निपुण ही हो। कोई भी व्यक्ति बालक और वयस्क, युवा व्यक्ति और प्रौढ व्यक्ति आरंभिक वर्षों वाले व्यक्ति और वयोवृद्ध व्यक्ति के बीच अंतर करने म असफल नहीं होगा। हम यह कहने म नहीं हिचकिचाते कि 'आपकी आयु का व्यक्ति म अनेक सम्बन्ध अन्तर्निहित हो सकते हैं। "युवा पुरुष! जब मैं तुम्हारी आयु का था, मेरे साथ ऐसा कभी न हुआ कि मैं स्वास्थ्य के सम्बन्ध

मे चिन्ता करूँ।" "तुम्हारी आयु के व्यक्ति को अपना अध्ययन गम्भीरता से करना चाहिए।" माता पिता के परिचित शब्द "जब मैं तुम्हारी आयु का था " और दु खपूर्ण वाक्याश "काश कोई उन वर्षों को वापिस ला सकता, काश कोई उस अवस्था को लौट सकता "

यदि आप किसी तीन वष के बालक से पूछें, "तुम्हारी आयु क्या है?" तो आप प्राय एक विस्तृत उत्तर सुनेंगे, "तीन वष, छ महीने और तीन दिन।" आरभिक अनुमान भी सरल तथा स्वय-प्रमाणित दिखाई देता है, अर्थात् आयु की धारणा इस अथ मे हमारी आत्म-चेतना का एक प्राकृतिक तत्व है कि यह प्रत्येक व्यक्ति मे आगिक रूप मे निहित है। कोई यह पूछ सकता है तब वैज्ञानिक अनुसधान की आवश्यकता क्यो होती है?

आयु-सापक्ष मनोविनान के क्षेत्र म विशेष योग्यता प्राप्त करने वाले व्यक्ति उस सीधे-साद प्रश्न का उत्तर रोष के साथ देत है।

निस्सदेह, पाठक जानता है कि आज आयु-अवधिकरण और व्यक्तित्व के विकास से सम्बध रखन वाले प्रश्नो को लेकर विभिन वज्ञानिक वाकपीठ आयोजित किये जाते है। आज जीवन की अवस्थाओ की समस्या म 'शिक्षाशास्त्रीय' और मनावैज्ञानिक' तत्वा की आपक्षिक भूमिका के सम्बध मे सजीव वाद-विवाद होते हैं।

किसी को भी आयु की अवधारणा की प्रत्यक्ष 'सरलता' से धोखा नही खाना चाहिए क्योकि यह बहुत-सी वैज्ञानिक समस्याआ को आखो से ओझल कर देती है। वस्तुत यही प्रस्तुत अध्ययन का विषय है।

यह पहले ही बता दिया गया है कि आयु की समस्या का अध्ययन आधुनिक विज्ञानो की उस बडी सख्या द्वारा किया जाता है जिनमे से प्रत्येक इस प्रकरण पर अपने स्वय के दृष्टिकोण से विचार करता है और उसके मन मे उसके स्वय के उद्देश्य एव अनुसधान के रूप हात है। विशेषतया जिस आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान पर यहाँ विचार किया जायेगा उसका सम्बध मानव के मस्तिष्क मे आयु-सापेक्ष परिवतनो और मानव व्यक्तित्व की निर्माणात्मक प्रक्रियाओ से है।

किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययनो की आवश्यकताएँ ऐसी है कि किसी वैज्ञानिक विद्या विशेष का उत्पादकतापूर्ण विकास केवल अन्य विज्ञानो के समूह के अन्तगत ही हो सकता है। इसी कारण मौजूदा अध्ययन मे मैंने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से जुडी हुई विभिन विद्या प्रणालियो से प्राप्त आधार-सामग्री का उपयोग किया है।

आयु-अभिलक्षणो, जिनमे से एक का सम्बध मनोवैज्ञानिक अभिलक्षणा स है और दूसर का सम्बध मानव के अध्ययन से सबद्ध अन्य विद्या प्रणालियो से सम्बध रखने वाली आधार-सामग्री पूण योग से है, के अनुसधान की समस्या का समकक्ष

के विशिष्ट समुदाय के अन्तगत स्थान निश्चित करने म हम उस मापक्रम का ज्ञान होना चाहिए जिसे हम वतमान विश्लेषण के लिए सर्वोत्तम समझते ह। यदि वह मापक्रम छोटा हुआ तो परीक्षण किये जाने वाले प्रतिभास अत्यधिक सामान्यीकरण के कारण वास्तविक व्यवहार म महत्वहीन तथा अविभेद्य दिखाई दे सकते है। एसा सुदूर परिप्रेक्ष्य उनके लिए कठिनता से उपयुक्त होता है जो आयु सापेक्ष मनोविज्ञान का अध्ययन करते ह। और इसके विपरीत यदि मानव-जीवन की अवस्थाओ का वर्गीकरण जरूरत से ज्यादा विस्तृत हो तो कोई व्यक्ति स्वय ही तथ्यो क ऐसे महासागर म डूब सकता है जिसका सब कुछ महत्वपूण ही दिखाई न्ता है।

इस प्रकार सुनहरे मध्यमान की दैवी समस्या हमारे सम्मुख आती है अर्थात् वतमान विशाल क्षेत्र म हुई उपलब्धियो को पाठक तक कैसे पहुचाया जाय और साथ ही मापक्रम के अन्तरो के कारण उत्पन्न हुई भ्रतियो स बचा जाय।

आयु सापेक्ष मनोविज्ञान के सभी प्रश्नो पर विचार करने के लिए एक स्पष्ट और सगत स्थिति को अपनाने मे ही इस समस्या का हल खोजने म सहायता मिल सकती है। हम वज्ञानिक समस्याओ का सूत्रीकरण करन म सिद्धान्तो स चिपके रहने व उस तथाकथित भय को स्वीकार नही करत जो किसी दशन, विश्व दृष्टि कोण अथवा प्रणाली विज्ञान सम्बन्धी आधार स स्वतन्त्र होकर विशुद्ध वज्ञानिक प्रणालिया' के जरिये तथाकथित 'आधार-सामग्री की वास्तविकता की शब्दावली म छद्म रूप से छिपा हुआ होता है। कोई भी तथ्य तब वज्ञानिक बन जाता है जब वह वास्तविक यथाथ से प्राप्त होता है किन्तु तब भी यह समान रूप से महत्व पूण होता है जब इसका स्थान किसी ऐसे विशिष्ट व्याख्यात्मक शास्त्र और वैज्ञा निक ज्ञान के विशिष्ट तन्त्र के अन्तगत होता है जो क्रमश किसी व्यक्ति के विश्व दृष्टिकोण और प्रणाली विज्ञान क मानदण्डो पर पूणतया निभर होता है।

आयु की समस्या का अध्ययन करने म हमने प्रारम्भ से ही मार्क्सवादी लेनिनवादी प्रणाली विज्ञान और उन सिद्धान्तो जो मानसिक विकास को नियन्त्रित करते हैं से सम्बन्धित तदनुरूप द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी शिक्षाओ के दढ आधारो को अपनाया है। इन शिक्षाओ के सबस अधिक सुसगत विस्तार म लेव विगोत्स्की अलक्साई लिआन्तीव और अलक्जण्डर लूरिया म सबद्ध सोवियत मनोविज्ञानवेत्ताओ की विचारधारा ने सहयोग दिया है। वज्ञानिक क्षेत्रो म विचारधारा की इस दिशा का 'सक्रियता क मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त' क रूप म वणन किया गया है। इसका विकास सोवियत सघ के भीतर और अन्य देशो म दूसरी वज्ञानिक प्रणालियो क साथ हुए सारपूण विवेचनो क परिणामस्वरूप हुआ है।

सक्रियता का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त अन्य वज्ञानिक स्थितियो का पूरा ध्यान रखते हुए भिन्न भिन्न अनुसधानकर्ताओ द्वारा सग्रहीत अधिकाश नानाविधि तथ्यो

पर विचार करना तथा अपने स्वय के सन्दभ मे सम्मिलित करना सम्भव बनाता है।

कभी-कभी यह पूछा जाता है मानव के जीवन की अवस्थाओ की समस्याओ का अध्ययन करने वाले और मानव-जीवन के आयु-सापेक्ष अभिलक्षणा के अतिरिक्त उनकी मनोवैज्ञानिक 'अन्तवस्तु' का स्पष्टीकरण करन वाले मनोविज्ञान वेत्ताओ की कृतिया को कौन-सी बात अयुक्त बनाती है? आशिक रूप म, विशिष्ट आयु-वग की आयु-सापक्ष सम्भावनाआ और मनोवैज्ञानिक गतिविधियो की निधियो को स्थापित करना। आशिक रूप म ही, विभिन्न आयु-वर्गो के व्यक्तियो को उनकी विशिष्ट समस्याएँ सुलझाने मे व्यावहारिक सहायता प्रदान करना। किन्तु फिर भी दूसरा दृष्टिकोण भी और अधिक महत्वपूण है।

हमारी सम्मति म मानव के जीवन की अवस्थाओ का अध्ययन करने वाले मनोविज्ञानवेत्ताओ की कृति की किसी वास्तुकार की कृति से तुलना करना न्याय सगत है। जिस प्रकार वास्तुकार मानव-जीवन के लिए निवास के स्थानो के निर्माण मे सम्बधित होता है उसी प्रकार मनोविज्ञानवत्ता मानव के जीवन की व्यवस्थापन-सम्बधी समस्याओ से सम्बधित होत हैं।

यह वह प्रस्थापना है जो वतमान अध्ययन के ढांचे के मूल म है। प्रथम अध्याय आयु-सापक्ष मनोविज्ञान की सद्धातिक विचार-वस्तु से सम्बधित है, दूसरे अध्याय मे, उस वज्ञानिक दृष्टिकोण, जिस हमने चुना है, के अनुसार यह समस्या सास्कृतिक एव एतिहासिक विश्लेषण के अधीन रखी गयी है। बाकी के अध्याय मानव की बुनियादी जीवन-अवस्थाओ के स्वरूप को, प्रधानत मनोवज्ञानिक दृष्टिकोण मे, लक्ष्य करके लिखे गये हैं।

"समय मानव विकास का अवसर है।"
—कार्ल मार्क्स

अध्याय 1

आयु एक समस्या के रूप मे

आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान और व्यक्तित्व का सिद्धान्त
'दो कारक' सिद्धान्त के बन्दी
पदार्थ-सापेक्ष सक्रियता
आयु सीमाएँ
जीवन के काल

आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान और व्यक्तित्व का सिद्धान्त

हम काल के साथ जीवित रहते हैं। इसका सम्बन्ध उस ब्रह्माण्ड से है जो हम घेरे हुए है उस विश्व, प्रकृति और तथाकथित 'बुद्धिक्षेत्र' से है जो मानव संस्कृति और सभ्यता का संसार है। वी० आई० लेनिन ने उल्लेख किया कि "काल प्राणियो के वास्तविक यथार्थ का एक रूप है।"[1]

मानव व्यक्तित्व एक असंदिग्ध तथ्य, काल के साथ मानव के अस्तित्व के एक वास्तविक यथार्थ का निर्माण करते हैं। इस अर्थ मे, प्रत्येक व्यक्ति को काल के अनुसार ही समझा जा सकता है और सेकिण्डो, मिनटो, घण्टो, दिनो, महीनो और वर्षों आदि के रूप मे उसकी काल-सापेक्ष विशिष्टताएँ उसके पास होती हैं। हम काल को नापने की भिन्न भिन्न प्रणालियो, उदाहरणार्थ, कालक्रम सम्बन्धी विज्ञान—तिथिकी—और गणितीय, खगोलीय या ऐतिहासिक मापक्रम अथवा वर्तीय या रेखीय पचाग की ओर मुड सकते है। इन सब विषयो मे हमारे सामने यही मौलिक तथ्य आता है कि पदार्थ का अस्तित्व काल मे है।

जिसका अस्तित्व काल मे होता है जैसे—मिस्र के पिरामिड और प्राचीन पाण्डुलिपिया, पेड और पक्षी, नदियाँ और महासागर—उस सबका एक स्वय का युग होता है। और युग की सरलतम प्रारम्भिक अवधारणा अपनी परिभाषा को काल की एक प्रक्रिया के रूप मे निर्दिष्ट करती है।

इसमे कोई सन्देह नही कि मानव व्यक्तित्व का विकास एक उद्देश्यपूर्ण ढग से होता है। और उस विकास के अन्तिम क्षण—यथा मृत्यु—जिसका सोवियत वैज्ञानिक व्लादिमिर वर्नाडस्की ने आकाश और काल का विच्छेद कहकर उल्लेख किया है की स्पष्ट रूप मे परिभाषा की गयी है।[2]

फिर भी मनोविज्ञानवेत्ता इस बात पर बल देंगे कि आयु केवल समय का एक साधारण कार्य नही है। इसी कारण मनोविज्ञान मे कालानुक्रमिक माग स नही के

---

1 वी० आई० लेनिन, "कान्सपेक्टस ऑव हेगल्स बुक, दी साइंस आव लाजिक", कलेक्टेड वर्क्स, वाल्यूम 38, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को, 1976 पृ० 227

2 वी० आई० वर्नाडस्की—(दी केमिकल कम्पोजीशन आव दी बायोस्फीयर दी अर्थ एण्ड इटस एनवायरनमेण्ट) मास्को नौका, 1965, पृ० 135

बराबर लाभ होता है। कारण यह है कि कालानुक्रमिक रूप से आयु का माप वर्षों की उस सख्या से होता है जिसमे कोई व्यक्ति अपने जन्म से लेकर अब तक जीवित रह चुका होता है, जबकि ऐसे व्यक्ति मे आयु-सापेक्ष परिवतन प्रत्यक्ष रूप से वर्षों की उस सख्या के अनुपात मे नही होते जिसम वह जीवित रह चुका होता है। दोनो के बीच मे जटिल मध्यवर्ती सम्बन्ध होते है।

फिर भी सोवियत मनोविज्ञानवेत्ता लेव विगोत्स्की ने इस बात पर बल दिया है कि किसी व्यक्तित्व के विकास की गति किसी घडी की सुई की गति के समान नही होती और उसके विकास के किसी विशेष वप का महत्व कभी किसी अन्य वप के महत्व के बराबर नही हाता।

आयु सर्वोपरि उन घटना-क्रियाओं का समूह है जा स्वय को प्रेक्षण के अनुकूल बनाता है वह, बल्कि, वर्षों की केवल वह सख्या नही है जिसमे जीवित रहा गया है। किन्तु यह भी केवल आशिक रूप स सत्य है क्योकि घटना क्रिया विज्ञान स्वय मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओ के न तो महत्व को, न अथ को, न व्यक्ति की अवस्था की आत्म चेतना को ही स्पष्ट कर सकता है।

आयु-सापक्ष मनोविनान का विषय मानव मन के परिवतनो और व्यक्तित्व के विकास तथा निर्माण का अध्ययन है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की शिक्षाओ के अनुसार विकास के लिए कुछ सिद्धान्तो के अनुरूप पदाथ एव चेतना मे अनुक्रमणी तथा निर्दिष्ट परिवतनो की अपेक्षा होती है। व्यक्ति विकास दृष्टिकोण से विकास का सिद्धान्त मानव-जीवन पर पूणतया लागू होता है। इस कारण एक नवजात शिशु के सम्बन्ध मे हम पहले से ही बिना हिचकिचाहट के उसे आयु सापेक्ष विकास, अर्थात् शिशुता, बाल्यकाल, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढता, वृद्धावस्था एव मृत्यु, के मुख्य सीमाचिह्नो की परिभाषा करते है। निस्सदेह, मृत्यु पहले की अवस्थाओं मे भी हा सकती है। किन्तु यह जीवन की विशिष्ट अवस्थाओ के स्वरूप और क्रम को नही बदल सकती। इस प्रकार आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक के मनोवैज्ञानिक विकास पर विचार करता है।

फिर भी, आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान किसी व्यक्ति के विकास पर उसके निर्माण की प्रक्रिया को ध्यान मे रखकर विचार करता है और एक व्यक्ति के जीवन-पथ को एक समग्र प्रक्रिया मानता है। तो भी, किसी व्यक्ति का जीवन-पथ अनेक अवस्थाओं मे विभाजित होता है। इसी कारण जीवन की अवस्थाओं की अवधारणा का गुणात्मकता मे असमान उन मनोवैज्ञानिक विपय-वस्तुओ से युक्त बतलाना ठीक है जो व्यक्ति के निर्माण और उसकी प्रगति के दौरान एक-दूसरे का स्थान ग्रहण करते है।

अपेक्षाकृत लम्बे समय तक मनोविज्ञानवत्ता केवल उन विभिन्न परिवतनो के

अध्ययन मे तल्लीन रहे जो किसी व्यक्ति के जीवन म स्थान पात है। सामान्यतया उन्हान व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओ, प्रभावो और मन की दशाओ पर ध्यान दिया। अधिक-म-अधिक मनोवैज्ञानिक दशाओ म होन वाल परिवतनो की तुलनाएँ की कितु इह व्यक्तित्व के विकास की समग्र प्रक्रिया अथवा एक ही क्रम के रूप म कदापि विचार नही किया गया। बाल मनोविज्ञान न बच्चो के मनोविज्ञान का अध्ययन किया जबकि वयस्क लोगो के मनोविज्ञान का अध्ययन सामान्य मनोविज्ञान अर्थात् आयु का विचार न करत हुए सभी व्यक्तियो की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओ के अध्ययन की श्रेणी मे आया। अन्त म जीवधारियो के आयु परिवतन से सम्बध रखने वाले प्रभावो का अध्ययन वृद्धावस्था विज्ञान क द्वारा सामान्य ढग से किया गया। आज, हमारी सम्मति म व्यक्तित्व के सामान्य सिद्धान्त की भूमिका आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान के द्वारा अधिकाधिक स्पष्ट रूप म अपनायी जा रही है।[1] यह प्रधानत इस कारण है कि यह पूणतया सम्भवन एव प्रगति, अर्थात् व्यक्तित्व के विकास मे आयु-सापेक्ष परिवतनो को, लक्ष्य करके अग्रसर होना है। इसी कारण 'आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान तथा 'व्यक्तित्व के मनोविज्ञान' की अवधारणाएँ भी एक सम्पूण इकाई का निर्माण करती है और व्यक्तित्व के विकास के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए एक माग प्रस्तुत करती है।

प्रस्तुत अध्ययन मे हमने व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर सम्पूण परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करने म आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषणो और जन्म स लेकर बढती हुई वृद्धावस्था तक उसके जीवन की विभिन्न आयु सापक्ष अवस्थाओ की इसमे आगे की प्रगतियो पर निभर रहने का प्रयत्न किया है। सम्भवत यह सर्वोत्तम है कि इस विश्लेषण का आरम्भ आयु-सापेक्ष व्यक्तित्व के विकास, उसकी शरीर रचना और उसकी प्रेरक शक्ति की प्रक्रियाओ के सारतत्व के मनन के साथ किया जाय।

'दो कारक' सिद्धान्त के वन्दी

विचारधारा क इतिहास मे मानव के सारतत्व की परिभाषा करने के अनेक प्रयत्न हुए है। किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान का दृष्टिकोण क्या है?

---

1 हम यहा मनोविज्ञानवेत्ताओ के चिन्तन म अपनायी गयी विकास की अवधारणा के इतिहास और व्यक्तित्व के सामान्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के रूप म आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान के अपूव अनुभवो पर विस्तृत विचार नही करेंगे। य एक दूसरे म भिन्न ऐस प्रश्न है जिनके लिए पृथक परिचर्चा की आवश्यकता है।

यदि काई पहन के वर्षों के अनेक मनोवज्ञानिक अध्ययना की ओर मुडे तो वह यह देख सकता है कि जब कभी कोई ऐसा मौलिक प्रश्न, जो विकास के सार-तत्व, रचनातन्त्र और प्रेरक शक्तियो की परिभाषा करने वाला हो, उपस्थित हुआ था तो वहाँ बहुत अधिक असगति हुई थी। तो भी, कोई भी उन दो काय क्षेत्रो को देख सकता है जिन्होने अत म, दो कारका—जीव वैज्ञानिक एव सामाजिक—के द्वारा निभायी गयी भूमिका और इसके अतिरिक्त जिन्होंने मध्य माग को अपनाते हुए निश्चयपूवक कहा कि ये दोना कारक समाभिरूप होने की ओर अग्रसर है, उनके द्वारा की गयी खोज को सुव्यवस्थित करके, इस समस्या को उसके साथ जोड दिया था।

अब हम विभिन्न पक्षो द्वारा प्रस्तुत किये गये तर्कों की जाच करें जिससे सैद्धान्तिक मनोविज्ञान मे 'दो कारको' के सघप का सारतत्व अधिक पूणता से स्पष्ट किया जा सके।

प्रसग से कुछ हट कर हम प्रसिद्ध अमरीकी मनोविज्ञानवेत्ता स्टेनली हाल के परीक्षण का लें। बाल मनाविज्ञान के अध्ययन म हाल इस प्रस्थापना को प्रति-पादित किया कि आयु को उसके लाक्षणिक स्वाभाविक गुणा के आधार पर समझना सभव है। उन्हाने इस बात पर बल देने के लिए पर्याप्त रूप से विश्वासोत्पादक कारणा की ओर सकेत किया कि कोई ऐसा मनोवज्ञानिक आधार ढूढा जाय जो आयु को एक ऐसे समग्र प्रभास के रूप म अनुभव करना सभव बना सके जो एक समग्र मनोवज्ञानिक व्याख्या के लिए उपयुक्त हो। इसके बाद उन्हाने जीववैज्ञानिक सार्वभौमिकतावाद को इस प्रकार, आधार, अर्थात् आयु विशिष्ट मनोवैनानिक लक्षणा की मनोवैज्ञानिक कारणा पर अनिवाय निभरता के विचार को प्रस्तुत किया।

मनोविनान मे जीवोत्पत्ति सम्बन्धी माग का अपना स्वय का पूव इतिहास है।

लम्बे समय से निष्पत्तिवाद के सिद्धान्त ने मानव के विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए मनोविज्ञान के प्रयत्न में प्रधान भूमिका निभाई है। उस सिद्धान्त के, जो अपने उद्गम मे जीववैनानिक है, सारतत्व मे यह प्रस्थापना सम्मिलित है कि अजन्मा बालक प्रारम्भ से ही एक ऐसे विकसित जीव का प्रतिनिधित्व करता है जो वैसे ही ढाँचे और रूप से युक्त होता है जसा प्रौढ अवयव-सस्थान, किन्तु निगन्त छोटे परिमाप मे। उस सिद्धान्त के अनुसार मानव का सम्पूण भविष्य पहले से ही प्रजनक कोषाणुओ म, यद्यपि लघु रूप मे, वतमान रहता है और उसके विकास की प्रक्रिया अनिवार्य रूप म मात्रात्मक होती है। बालक एक छोटे वयस्क के रूप मे और किशोर कुछ अधिक आयु के बालक इत्यादि के रूप मे देखा गया। हम इस दृष्टिकोण पर टिप्पणी करने को प्रस्तुत नहीं हैं। भ्रूण विनान के विकास न पूव निर्माण के सिद्धान्त का अन्तर कर दिया और वस्तुत वज्ञानिक क्षेत्रा म इसका

विवचन बन्द हो गया, यद्यपि कुछ व्यक्तियों के दैनिक विचार विमर्श में अब भी इसका अस्तित्व है।

1920 और 1930 के दशकों में पुनरावर्तन (पुनरुक्ति) के सिद्धांत की विशाल भूमिका ने मनोविज्ञानवेत्ताओं का समर्थन प्राप्त किया। इसके मीमांसात्मक सिद्धान्त भ्रूणविज्ञान, वह क्षेत्र जिसमें दो जर्मन वैज्ञानिकों अर्नेस्ट हैकल और जार्ज मुलर ने एक जीवोत्पत्ति सम्बन्धी नियम का प्रतिपादन किया जो यह बताता है कि व्यक्तिवृत्त जातिवृत्त की पुनरावृत्ति करता है, अर्थात्, किसी प्राणी का व्यक्तिगत विकास उस वर्ग, जिससे उस प्राणी का सम्बन्ध होता है, की पुनरावृत्ति करता है। इसने किसी प्राणी के व्यक्तिगत विकास (व्यक्तिवृत्त) और इसके ऐतिहासिक विकास (जातिवृत्त) के बीच के पारस्परिक सम्बन्धों के बालक के मनोवैज्ञानिक विकास की ओर के स्थानांतरण को सुनिश्चित किया। संक्षेप में, यह बलपूर्वक कहा गया कि अपने जन्म के पश्चात् एक व्यक्ति सम्पूर्ण मानव-जाति के विकास की अवस्थाओं की पुनरावृत्ति करता है। स्पष्टतया पुनरावृत्ति का सिद्धांत निष्पत्तिवाद के विरुद्ध इस बात को बलपूर्वक कहते हुए उठ खड़ा होता है कि बालक एक ऐसी सत्ता है जो गुणात्मक रूप से विकसित होती है और मात्र एक लघुरूप वयस्क ही नहीं है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह एक ऐसी गहन प्रगतिशील विचारधारा थी जिसने मानव के व्यक्तिवृत्त और उसके जातिवृत्त दोनों अध्ययन में विकास (ऐतिहासिकवाद) के सिद्धान्त को समाविष्ट करने की आवश्यकता का संकेत दिया। जैसा कि हमने उल्लेख किया है, यह एक ऐसा कार्य था जिसने अपनी प्रासंगिकता आज भी नहीं खोई है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रस्ताव का दार्शनिक आधार भी है। उदाहरण के लिए, हेगेल ने अपने सुप्रसिद्ध 'फेनोमेनोलॉजी ऑव माइण्ड' में कहा कि "व्यक्ति विशेष को भी जहाँ तक धारिता का सम्बन्ध है, उन अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है जिनमें से सामान्य मन गुजर चुका है।"[1] कुछ पूर्वानुमान करके हमें देखना चाहिए कि पुनरावर्तन की अवधारणा भी मानव के व्यक्तित्व के मनोवैज्ञानिक विकास का विचार करने के लिए आज बिल्कुल प्रासंगिक है क्योंकि यह उस प्रक्रिया के कुछ पहलुओं को स्थापित करना सम्भव बनाता है जिनके द्वारा बालक सामाजिक अनुभव को आत्मसात् करते हैं। फिर भी, जबकि पुनरावर्तन के सिद्धान्त की सम्भावनाओं को सामान्य रूप से स्वीकार करते हुए, किसी व्यक्ति को इसके रूपान्तरों में से उन पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करना चाहिए जो मानव के मनोवैज्ञानिक विकास (उदाहरण के लिए स्टेनली हॉल

---

1 जी० डब्ल्यू० एफ० हेगल दी फेनोमेनालोजी ऑव माइण्ड, लन्दन, जॉर्ज एलन एण्ड अनविन लिमिटेड, 1931, पृ० 89

और जेम्स बाल्डविन के प्रसग म) के जीवोत्पत्ति सम्बन्धी प्रतिपादन से प्रत्यक्ष रूप से सयुक्त है। क्योकि वे व्याख्यात्मक सिद्धान्त, जिन पर ये लेखक निभर करते है, मनोवैज्ञानिक जीवन के जीवविज्ञान सम्बन्धी सकल्प से सम्बन्ध रखते हैं, मनोवैज्ञानिक विकास के व्यक्तिवृत्त पर ऐतिहासिक सन्दभ मे विचार करने के प्रयत्न कृत्रिम थे। विशेषकर उस सिद्धान्त के कुछ अनुयायियो ने बालको के मनोवैज्ञानिक विकास को, प्रारम्भिक बबरता, खानाबदोश जीवन, इत्यादि की पुनरावत्ति के रूप मे, व्याख्या की।

जीवोत्पत्ति सम्बन्धी विचारधारा की सकारात्मक उपलब्धि मन (उसके विकास) के अध्ययन के लिए इसका उत्पत्ति-सम्बन्धी प्रवेश-माग था। इसके विपरीत, इसकी दुबलता और त्रुटि उस विकास को जीवविज्ञान-सम्बन्धी प्रक्रियाओ के रूप म परिणत कर देने मे है। यही सुनिश्चित कारण है कि जीवोत्पत्ति-सम्बन्धी निगम को मान्यता प्राप्त नही हुई, क्योकि इसके आधार म ही एक गभीर दोष था। यह निगम उस वातावरण, जिसमे मानव-जाति का विकास होता है, तथा उस वातावरण, जिसमे व्यक्ति का विकास होता है, के मौलिक अन्तर पर विचार नही करता। उस नियम के अनुसार दोनो समान होते हैं और यह इस विचारधारा के उस अव्यावहारिक रूप का कारण बना जिसने मानव के मनोवैज्ञानिक विकास को नियत्रित करने वाले ऐतिहासिक, सास्कृतिक एव सामाजिक सिद्धान्तो से ध्यान को हटा दिया।

जीवोत्पत्ति सम्बन्धी प्रचलित सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक विकास मे 'अन्तर्निहित अभिलक्षणो (वशानुगत विशेषताओ) की भूमिका पर बल देते हैं। किन्तु एक अथवा दूसरे ढग से वे सभी वैज्ञानिक मनोवैज्ञानिक विकास के विचार और विद्वत्ता एव शिक्षा, जो जीवोत्पत्ति विज्ञानवेत्ताओ द्वारा 'बाह्य कारक' समझे जाते हैं, से इन्हे स्वाधीन रखने पर बल देते हैं। इस प्रकार किसी व्यक्ति के अवयवी विकास का इतिहास, सस्कृति और समाज के साथ का सम्बन्ध ऐसा दिखाई देता है जो शुद्ध रूप से बाह्य होता है, और इसका परिणाम होता है व्यक्तित्व के विकास सरलीकृत यान्त्रिक व्याख्या जो मूल प्रवृत्तियो के रचना-तत्र, अन्त स्रावी तत्र के परिवतनो और अवयवो के विभिन्न सरचनात्मक लक्षणो के वशवर्ती समझे जाते हैं।

बोधगम्यता की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक विकास की प्रक्रियाओ तक ऐसे सामान्य प्रवेश-माग ने ऐसे अनेक मनोविज्ञानवेत्ताओ के मन मे एक असन्तोष की भावना उत्पन्न कर दी जो मानव के मनोवैज्ञानिक विकास म सामाजिक वातावरण की भूमिका से अवगत थे। दुर्भाग्यवश उनका जीवोत्पत्ति-सम्बन्धी प्रवेशमाग 'सामाजिक उत्पत्ति-सबधी अवधारणा' के दृढ कथन से सयुक्त था जो कम त्रुटिपूण न था और था तो आडम्बरपूण अभौतिक वाक्य विन्यास था या व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया का सामान्य समाजशास्त्रीय व्याख्या की ओर ले जाता था।

'सामाजिक-उत्पत्ति सम्बन्धी प्रकार' की मीमासात्मक अवधारणाओ का उदाहरण 1920 और 1930 के दशको म लेखन करने वाले जमन मनोविज्ञान वेत्ता एडुअड स्प्राजर के द्वारा सविस्तार प्रतिपादित उस मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के द्वारा प्रस्तुत किया गया है जो 1960 और 1970 के प्रारम्भिक दशको म दुबारा प्रसिद्ध हुआ।

स्प्राजर ने उच्चतर स्नायु-सस्थान से सम्बन्धित जीवविज्ञान और शरीरविज्ञान सम्बन्धी आँकडो पर आधारित मन की प्राकृतिक विज्ञान-सम्बन्धी व्याख्याओ को अस्वीकार कर दिया और इसके 'आध्यात्मिक विकास' के सिद्धान्त का निर्माण किया। उसके विचार मे समग्र मनोवैज्ञानिक एकता मे नैतिक मूल्य म हुई वृद्धि के विस्तार को प्रस्तुत करता है। स्प्राजर आध्यात्मिक विकास की परिभाषा किसी व्यक्ति की आत्मा के एक यथाथ मानवीय आत्मा अथवा 'अधिवयक्तिक आध्यात्मिक सम्बन्ध' के विकास के रूप म करते हैं। वे दृढतापूवक कहते है कि बाल्यावस्था म परिपक्व होने की प्रक्रिया मानव के लिए संस्कृति के ऐसे क्षेत्र खोल देती है जो समाज के उन स्तरो या वर्गों के द्वारा जिनके बीच वह रहता है और जिनमे कथित 'परिपक्व होने वाला व्यक्ति' सन्निहित हो जाता है, उपलब्ध किये गये थे। ऐसा केवल अधिवयक्तिक आध्यात्मिक ढाँचा (समाज) मे सहयोग के जरिये होता है जिससे व्यक्तिगत आत्माएँ व्यक्तिपरक आत्माएँ बन जाती हैं और मूल्य-सम्बद्ध विश्व-दृष्टि के क्षेत्र म प्रवेश करते है अर्थात सामाजिक जीवन के क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले आकार को प्राप्त करते हैं।

जीवन के रूपो के अपने वर्गीकरण मे स्प्राजर ने मूल्यो के उन रूपो और प्रकारो की परिभाषा की जो, मानो, इतर लौकिक थे और उनकी सम्मति म, मानव सन्दभ के मानदण्डो के रूप मे एक चिरस्थायी महत्व से युक्त थे। और जब उन्होने व्यक्तिपरक आत्मा के विकास पर ऐतिहासिक पहलू से विचार किया, तो उन्होने इसमे मानव और समाज के वास्तविक विकास के नही किन्तु केवल उसके आध्यात्मिक क्षेत्र के सम्बन्ध म ही अवधारणा की।

सामाजिक उत्पत्ति सम्बन्धी उपगमन के दूसरे ध्रुव पर हमे 1920 और 1930 के दशको के बहुत से विदेशी लेखको और सोवियत मनोविज्ञानवेत्ताओ की कृतियाँ प्राप्त होती है जिनके मुख्य प्रस्तावो को निम्न प्रकार से परिणत किया जा सकता है मानव के विकास का आधारभूत कारक है मानव का अपने सामाजिक वातावरण स अनुकूलन, किसी बालक के विकास मे सामाजिक वातावरण एक अनिवाय कारक है और इसके अनुसार वातावरण के अध्ययन स्वत ही उस वातावरण म व्यक्ति क विकास के अध्ययन का परिणाम होता है, किसी व्यक्ति की चेतना जसी भी हो उसके व्यवहार म विलीन हो जाती है और इसके अनुसार इन अध्ययनो म इस पर विचार करने की आवश्यकता नही है।

कभी-कभार व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक वातावरण की भूमिका पर सही रूप से बल देते हुए भी इन मनोविज्ञानवेत्ताओं ने सामाजिक वातावरण के प्रभाव को प्रत्यक्ष रूप से मन के विकास के साथ संयुक्त कर दिया। इसने निर्विवाद रूप से कार्यों की वास्तविक दशा को सरलीकृत कर दिया जबकि वातावरण के प्रभावों के अनिवार्य स्वरूप से सम्बन्ध रखनेवाले प्रस्ताव, जिसके अनुकूल किसी को होना चाहिए, ने व्यक्ति को सामाजिक 'मशीन' में एक 'दंति' के रूप में परिणत कर दिया। इस विषय में कोई भी चरम समाजशास्त्रीयकरण तथा चरम जीव-विज्ञानीकरण वाली स्थितियों को देख सकता है। दोनों ही अवस्थाओं में जीव विज्ञान सम्बन्धी (आनुवंशिक) अथवा वातावरण सम्बन्धी कारक (छोटे दल, समुदाय, वर्ग), जैसा भी हो, समाभिरूप हो जाते हैं, और वे मानव व्यक्तित्व के विकास में, जिसे स्वयं को एक ऐसे निष्क्रिय प्राणी की भूमिका सौंपी जाती है जो भाग्य की तरंगों के अनुकूल बनता है, अनिवार्य अर्थात अवश्यम्भावी अपरिहार्य निर्णायक तत्वों के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं।

किसी (व्यक्ति) को अनुकूलन की अवधारणा के उस तर्क पर भी विचार करने के लिए रुकना चाहिए, जो जीवोत्पत्ति विज्ञानवेत्ताओं और सामाजिक उत्पत्ति-विज्ञानवेत्ताओं के बीच समान रूप से लोकप्रिय है। इस विषय का बिन्दु यह है कि अनुकूलन की अवधारणा के प्रयोग करने में मानव की गतिविधि के प्रतिभासों का परीक्षण एवं विश्लेषण करने की और अधिक लम्बे समय तक कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अनुकूलन के तर्क के अनुसार उत्तरवर्ती को उस ढंग से, जिससे इसकी अवधारणा की जाती है, स्वतंत्र वातावरण, अर्थात, विशुद्ध पाशविक गतिविधि, के साथ विशुद्ध अन्तर्मुखी सन्तुलन में परिणत किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, दो सोवियत जीवविज्ञानवेत्ताओं अलक्सेई सेवर्त्सोव और व्लादिमिर वैगनर ने पशुओं के मस्तिष्क के विकास की प्रक्रिया के अध्ययन में मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के रूपान्तर को, वातावरण के साथ 'संगठन के परिवर्तनों से रहित' व्यवहार के परिवर्तनों के माध्यम से अनुकूलन के एक प्रकार के रूप में, विश्लेषण किया।

पशुओं के बीच में व्यवहार में व्यक्तिगत परिवर्तनों के, आनुवंशिक अनुकूलन सहित, विकास पर ध्यान देते हुए सेवर्त्सोव और तदनन्तर वगनर ने विश्वास व्यक्त किया कि मानव मन का विशिष्ट लक्षण अनुकूल होने के कार्यों का अवयव संस्थान के लचीलेपन के विकास के साथ ऐसे संयोग में स्थित है जिसके परिणामस्वरूप मानव ने संस्कृति और सभ्यता के कृत्रिम रूप में निर्मित वातावरण के अन्तर्गत अपने व्यवहार को पूर्ण किया। इस प्रकार मानव को जीवित प्राणियों की अनुकूल होने की क्षमता के विकास का परमोत्कर्ष समझा जाता है।

जब मनोवैज्ञानिक विकास की शरीर रचना विज्ञान सम्बन्धी और क्रियात्मक

परम्परा से सयुक्त होती है तो अनुकूलन की अवधारणा 'जीवोत्पत्ति-सम्बन्धी नियम के सन्दर्भ में और शिक्षा और मानवीय गतिविधि, जिनकी व्याख्या केवल बाह्य कारकों के रूप में की जाती है, से स्वाधीन रूप में व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक आयु सम्बद्ध गुणो के परिपक्व हो सकने का भ्रम उत्पन्न करती है।

हम कुछ बड़े बिन्दुओ का सार प्रस्तुत करते हैं।

व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास जिसमे आयु-सापेक्ष विकास सम्मिलित है की प्रक्रिया के सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक अध्ययनों का इतिहास बाह्य एव आतरिक कारको, जीवविज्ञान-सम्बन्धी एव सामाजिक तत्वों, आनुवशिकता और वातावरण के बीच सतत विभाजन के द्वारा अकित किया जा चुका है। परिणाम स्वरूप यह दो दृष्टिकोणो का सघर्ष रहा है। सामाजिक उत्पत्ति विज्ञानवेत्ताओ ने जीवोत्पत्ति विज्ञानवेत्ताओ की सजीव मानवीय गतिविधियो के सभी पहलुओ को आनुवशिक तत्वो की अभिव्यक्ति के रूप में परिणत करने और मानव देह के अवयवी परिवर्तनो में जटिल सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक प्रभावों के परिणाम निकालने के प्रयास करने के लिए आलोचना की। इसके बदले में जीवोत्पत्ति विज्ञानवेत्ताओ ने सामाजिक उत्पत्ति विज्ञानवेत्ताओ की मानव के मनोवैज्ञानिक विकास की प्रक्रिया को 'वातावरण के प्रभावो' के उस रूप में परिणत करने के लिए आलोचना की जिसने मानव को एक सामाजिक अवयव के 'प्रतिबिम्ब' के रूप में चित्रित किया। स्पष्टत ये दोनो दृष्टिकोण दूरतम ध्रुवो को प्रस्तुत करते हैं। किन्तु इसका परिणाम यह नही निकलता कि सत्य, मानव के जीवासामाजिक स्वरूप को मानते हुए, इनके बीच में कही स्थित है। कारण यह है कि मानव का स्वरूप एक समग्र प्रभास है।

कार्ल मार्क्स का यह दृष्टिकोण था कि 'मानव का सारतत्व सामाजिक सम्बन्ध की समष्टि में'[1] स्थित रहता है। और प्राकृतिक विज्ञान सम्बन्धी क्षेत्र (जीव विज्ञान, शरीर विज्ञान) और सामाजिक तथा ऐतिहासिक क्षेत्र से उत्पन्न होने वाले तर्कों को सयुक्त कर देने का परिणाम 'समाभिरूपता' नही किन्तु नीरस विभिन्न दर्शन ग्राही शास्त्र होगा। मानव के विकास के सम्बन्ध में जीवोत्पत्ति-सम्बन्धी तथा सामाजिक उत्पत्ति सम्बन्धी चरम दृष्टिकोणो और उनके सरल यान्त्रिक सयोजन को टालने तथा मानव के सामाजिक सारतत्व से सम्बन्धित मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण से व्यक्ति के विकास के प्राकृतिक एव सामाजिक पहलुओ के परीक्षण के लिए सैद्धान्तिक एव प्रणाली विज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्तो के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

---

1 कार्ल मार्क्स थीसिज आन फ्यूअरबाक इन कार्ल मार्क्स फ्रेडरिक एगेल्स, कलेक्टेड वर्क्स, वाल्यूम 5, प्रोग्रेस पब्लिशर्स मास्को, 1976, पृ० 4

पदार्थ-सापेक्ष सक्रियता

तब व्यक्तित्व के विकास के मूल म होने वाला रचना-तंत्र क्या है ? अथवा अधिक यथाथ रूप से मानव के व्यक्तिगत विकास की प्रेरक शक्तियाँ क्या हैं ? विकास की एक अवस्था से दूसरी के सक्रमण को क्या चीज स्पष्ट करती है ?

पदाथ-अभिमुख सक्रियता की अवधारणा का जो हमारे आधार का प्रयोजन बनेगी और जो व्यक्ति के आत्म-विकास को बल देती है, सोवियत मनोविज्ञान मे कुछ विस्तार के साथ प्रतिपादन और विश्लेषण किया गया है। आयु-सापक्ष परिवतना सहित व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक विकास स्पष्टीकरण करने वाले सिद्धान्त के रूप म आवश्यक सारतत्व क्या है ?

सोवियत मनोविज्ञानवेत्ता इस मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त को लेकर आग बढते हैं कि मानव निर्मित किया जाता है और सक्रियता के जरिये विकास करता है। निस्सदेह, सक्रियता के प्रकार मानव की जातिगत विशेषताओ के द्वारा नियमित होते है और मानव-जाति के ऐतिहासिक एव सास्कृतिक विकास के दौरान उन्नत किये जाते है। किन्तु मानव के मनोवैज्ञानिक जीवन म तथ्यो की तरह वे केवल व्यक्तियो की उपलब्धियो के रूप म ही समझे जा सकते हैं।

उच्चतर स्नायविक सक्रियता की ऐसी विशेषताएँ हैं, उदाहरण के लिए, मानव सक्रियता की मानसिक शारीरिक प्रक्रियाएँ और अचेतन मनोवज्ञानिक प्रभासो के क्षेत्र, जो मानव इच्छा शक्ति से स्वतत्र दिखायी देती है, केवल व्यक्तियो के द्वारा उनकी अनिवाय सक्रियताओ के सहज गुणो के रूप मे अपना लेने पर ही व्यक्तित्व के तत्व बनती ह। जहा तक तथाकथित 'उच्चतर मनोवज्ञानिक कार्यों' (अवधारणा-सम्बधी एव कल्पना अभिमुख चिन्तन, आदश, सासारिक दष्टिकोण, रुचियाँ, इत्यादि) का सम्बध है यह तथ्य, कि वे सामाजिक एव सास्कृतिक सदभ मे विकसित किये जाते है, ऐसा प्रत्यक्ष है कि वह एकमात्र माग, जिससे वे किसी व्यक्ति के ससार और अपने स्वय के अस्तित्व के व्यक्तिगत सम्बध की वास्तविकता म परिवर्तित किये जा सकते हैं है उनकी वह उपलब्धि जो साधारण अनुकरण से लेकर चेतना और रचनात्मकता के उच्चतर चिन्तन की पुनरुत्पादन-अभिमुख सक्रियताओ की अवधि मे हुई हो। सक्षेप म, एक व्यक्ति की विकासशील सक्रियता ही अद्वितीय एव समग्र मानवीय व्यक्ति के रूप म उसके आविर्भाव का स्रोत एव अन्तिम कारण है। तब, यह सोवियत मनोविज्ञानवेत्ताओ का वह दृष्टिकाण है जो मानव मन के रहस्यो को समझने के सक्रियता-अभिमुख सामीप्य पर आधारित है।

आयु-सापक्ष परिवतना को सम्मिलित करत हुए व्यक्तित्व विकास

सक्रियता-अभिमुख समाचारी की धारणा सोवियत मनोविज्ञानिकों सर्गेई रुबिनस्टीन, लेव विगोत्स्की और अलक्सेई लिओन्तीव, की 1920 और 1930 के दशकों की कृतियों में प्रस्तुत की गयी। 1940 तक सर्गेई रुबिनस्टीन सक्रियता के कुछ बुनियादी प्रकार, यथा खेल, शिक्षा और काम, जिनके साथ अति आधुनिक काल में अनुसंधानकर्ताओं ने सामाजिक-संचार भी जोड़ दिया, को स्थापित कर चुके थे और कुछ विस्तार में उनकी विशेषताएँ भी बतायी थीं। व्यक्ति के व्यक्तिवृत्त में कोई सक्रियता के इन प्रकारों के सह अस्तित्व, पारस्परिक अन्तसम्बन्ध और पुनःस्थापन अनुक्रमों को सरलता से पहचान सकता है। इसके अतिरिक्त, ऐसे सन्दर्भ में मानव सक्रियता की मौलिक भूमिका इन बुनियादी रूपों की पहचान के द्वारा इतनी नहीं जितनी मानवीय व्यक्तित्व के विकास को नियमित करने वाले उत्पत्ति-सम्बन्धी सिद्धांत के रूप में उनके परीक्षण (प्रधानतः अलक्सेई लिओन्तीव की कृतियों में) के द्वारा निभाई जाती है। आज व्यक्ति के विकास का दौर छोटे बच्चे के खेलों, बड़े बच्चों और किशोरों की मानसिक क्रियाओं तथा वयस्कों की कार्यों की गतिविधियों के जरिये चलता है। सामाजिक संचार की भूमिका सक्रियता के वैयक्तिक प्रकारों (खेल, शिक्षा, काम) को कार्यान्वित करने के लिए एक साधन की भूमिका होती है किन्तु यह एक स्वायत्त कार्य (अपने विभिन्न रूपों में तथाकथित 'सक्रियता-अभिमुख संचार') तथा व्यक्तिवृत्त (उदाहरणार्थ शिशुओं में) के विभिन्न चरणों पर वैयक्तिक विकास के बुनियादी माध्यम के रूप में भी आवश्यकता की पूर्ति करता है।

सक्रियता-अभिमुख उपगमन की शुद्ध रूप से यान्त्रिक एवं सामान्य व्याख्या के विरुद्ध चेतावनी देते हुए अलक्सेई लिओन्तीव इस बात पर बल देते हैं कि

> फिर भी, समस्त जीवन या सक्रियता में सक्रियता के वैयक्तिक प्रकारों में सरल यान्त्रिक संगठन नहीं होते। कुछेक प्रकार की सक्रियता एक मुख्य भूमिका निभाती है और व्यक्ति के आगे के विकास में उसका अधिक बड़ा महत्व होता है, जबकि दूसरे प्रकारों का अधिक छोटा महत्व होता है। कुछ विकास में प्रधान भूमिका निभाते हैं जबकि अन्य गौण भूमिका निभाते हैं। तदनुसार किसी व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक विकास की निर्भरता सामान्य सक्रियता पर नहीं किन्तु सक्रियता के मार्गदर्शक रूप पर बतलानी चाहिए। इसलिए कोई व्यक्ति कह सकता है कि मनोवैज्ञानिक विकास की प्रत्येक अवस्था उस विशिष्ट प्रकार की सक्रियता से अभिलक्षित की जाती है जो किसी निश्चित अवस्था में बालक के वास्तविकता से सम्बन्ध को लेकर प्रधान भूमिका निभाती है। प्रमुख प्रकार की सक्रियता और बालक के वास्तविकता से

सम्बन्ध मे विचलन एक अवस्था से दूसरी अवस्था म सक्रमण के लक्षणो का सूचक है।"[1]

सक्रियता अभिमुख मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के इन मौलिक प्रावधाना का, जो प्रारभ मे केवल बालको के विकास के सम्बन्ध म ही सूत्रबद्ध किय गये थे, सामान्य रूप से व्यक्तित्व के विकास तक विस्तार होना आवश्यक है। इसका अथ यह है कि जीवन की वैयक्तिक अवस्थाओ मे होने वाल व्यक्तित्व के परिवतनो पर विचार करन मे जिस बुनियादी सिद्धान्त की अपक्षा होगी वह हागा विकासशील एव परिपक्व व्यक्तियो के सभी प्रकार मे प्रकटीकरण के लिए एक केन्द्रीय कडी और 'कुजी' को बनान वाली प्रमुख प्रकार की सक्रियता का एक विश्लेषण।

विभिन्न आयु वग के निश्चित आँकडो पर ध्यान दत हुए व्यक्तित्व के विकास की सक्रियता-अभिमुख व्याख्या करन के लिए जिन दो अतिरिक्त अवधारणाओ की आवश्यकता होगी, वे हैं विकास सम्बन्धी सामाजिक स्थिति की अवधारणा और व्यक्ति के नवीन मनोवज्ञानिक निर्माण की अवधारणा।

सोवियत विज्ञान मे ये दोनो अवधारणाएँ लेव विगोत्स्की और उनके शिष्यो (खासतौर से लिडिया बोझोविच और डेनिल एल्कोनिन) नाम से जुडी हुई हैं। आयु-सापक्ष व्यक्तित्व के परिवतनो की व्याख्या करन मे और सामान्य समाज-विज्ञानीकरण सम्बन्धी प्रस्तावो म भी प्रकृतिवाद एव एक-पक्षीय जीवविज्ञान सम्बन्धी उपगमन का विरोध करने के लिए विगोत्स्की ने सामाजिक कारको की वैयक्तिक कारको के साथ एकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनकी विकास की सामाजिक स्थिति की अवधारणा के पीछे यही अथ है। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग, विकास की आन्तरिक प्रक्रियाओ और उन बाह्य परिस्थितियो, जो प्रत्येक आयु-सापेक्ष अवस्था के लिए विशेषता सूचक है और जो तदनुरूप अवस्था और इसके अतिरिक्त गुणात्मक रूप से नवीन मनोवैज्ञानिक रचनाओ जो इसके अन्त मे आविभूत होती है, को नियत्रित करते है, के विशिष्ट सयोग की ओर सकेत करने के लिए किया है। इसके अनुसार यह अवधारणा सामाजिक, सास्कृतिक एव वैयक्तिक कारको, जिनके भीतर एक प्रधान सक्रियता का दूसरी मे विचलन होता है, को घेरने वाली निश्चित स्थितियो की ओर सकेत करती है।

जहाँ तक नवीन मनोवज्ञानिक रचनाओ का सम्बन्ध है, यह व्यक्तित्व के विकास की सामाजिक स्थिति के विचार के द्वारा स्पष्ट की जाती है ये (विकास की विशिष्ट सामाजिक स्थिति के भीतर) आयु की श्रेणियो से सम्बन्धित वयक्तिक

---

1 ए० एन लिओन्तीव, प्राब्लमी रजविटिया साईखिकी (प्राब्लम्स ऑव साइकोलाजिकल डेवलपमण्ट), मास्को यूनिवर्सिटी पब्लिशर्स, 1972, पृ० 505

अवस्थाओ मे आविभूत होने वाले ऐसे गुण है जिनकी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकाण से, नवीन आवश्यकताओ, प्रेरणाओ, क्षमताओ आदि के रूप मे परिभाषा की जाती है।

अन्तत , ऐसी तीन बडी अवधारणाएँ अस्तित्व मे आती है जिनकी व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया की सक्रियता-अभिमुख व्याख्या के लिए आवश्यकता होती है। हमने यहाँ उनका उल्लेख किया है क्योकि फिर भी परवर्ती प्रतिपादन के दौरान उन अन्य (अवधारणाओ) की भी आवश्यकता होगी जिन्हे, जसे भी आवश्यकता होगी, स्पष्ट किया जायगा।

इस समय हम केवल एक ही प्रश्न उठायें, अर्थात, सक्रियता-अभिमुख प्रस्ताव के मानव के मनोवैज्ञानिक विकास के सम्बन्ध मे अन्य व्याख्यात्मक पद्धतियो से ऊपर क्या लाभ है ?

समुचित रूप से अर्थ लगाये जाने के लिए मनोविज्ञान के विषय, अर्थात, अनिवार्य सक्रियताओ के माध्यम से विकासशील और आत्मपरक गुणो (आवश्यकताओ, आत्मपरक धारणाओ उद्देश्यो, प्रेरणाओ, कल्पनाशक्ति, इच्छाशक्ति आदि) से अवबोधित पृथक व्यक्तित्वो को आत्म विकास की अवधारणा तथा तक सगति की आवश्यकता है। मानव के बुनियादी आत्म विकास पर अमूत रूप से (शुद्ध रूप से बाह्यत) बल देने का कोई प्रयत्न जब उस पर अधिक समीपता से और उन मूत "बाह्य कारको के रूप मे विचार किया जाता है जिनके आत्मीकरण (या आन्तरिकीकरण) को मानव के व्यक्तित्व के आविर्भाव के प्रत्यक चरण की विषय-वस्तु को प्रकट करने वाला कहा जाता है अपरिहार्य रूप से एक अथवा दूसरे प्रकार का मनोवैज्ञानिक रूपान्तरवाद (जो जटिल हैं उसके जो सरल है उसमे रूपान्तरित करना) होना प्रमाणित हो जाता है। काय की सामाजिक रूप से स्थापित पद्धतियो को अपनाने मे केवल मानव की वास्तविक पदार्थ-अभिमुख सक्रियता ही व्यक्ति के आत्म विकास को उसकी सजीव सक्रियताओ के सन्दर्भ मे समझने के लिए उपयुक्त आधार प्रदान कर सकती है। यही प्रधान अर्थ और तदनुसार व्यक्तित्व के विकास और उसके आयु-सापेक्ष परिवर्तनो की प्रक्रियाओ की व्याख्या करने की अनुकूल परिस्थिति है।

सक्षेप मे, व्यक्ति मे आयु-सापेक्ष परिवर्तनो और उस आधार, जिस पर मानव का विकास घटित होता है, पर विचार करने मे उत्तर, व्यक्ति की प्रक्रियाओ के उन परिवर्तनो मे, जो व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया मे सामाजिक स्थितियो की स्थानापन्नता है, और नवीन मनोवैज्ञानिक रचनाओ के आविर्भाव की ओर मार्ग दर्शन के फलस्वरूप घटित होते हैं ढूढना होगा। अवधारणाओ का यह त्रिकोणात्मक समुच्चय व्यक्तित्व के विकास के सम्बन्ध मे बहुत कुछ (यद्यपि सब नही) स्पष्ट कर सकता है। यह दिखायी देता है कि वे मानव के विकास के यथार्थ

कालावधिकरण की ओर मुडना, अर्थात मानव की सजीव क्रियाओ के अतगत सक्रियता के प्रधान रूपो को पहचानना, विकास की सामाजिक स्थितियो म सलग्न परिवतनो का विश्लेषण करना और उन नवीन मनोवैज्ञानिक रचनाओ, जो ऐसे आधार पर विकसित होती हैं, का विशिष्टीकरण प्रदान करना सभव करते है। फिर भी, यद्यपि ऐसा अनुसधान सामीप्य विवेकपूण है, इसका 'उत्पादन' व्यक्ति के आयु-सापेक्ष परिवतनो की विशुद्ध यान्त्रिक योजना होगी, क्योकि व क्षण, जिनमे रूपान्तरण क्रियाएँ घटित होती है उन विशेष विकास बिन्दुओ, जिन पर विगोत्स्की के शब्दो मे, 'विकास का ऐसा अन्य प्रकार' लागू होता है जिसकी आधुनिक मनोविज्ञान मे 'आयु सकट' के रूप मे व्याख्या की गयी है, को प्रस्तुत करत है। अत इसके अनुसार हमे सवप्रथम उस विशिष्ट प्रभास के विशिष्टीकरण की ओर मुडना है।

आयु सीमाएँ

अपने पिता को एक पत्र म काल माक्स ने लिखा

"व्यक्ति के जीवन म ऐसे क्षण होते है जो किसी काल का समाप्ति को चिह्नित करन वाले स्थल होत हैं किन्तु फिर भी स्पष्टतया नयी दिशा की ओर सकेत करने वाले होत हैं। सक्रमण के ऐसे क्षण पर हम अपनी वास्तविक स्थिति स अवगत होने के लिए भूत और वतमान का गिद्ध-दृष्टि से देखने के लिए बाधा होने का अनुभव करते हैं।"[1]

आधुनिक मनोविज्ञान मे मानव-जीवन के ये क्षण व्यक्तित्व के विकास म आयु सकट कहे गये हैं।

आधुनिक सोवियत मनोविज्ञान, जिसने अपने प्रणाली विज्ञान को द्वन्द्वात्मक पद्धति पर आधारित किया है, आयु सकट के अस्तित्व को एक न्यायसगत एव आवश्यक तथ्य के रूप म दखता है। लेव विगोत्स्की ने लिखा कि यद्यपि सकट-कालीन अवस्थाओ का अन्वेषण प्रयोगाश्रित ढग स नही किया गया होता, तो भी सैद्धान्तिक विश्लेषण के आधार पर विकास सम्बधी योजना म तदनुरूप अवधारणा का समावेश किया जा सकता था।

वास्तव मे विकास का द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण द्वन्द्वात्मक छलाग की अवधारणा के सन्निवेश, विकास की पुरानी विषय-वस्तु का नये पाश म 'पराभूत', हेगल के

---

1 काल माक्स, 'लैटर फ्रॉम माक्स टु हिज़ फादर', काल माक्स फ्रेडरिक एगेल्स, कलेक्टेड वक्स वॉल्यूम 1, प्रोग्रेस पब्लिशस, मास्को, 1975, पृ० 10

शब्दा मे, एक नये गुण म सक्रमण का पूर्वानुमान करता है। यह 'किसी के अय राज्य मे' सक्रमण है क्योकि 'कोई' व्यक्तित्व के विकास की एक ऐसी समग्र प्रक्रिया की ओर सकेत कर रहा है जिसके भीतर स्थायित्व के कालो (जो 'पथरील' कहलात है) का अनुसरण सोपान सदृश सक्रमणो और परिवतनो के द्वारा किया जाता है। इस प्रसग को स्पष्ट करन के लिए हम निम्नलिखित धारणा पर विचार करता है जो आयु सापेक्ष अभिलक्षण विकास की किसी पूववर्ती अवस्था में निमित हुए थे और अपन स्वय के काला मे समुचित थे उह अदृश्य होना होगा और रॉकेट के उन मचो के समान, जिन्होंने पहले ही अपना काय पूरा कर लिया है—जिन्होने पहल ही अतरिक्ष यान को पृथ्वी की कक्षा मे छोड दिया है, जलना होगा। हमार विवचन का कुछ-कुछ पूर्वानुमान करन पर जो यह है वही आयु सकटो का बुनियादी अथ है।

सक्षेप मे, किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास—आयु सकटा—म विशिष्ट काला का अस्तित्व एक ऐसा निर्विवाद तथ्य है जिसका अवेषण एक विशुद्ध प्रयागाश्रित ढग से, हम जोडना चाहिए इसके पूव कुछ समय पहले हुआ था। प्राचीन यूनान के एक चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स न जिन तथाकथित सकटकालीन वर्षो के अस्तित्व के विषय म लिखा था वे वस्तुत आयु-सकट है। किन्तु परम्परागत रूप से आयु-सकटो का विकास की 'असगतियो' के रूप म, ऐसी बढती हुई पीडाओ के रूप मे समझा गया जो व्यक्तित्व के विकास को नियन्त्रित करा वाले आन्तरिक सिद्धातो से किसी प्रकार सयुक्त नही थे। विगोत्स्की व्यक्तित्व के विकास म सकटा के क्षणा को व्यवस्थित करने और उनकी सैद्धान्तिक व्याख्या करने के प्रयत्न का बीडा उठाने वाल प्रथम व्यक्ति थ। तदनुसार इस विषय पर नीचे हम उनके मौलिक विचारो को प्रस्तुत करेंगे।

यह आश्चयजनक नही है कि व्यक्तित्व के विकास म आन वाले सकट काल सामाय अवलोकन के जरिये प्रयोगाश्रित ढग से खोज निकाले गय, क्याकि उनका ध्यान म न लाना कठिन है। यह अक्षरश 'हमारी इही आँखो के सामने' होता है कि एक द्विवर्षीय आज्ञापालक बच्चा स्वय को एक अनियन्त्रित, हठी एव अविनयशील त्रिवर्षीय आयु वाले के रूप म परिवर्तित कर दता है, जबकि, उदाहरणाथ एक किशोर बहुत ही थाडे समय म 'वयस्को की आर मुह फाडकर दखने वाले, उनका समथन चाहन वाा और उनक व्यवहार की नकल करन वाल बच्चे से एक ऐसे व्यक्ति के रूप म परिवर्तित हा जाता है जा 'वयस्का के ससार' को चुनौती दता है। इस प्रकार, अपक्षाकृत थाडे समय म ही व्यक्तित्व मे ऐसे आश्चयजनक परिवतन हा जाते है जिन पर ध्यान न दना कठिन हाता है। विकास की शान्त अवधि प्रचण्ड सकटा क द्वारा स्थानापन्न कर दी जाती है।

इसके अतिरिक्त एस सकट निर्बाध रूप म विकास करते हैं, और साधारणतया

अवलोकनकर्त्ताओ को अप्रस्तुत पात है, क्याकि उह् उनकी प्रारम्भिक अवस्थाओ मे पहचानना कठिन होता है । सवप्रथम वे अपन-आप को अपनी चोटी की स्थिति के समय स्पष्टतया प्रदर्शित करते है । एसे समय पर बच्चे 'बकाबू', समय-समय पर हठी और किन्ही शिक्षाशास्त्रीय प्रेरणाओ के प्रति कोई प्रतिक्रिया नही दिखाते । और जबकि यह कहा जा सकता है कि सामा यतया व्यक्तित्व के विकास के पथरीले कालो का पूर्वानुमान किया जा सकता है और उनके कुछ सामान्य लक्षण होते है, आयु सकट अनेक रूपान्तरो और वैयक्तिक आविर्भावो के द्वारा अभिव्यक्त होत हैं। फिर भी सकटा की दूसरी महत्त्वपूण विशेषता का सम्ब ध "विकास के नकारात्मक रूपो की प्रधानता, विनष्टकारी काय के निर्माणात्मक रूपा पर पडने वाले प्रभाव से है ।" पूववर्ती सकट-अवस्था मे उत्पन्न होने वाले नये सघटन नष्ट हा जाते ह और सक्रियता के उन प्रकारो म, जि हान क्रियाआ के प्रधान अथ को सस्थापित तथा व्यक्ति के ध्यान को आत्मसात् किया था, रुचि का अभाव हो जाता है ।

जस विगोत्स्की बल देते हैं, ऐतिहासिक दष्टि स 'आकस्मिक क्रम मे सवप्रथम सात वप के बच्चो के सकट का और तदुपरान्त तीन वप के बच्चो और तेरह वप के बच्चो के सकटो का अ वेपण किया गया। इसके अनुसरण मे ज म के सकट का अ वेपण किया गया और अन्त मे आज के अनुसधानकत्ता युवावस्था, प्रौढावस्था और वद्धावस्था के सकटा का भी उल्लेख करन है । इस प्रकार आयु-सकट मानव के आयु-सापक्ष विकास की एक ऐसी निश्चित सावभौमिक विशेषता है जो ऐस प्रारम्भिक क्षणो को अभिलक्षित करती है जिनमे, अधिकाश बातो मे, सामान्यतया व्यक्तित्व का सहगर्भित पुनर्निर्माण होता है । इसके अतिरिक्त इन सकटकालीन आयु-क्षणो का प्रयोगात्मक रीति से अ वेपण किया जाता है और निरीक्षणा के आधार पर इनकी व्याख्या की जाती है । सारणी-1 मानव के आयु-सापेक्ष विकास के सकट बि दुओ के समाज विज्ञान सम्ब धी पहचान के रूप भेदो मे से एक को प्रस्तुत करती है। यह सोवियत सघ म किये गये अनुसधानो के आधार पर शिशुता से लेकर वद्धावस्था तक होन वाले मानव की आयु-सापेक्ष अवस्थाआ को प्रदर्शित करती है। यह सारणी पूर्णतया उदाहरण के प्रयोजनो के लिए ही प्रदर्शित की गयी है, क्योकि यह सब नही तो, कम-से-कम व्यक्ति के सामाजिक अस्तित्व से सम्ब ध रखन वाले कुछ तथ्यो के सम्ब ध मे व्यक्तित्व के पुनर्निर्माण के बहुत-स सैद्धान्तिक बि दुओ को प्रतिबिम्बित करती है । अनुवर्ती अध्यायो म सकट के पहलुआ के मनोवैज्ञानिक अथ का व्यक्तित्व के विकास के शान्त काला को नियत्रित करने वाल मनोवज्ञानिक सिद्धान्तो के सन्दभ मे परीक्षण किया जायगा । इस अनुच्छेद म हम आयु-सापक्ष विकास के सकट-प्रयासा की मनोवैज्ञानिक व्याख्या के बडे सद्धान्तिक पहलुओ पर विचार करन के लिए रुकेंगे ।

सारणी 1

सकटकालीन आयु-समय

(टी० योरोशेको, 1977 के अनुसार)

आयु समय	लक्षण-वणन
1 वष	वाणी के नपुण्य का प्रारम्भ, चलना, नसरी स्कूल मे प्रवेश
3 वष	बालक के समाजीकरण म महत्त्वपूण कदम, नसरी स्कूल से किंडरगाटन म स्थानान्तरण
6 7 वष	स्कूल के वातावरण मे शिक्षा का प्रारम्भ
12 वष	किशारावस्था का प्रारम्भ
14 वष	कानूनी उत्तरदायित्व की आयु
14 15 वष	8 वर्षीय शिक्षा की समाप्ति, यग कम्युनिस्ट लीग म प्रवेश
16 वष	पासपोट की प्राप्ति, काय करना प्रारम्भ करने की सम्भावना, कानूनी उत्तरदायित्व मे वद्धि
18 वष	वोट देन का अधिकार, विवाह करने का अधिकार, विद्यालयोत्तर जीवन को अपनाना
22 और 23 वष	उच्चतर शिक्षा की समाप्ति, स्वतत्र गतिविधिया का प्रारम्भ, विवाह
24 और 25 वष	पहले बच्चे के जन्म के लिए आदश आयु, व्यावसायिक जीविका का प्रारम्भ
30 वष	मनोविज्ञान मे आवश्यक परिवतन
35 वष	व्यक्ति उस स्थिति को प्राप्त करता है जो उसके जीविका सम्बन्धी अवसरा का निणय करना सम्भव बनाता है, ऐसी आयु जिसके बाद व्यक्ति के स्थिति निर्धारण और विकास मे परिवतन सम्भव नही हाते
40 वष	व्यावसायिक स्थिति म स्थायित्व
45 वष	उत्पादन के क्षेत्र मे अधिकाश वाता मे सारगर्भित गुणात्मक परिवतन की समाप्ति, परिवार के आकार की सीमा, बालका की स्वतत्रता का प्रारम्भ
50 वष	प्रधान जयन्ती
55 वष	स्त्रियो के लिए पेंशन की आयु
60 वष	पुरुषा के लिए पेंशन की आयु
70 वष	आज विकसित समाजा की औसत जीवन की प्रत्याशा

संक्टकालीन अवस्थाओं की पहचान व्यक्तित्व के विकास के आयु-सापेक्ष परिवतनों की धारणा को सम्पूर्ण एवं अधिक स्पष्ट करती है। मनोवैज्ञानिक विकास के सक्ट व्यक्तित्व के विकास के स्थायी आयु-सापक्ष पहलुओं के बीच एक विशिष्ट जल विभाजक सस्थापित करत ह, किन्तु व अपन उपक्रम को उत्पन्न करने वाली सरचना भी उपस्थित करत ह। वे व्यक्तित्व के विकास की सोपान सदृश विशेषता को व्यक्त करते है और एक नये मनोवज्ञानिक विकास के एक नये स्तर एक नय युग की ओर एक छलाग या सक्रमण के क्षण को अकित करत है। वे प्राचीन के लुप्त होने हुए सवमे घन सचयो और एक ऐस शून्य के आविर्भाव, जिनके भीतर नये तत्वो का निर्माण हाता है को प्रस्तुत करते ह। विगोत्स्की ने बल दिया कि इस अथ म विकास अपने निर्माणकारी मिशन अथवा रचनात्मक काय म एक क्षण के लिए भी अवरोध उत्पन्न नही होन दता, तब स अव तक किसी सक्ट-काल के दौरान नवीन मनोवैज्ञानिक रचनाओ का विनाश जिस नियम के अधीन होता है वह इस बात की अपक्षा रखता है कि कुछ व्यक्तित्व की विशेषताओ और अभिलक्षणो का स्थान दूसरे ले लेत ह जो जीवन की नवीन स्थिति के अनुरूप हो जात ह। विकास के विनाश की नकारात्मक प्रवत्तिया सकारात्मक काय का वैकल्पिक, कृष्ण पक्ष से अधिक कुछ नही होती वे दानो पक्ष अन्तर्निहित रूप से एक-दूसर स सम्बधित हात है।

इसके अतिरिक्त, सकट केवल विकास के अपरिहाय एव आवश्यक रूप ही नही कितु हम कह सक्त है कि, वाछित भी है, क्योकि यह स्थापित हो चुका है कि यदि कोई सकट बिना अभिव्यक्ति के अग्रसर होता है तो इसमे मनोवैज्ञानिक विकास म विलम्ब उत्पन्न हो सकता है और व्यक्तित्व के निर्माण के आग के दौर मे प्रतिबिम्बित हो सकता है। यदि समय के किसी विशिष्ट क्षण मे (हम कहे तीसरे वष म) कोई सकट उत्पन्न नही होता तो इसका अथ यह है कि मनो-वैज्ञानिक विकास अत्यधिक धीमी गति स आगे वढ रहा है और सक्रियता का पूववर्ती रूप बालक क द्वारा पूणतया आत्मसात नही किया गया है और तदनुसार सक्रियता के नवीन एव उच्चतर रूप की ओर होने वाले सक्रमण और इसके साथ ही एसी नवीन मनोवैज्ञानिक रचनाओ के आविर्भाव, जिसके बिना बालक की उसके विकास की नवीन अवस्था पर हान वाली सजीव क्रियाएँ या तो कठिन बन जाती हैं या बिल्कुल असम्भव हो जाती है, म बाधा डालता है।

और अन्त मे अन्तिम बिन्दु। जसाकि हम पहल ही उल्लेख कर चुके हैं, आयु-सकट शान्त व्यक्तित्व के विकास की उन अवस्थाओ के साथ अन्तर्निहित रूप मे सयुक्त हात हैं जिनम व परिपक्व होत हैं और प्राय समय पर परस्पर व्याप्त हो जाते है। हम पहले ही बता चुके ह कि किसी सकट के प्रारम्भ को सही ढग म निश्चित करना कठिन होता है। विशेषकर, यह सत्य हाना है क्योकि किसी

अवस्था के शान्त विकास का अन्तिम पहलू स्वय ही सकट के पूर्व-सकट पहलू के अनुरूप हो जाता है, जबकि विकास की अगली शात अवस्था का प्रारम्भ सकट के उत्तर सकट पहलू मे विलीन हो जाता है। साधारणतया, कोई व्यक्ति केवल केन्द्रीय भाग का अवलोकन ही कर सकता है जो विशिष्ट रूप मे सकटकालीन होता है। इसका परिणाम विकास के पथरीले और सकटकालीन पहलुओ के कालक्रमानुसार अकित करने मे उन कठिनाइयो का होना है जो प्राय समय (कुछ महीनो मे लेकर आधे वर्ष और एक वर्ष से भी ऊपर) पर तदनुरूप हो जाते है। जब हम व्यक्तित्व के आयु सापेक्ष विकास के अवधिकरण और ठोस मनोवैज्ञानिक अध्ययन की ओर मुडे तो हमे इस सबको मन मे रखना होगा।

जीवन के काल

मानव का जन्म और मृत्यु के बीच का जीवन स्वय ही एक लहर-सदश प्रक्रिया है और, किसी भी सजीव प्रक्रिया के समान नियतकालिक भी है। इस विकासशील प्रभास के अनुसधानकर्ता का जिस प्रथम कठिन काम का सामना करना होता है वह है उस विकास के बुनियादी कालो की परिभाषा करना। उस सम्बन्ध मे आयु मनोविज्ञान की बडी समस्या व्यक्तित्व के व्यक्तिवृत्त का अवधिकरण व्यक्तित्व के विकास को यथार्थ कालों की परिभाषा करना, प्रत्येक अवधि की लाक्षणिक विशेषताओ को स्थापित करना और एक अवधि से अगली अवधि म सक्रमण की प्रक्रियाओ का अध्ययन है।

आवर्तन की समस्या आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान मे एक पुरानी समस्या है किन्तु यह सदा सामयिक है और आज इसमे अनेक अनुत्तरित प्रश्न, विभिन्न दृष्टिकोण और सारगर्भित प्रगतिया के अतिरिक्त 'अमानचित्रित क्षेत्र' भी इसमे सम्मिलित हैं। किसी व्यक्ति के जीवन के आवर्तन की समस्या का स्पष्ट चित्र पाठक को उपलब्ध करवाने के लिए हम मानव के मनोवैज्ञानिक विकास के सबसे अधिक मौलिक आवर्तनो पर विचार करने का प्रयत्न करेंगे ताकि उस आधार पर हम वर्तमान म मौजूद आयु अवधिकरण के सिद्धान्तो और उसकी रचना का प्रदर्शन कर सकें।

किन्तु इस समस्या के विश्लेषण की ओर मुडने से पहले हमें अवधिकरण से सम्बन्धित आधुनिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो की दो प्रधान समस्याओ को पहचानना होगा।

कोई भी अवधिकरण केवल कालक्रम विज्ञान (विकास की पृथक् अवस्थाओ की पहचान) म ही नहीं किन्तु अनुरूप अवस्थाओ को अभिन्न समझने वाले सिद्धान्तो

की स्थापना म भी सम्बन्धित होता है। सुप्रमाणित एक सुप्रसिद्ध सोवियत इतिहासकार एव सामाजिक मनोविज्ञानवेत्ता बोरिस पोशनेव ने उल्लेख किया है कि अवधि निर्धारण केवल शैक्षणिक एव अनुसधानात्मक सामग्री के अबाध वितरण की छानबीन मे ही नही, किन्तु विशिष्ट विकास के दौरान गुणात्मक परिवतनो के द्वारा प्रेरित होता है। अवधि निर्धारण का सिद्धान्त उसे ही निर्धारित करता है जिसे अनुसधानकर्ता व्यक्तित्व के विकास की पृथक् अवस्थाओ की उस पहचान और दृष्टिकोण को मौलिक रूप से महत्वपूण समझता है जो उन सभी प्रकार के परिवतनो पर विचार करता है, जो व्यक्तिवत्त के दौरान उपस्थित होते है। इस धरातल पर चलते हुए और व्यक्तित्व के विकास के विभिन्न अवधि निर्धारणो को नियन्त्रित करने वाले सिद्धान्तो को स्पष्ट करते हुए किसी व्यक्ति को उनकी बहुलता और विविधता का पता चल जाता है। इसके अनुसार इस महत्वपूण प्रश्न का विश्लेपण करन मे यह आवश्यक है कि इसे आलोचनात्मक दष्टि से देखा जाय और पृथक्-पृथक मार्गों के अन्तगत एक 'विवेकपूण तत्व' को उसे व्यापक बनाये बिना (अर्थात विशिष्ट सिद्धान्तो को ऐसे सिद्धान्तो, जिनसे प्रत्येक वस्तु की परिभाषा और व्याख्या करने की आशा की जाती है, मे परिवर्तित किये बिना) खोजा जाय। यह अवधि निर्धारण की प्रथम कठिनाई है। दूसरी का सम्बध आज के अवधि निर्धारण की अनियमितता से है। हमारे ध्यान मे यह तथ्य है कि आज बालको के आयु विकास के अवधि निर्धारण वयस्को के अवधि-निर्धारण की अपेक्षा अत्यधिक विस्तृत एव सारगर्भित एव प्रमाणित होते हैं। इसके अतिरिक्त बालक के विकास के उच्चकोटि के रुचिकारक नमूने व्यक्तित्व के विकास की आग की अवस्थाओ तक विस्तार नही पाते (ऐसा बिन्दु जो, वास्तव म, सामान्य समस्याओ के दृष्टिकोण से त्रुटियो को प्रस्तुत करता है।) फिर भी, ये अवधि निर्धारण उन मौलिक सिद्धान्तो, जिन पर वे आधारित हैं (उदाहरणाथ लेव विगोत्स्की और डेनिल एल्कोनिन के अवधिकरण) के दृष्टिकोण से अत्यन्त आवश्यक हैं।

इन दो अवलाकनो का अनुसरण करते हुए हम मानव-जीवन के अनेक अवधिकरणो के प्रतिपादन की ओर मुड सकते हैं।

लेव विगोत्स्की ने उन सैद्धान्तिक बुनियादा जिन पर व आधारित हैं, के अनुरूप अवधिकरणो के तीन समूहो की पहचान की

1 मानव के विकास को, अन्य प्रक्रियाओ की सोपान-सदृश सरचना के आधार पर अवस्थाओ की उन अवधियो मे, जो एक या दूसरे ढग से उस विकास स जुडी रहती हैं, विभाजित करके निर्मित किये गये अवधिकरण।

2 व अवधिकरण जा परपरागत मानदड की भूमिका निभान वाले विकास के एक लक्षण के आधार पर निर्मित होन हैं।

3 व्यक्तित्व के विकास मे आवश्यक विशिष्टताओ को स्वय स्थापित करने के प्रयास से जुडे हुए अवधिकरण ।

अवधिकरण के प्रथम समूह मे पूर्व उल्लिखित वे प्रयास सम्मिलित है जो व्यक्ति के व्यक्ति-वृत्त के मनुष्य के जाति-वृत्त मे उस समय मुकाबले मे आते हैं जब व्यक्तित्व के विकास की अवस्थाओ और मनुष्य के ऐतिहासिक विकास की अवस्थाओ के बीच समानान्तर रेखाएँ खीची जाती हैं । यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि इस प्रकार की प्रस्थापना साधारणतया अतर्कसगत होती है । इसके विपरीत, उसी समूह मे ऐसे अवधिकरण सम्मिलित होते हैं जिनके लिए सतर्क मूल्याकन आवश्यक होता है क्योकि वे व्यक्ति के समाजीकरण के महत्वपूर्ण क्षणो के अनुसार व्यक्तित्व के विकास के उपविभाजन पर आधारित होते है, जैसे, उदाहरण के लिए, किसी देश मे अपनायी गयी शिक्षा-व्यवस्था के विशिष्ट अभिलक्षणो से सयुक्त सामाजिक शिक्षा और प्रशिक्षण की अवस्थाएँ । यह, उदाहरण के लिए, फासीसी मनोविज्ञानवेत्ता रेने जासो, जिन्होने फासीसी और अमरीकी शिक्षा तथा प्रशिक्षण व्यवस्थाओ छह त्रिवर्षीय अवधियो, जिनमे से प्रत्येक क्रमश तीन, छह नौ, बारह, पन्द्रह और अठारह वर्ष की आयु पर समाप्त होती हैं, की सगठन सम्बन्धी विशिष्टताओ से प्रभावित बालको के विकास पर विचार किया है, के अवधिकरणो के द्वारा स्पष्ट किया जाता है । हमारी सम्मति मे, इस योजना की खूबी यह है कि यह बालक के समाजीकरण की अवस्थाओ के उस मौलिक महत्व पर ध्यान देती है जो बुनियादी, सामाजिक और शिक्षाशास्त्रीय सस्थाओ (उदाहरण के लिए नसरी किंडरगार्टन, प्रारभिक विद्यालय आदि) के अनुरूप है । जासो के अवधिकरण की बडी त्रुटि यह है कि बालको के विकास को सीधे ही ऐसे सामाजिक शिक्षाशास्त्रीय सिद्धान्तो पर निर्भर कर दिया, जिनका (किसी एक या दूसरे देश मे, विभिन्न सस्कृतियो के उल्लेख की आवश्यकता नही) कोई परिवर्तन स्वय अवधिकरण मे परिवर्तन की अपेक्षा रखता है । अन्त मे, यह अवधिकरण बुनियादी तौर पर मनोवैज्ञानिक नही बल्कि शिक्षाशास्त्री अवस्थाओ से सम्बन्ध रखता है ।

अवधिकरण के दूसरे समूह मे उस प्रकार की योजनाए सम्मिलित हैं जो प्रसिद्ध आस्ट्रियाई मनोविज्ञानवेत्ता सिगमण्ड फ्रायड तथा सोवियत मनोविज्ञानवेत्ता पवेल ब्लोंस्की से जुडी हुई है । यह समूह एक ऐसे गुण और लक्षण पर आधारित है जो सरलीकरण के विभिन्न अशो मे सम्बन्ध रखने वाले अवधिकरण के लिए एक परपरागत मानदड के रूप मे काम करता है । इस कारण फ्रायड ने इस गुण को व्यक्ति के यौन विकास की अवधारणा के रूप मे मुख्य कामोत्तेजक क्षेत्रो के आपेक्षिक महत्व मे क्रमिक परिवर्तन जैसा समझा । इस योजना के अनुसार उन्होने निम्नलिखित अवस्थाएँ निश्चित की नपुसक, अलिगी, द्विलिगी और सलिंगिक

बाल्यकाल के अनुरूप और लैंगिक प्रौढता म समाप्त होन वाली क्रमश मुखवर्ती, गुदा सम्बन्धी, लैंगिक, गुप्त तथा जनन सम्बन्धी। सामाजिक सम्बन्धो की व्यवस्था के अन्तगत व्यक्तित्व मे होने वाले उत्तरवर्ती परिवतन, फ्रायड के अनुसार, व्यक्तित्व के प्रकार मे कोई परिवतन उत्पन्न नही करते और, इसी कारण, उनकी अवहेलना की जा सकती है।

ब्लॉन्स्की अपना अवधिकरण दन्तविन्यास (किसी व्यक्ति के दातो की दशा) के मानदड के आधार पर करते है और बाल्यकाल के निम्नलिखित परिवतनो का भेद दिखलाते है दन्तरहित, दूधिया दात और स्थायी दाँत। वे भार, शरीर सगठन, वातावरण तथा व्यवहार से सम्बन्ध रखने वाली विशिष्टताओ से पूण करते है।

हमारी सम्मति मे इन अवधिकरणो को स्पष्ट प्रकृतिवाद, अर्थात् किसी व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक विकास का एक अवयव सस्थान की प्रौढता मे रूपान्तरण के कारण क्षति उठानी पडती है।

अन्त मे, अवधिकरणो का तीसरा समूह, और जो सबसे अधिक उवर है, बाल्यकाल की अवस्था की आवश्यक विशिष्टताओ को खोजने के प्रयत्न मे लगा हुआ है। इसके अतिरिक्त, इसके प्रस्थापक व्यक्तित्व के विकास की बाह्य प्रक्रियाओ (जैसे शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था) के साथ-साथ विकास के गुणो (नवीन व्यक्तित्व रचनाओ के रूप मे अवलोकित) की ओर प्राय निर्देश करते हैं किन्तु व्रामो, फ्रायड तथा ब्लॉन्स्की के असदश, वे उनका सामान्यीकरण नही करते और उन्हे व्याख्यात्मक सिद्धान्तो के रूप मे नही देखते।

अन्य देशो मे विकसित अवधारणाओ के सम्बन्ध मे हम उन तीन पर विचार करें जो सबसे अधिक मौलिक एव प्रभावशाली हैं जैसे, एरिक एरिक्सन और जेम्म बिरेन (अमरीकी मनोविज्ञानवेत्ता) और अग्रेज लेखक दियाना ब्रॉमले के अवधिकरण।

एरिक्सन का अवधिकरण[1] हमारी सम्मति म, जिस रूप से भी हो, ऐसा है जो सबसे अधिक प्रभावोत्पादक और सबसे अधिक 'मनोवज्ञानिक' है। उसका [illegible] पश्चजनन सम्बन्धी सिद्धान्त (विभिन्न नवीन सघटनो पर आधारित [illegible]) [illegible] आधारित है और विकास की पृथक्ता को सम्पूण बनाता है। [illegible], विकास की प्रत्येक नवीन अवस्था की ओर होने वाले [illegible] बनाने मे पूववर्ती अवस्था के नवनिर्माण अदृश्य नहीं होते और [illegible] होते है किन्तु अपरिवर्तित रूप मे सुरक्षित हो जाते हैं और [illegible] सगठन

1 देखिये ई० एच० एरिक्सन, [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] डब्लू० डब्लू० नॉर्टन एण्ड क०, 19[illegible]

मे समाविष्ट हा जान और नवीन रूप म आविर्भूत सघटनो के साथ समकालिक हो जात हैं। उनकी मौलिक अभिधारणा को निम्न प्रकार से सूत्रबद्ध किया जा सकता है नवीन सघटन व्यक्तित्व विकास की ओर मार्गदशन करते हैं। इस प्रकार जा निर्मित की जाती है अवधिकरण की वह योजना बडी विशाल होती है। एरिक्सन के अनुसार व्यक्तित्व के विकास की दिशा व्यक्ति के उन बढती हुई जटिल सामाजिक माँगो के प्रति विरोध के विचार के द्वारा निर्धारित की जाती है जो व्यक्ति ससार के और स्वय के प्रति दो परस्पर विरोधी दृष्टिकोणो के बीच एक सतत विकल्प का पूर्वानुमान करत है। एरिक्सन की सम्मति मे, वह विकल्प ऐसा है जा *किसी निश्चित अवस्था म विकास के माग को निर्धारित करता है।* एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे सक्रमण की बहिर्जात (सामाजिक) रूप से परिभापा की जाती है और नवीन मनोवैज्ञानिक निर्माण का आविर्भाव उस सक्रमण को केवल मनोवज्ञानिक दृष्टिकोण से अकित करता है।

एरिकसन का अवधिकरण अपनी ही महान प्रसिद्धि का उल्लेख न करते हुए अनेक विशुद्ध मनोवज्ञानिक श्रेष्ठताओ से सम्बध रखता है। उनका नवीन सघटना का अभिनान एव अभिलक्षण विशेष रूप से उत्पादक है। हम यह भी ध्यान करें कि एरिक्सन और सोवियत मनोविज्ञानवेत्ताओ द्वारा अभिज्ञात आयु-सापेक्ष नवीन सघटनो के तदनुरूप अभिलक्षणो म इस सम्बध मे बहुत कुछ उभयनिष्ठ है। व्यक्तित्व के विकास को नियत्रित करन वाले अतर्विरोधो (ध्रुवताओ) को सुनिश्चित करने के प्रयास और व्यक्तित्व के विकास के जीववज्ञानिक नही किन्तु सामाजिक सस्थाना पर बल भी पर्याप्त महत्वपूण है। इसके बावजूद भी, कोई इस योजना को पूणतया स्वीकार नही कर सकता क्याकि सोवियत मनोविज्ञा ऐसे सामाजिक वातावरण के अनुकूलन के विचार मे भाग नही ले सकता जो मानव के विरोध म हो क्योकि जसा पहले दिखाया जा चुका है यह व्यक्तित्व के विकास का नियत्रित करने वाले मौलिक अनुकूलन के विचार के सार्वभौमिक सिद्धान्त को लेकर आगे नही बढ़ता किन्तु इस प्रस्थापना स आग बढ़ता है कि व्यक्ति काय के सार्वभौमिक तरीको को प्राप्त करत ह। यह वही है जो हम एरिक्सन द्वारा प्रस्तुत मनोवज्ञानिक व्याख्या के विराध म व्यासीय रूप से सामने ला देता है।

अय दशो म विस्तार प्राप्त मनोवज्ञानिक विकास दूसरी सभी योजनाएँ उस क्षेत्र जिसमे विभिन अवस्थाएँ आवत्त की गयी है, और विशुद्ध मनोवज्ञानिक अनुकूलन दानो की शब्दावली मे एरिक्सन के अवधिकरण स विशिष्टता की दृष्टि स कम अग्रणी है। फिर भी, वतमान अध्ययन का सम्बध उत्पत्ति-सम्बधी अध्ययनो की दशा को सामाय रूप स स्पष्ट करन क लिए बनायी गयी दो अय याजनाआ स है। *इस बात पर ध्यान दना चाहिए कि य दोनो याजनाएँ एरिक्सन से पहले* विकसित हुई थी और कालक्रमानुसार उसकी कृतियो स पूववर्ती थी। उनस हमारा

सम्बन्ध क्या है ? जेम्स बिरेन का अवधिकरण (देखिये सारणी-2) मापीय (जन्म से लेकर अब तक की अवधि) पक्षों को स्थान-विज्ञान-सम्बन्धी (गुणात्मक अभिलक्षण-विकास के एकदिशीय, एक आयामीय एव अनुत्क्रमणीय स्वरूप) पक्षों से सयुक्त करने का एक रोचक प्रयत्न है। यहाँ हम एरिक्सन की कृति से अधिक व्यापक रूप में व्यक्तित्व के विकास के पहलुओं की अवधि सम्बन्धी विचार को पाते है। पहलुओं की 'बढती हुई अवधि' से सम्बन्धित एक निश्चित नियत्रक सिद्धान्त को प्रदर्शित करने वाले बिरेन के प्रयत्न पर हमे ध्यान देना होगा, जबकि, उदाहरणार्थ पहला पहलू (शिशुता) दो वर्ष तक कायम रहता है और छठा (प्रौढता) 30 वर्ष तक और इसे एक महत्वपूर्ण प्रयोगाश्रित प्रेक्षण के रूप मे देखा जा सकता है।[1]

सारणी 2

जीव के अन्तरालों के पहलुओं की अवधि

(जे० बिरेन के अनुसार, 1964)

पहलू	वर्ष
शिशुता	2
विद्यालय पूर्व अवस्था	2-5
बाल्यकाल	5-12
किशोरावस्था	12-17
प्रारंभिक प्रौढता	17-25
प्रौढता	20-50
विलम्ब प्रौढता	50-75
वृद्धावस्था	75-00

दियाना ब्रामले का अवधिकरण[2] अपने गर्भावधि के उस आवर्तन पर बल देने के कारण ध्यान देने योग्य है जो किसी निश्चित अर्थ मे जीवन के पहलुओं को सम्मिलित करने वाले 'रेकार्ड' (यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से यह विचार नया नहीं है, जैसा कि अगले अध्याय मे उल्लेख किया गया है) के रूप में व्यक्त करता है।

1 जे० ई० बिरेन, दी साइकोलॉजी आव एजिंग, न्यू जरसी, प्रेंटिस हाल, 1964, पृ० 5

2 देखिये डी० बी० ब्रॉमले, दी साइकोलाजी आव ह्यूमन एजिंग, लन्दन 1966

ग्रामले ने व्यक्ति वृत्त का पाच आवतना म विभाजित किया [I] गर्भावधि (गर्भाधान स ज म तक) जिसके अ तगत चार अवस्थाएँ (1) युग्मनज (2) भ्रूण (3) गभ (4) ज म, [II] बाल्यकाल (1) शिशुता (0-18 महीने)(2) विद्यालय पूव अवस्था (18 महीने-5 वष) (3) बचपन (5 11/13 वष), [III] किशोरावस्था (1) वय सन्धि (11/13 15 वष) (2) उत्तरवर्ती किशोरावस्था (15 21 वष) जो पराधीनता स स्वाधीनता की ओर सक्रमण के द्वारा चिह्नित की गयी, [IV] वयस्कता (1) प्रारम्भिक वयस्कता (21-25 वष)—यह सभी प्रकार की सामाजिक क्रियाओ, परिवार, काय के समावेश के द्वारा चिह्नित होती है (2) मध्य वयस्कता (25 40 वष)—यह बौद्धिक एव व्यावसायिक चरमसीमा के अनुरूप होती है (3) उत्तरवर्ती वयस्कता (40 55 वष)—बच्चो का परिवार सेप्रस्थान,(4) पूव निवत्ति आयु (55 65) सामाजिक उपलब्धियो की चरमसीमा, [V] सठियाव (1) निवत्ति (65-70) (2) वृद्धावस्था (70)।

बिरेन और ग्रामने के अवधिकरणा म विशेष दोष ह और कोई उनकी मौलिक शब्दावली मे आलोचना भी कर सकता है। फिर भी, हम इसे नही करेंगे क्योकि मानव के मनोवज्ञानिक विकास की अवधिकरण की व्यवस्थाओ का विस्तृत सर्वेक्षण और उनकी व्यापक आलोचना करना इस अध्ययन का प्रयोजन नही है। हम केवल यही ध्यान करें कि जिन अवधिकरणा का हमने उल्लेख किया है वे सभी हमारे लिए किसी प्रारम्भिक योजना की भूमिका भी नही निभा सकते जिसका कारण वे मौलिक प्रस्थापनाएँ है जिन पर वे आधारित हैं। (वातावरण के साथ अनुकूलन का सिद्धा त और प्रयोगाश्रित तथ्या का आवतन जीवन की अवधिया को सुनिश्चित करने के लिए आधार के रूप मे)

सोवियत मनोविज्ञान का विचार है कि पूव उल्लिखित मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व विकास की सारगर्भित शक्तियो की समझ के अनुमार मनोवज्ञानिक विकास के अवधिकरण का आधार निम्नलिखित मानदण्ड के द्वारा प्रदान किया जाता है सक्रियता के प्रमुख प्रकारो का अनुक्रमण, मनोवैज्ञानिक विकास के गुणात्मक नवीन सघटनो का प्रकटन और विकास की सामाजिक अवस्थाआ म परिवतन।

ऐतिहासिक दष्टि से, इस प्रकार के प्रवेश माग को कार्यान्वित करने के लिए पहला कदम विगोत्स्की के द्वारा उठाया गया जि होने मनोवैज्ञानिक विकास के अवधिकरण की समस्या का व्यक्ति के आयु परिवतन-सम्ब धी सास्कृतिक ऐतिहासिक (साकार ऐतिहासिक) माग से सामना किया। विगोत्स्की के अनुसार मानव के व्यक्तिवृत्त-सम्ब धी विकास के काल उसके विकास की साकार एतिहासिक स्थितिया (विकास की सामाजिक स्थितिया) स अ तर्निहित रूप स जुड़े रहत हैं। विगोत्स्की ने विकास की एक ऐसी आत्म प्रवृत्ति की 'सतत प्रक्रिया' के रूप म

परिभाषा की जिसम, सर्वोपरि, एम नय तत्वो, जो इससे पहल की अवस्थाओ[1] म वतमान नही थे, वे अखण्ड आविर्भाव तथा निर्माण की विशिष्टताएँ थी। इसके अनुसार, विगोत्स्की नवीन वैज्ञानिक सघटनो, जिनको वे विकास की ऐसी विशिष्ट सामाजिक स्थितिया से भी सयुक्त करते है जो इन सघटनो को वापिस अस्तित्व म लाती हैं, के प्रवटन को आयु के अवधिकरण के लिए एक प्रमुख मानदण्ड के रूप मे समझते हैं। एसे सन्दभ मे, किसी अन्य योजना की अपक्षा विगोत्स्की की याजना मे आयु के विकास-सक्टो के महत्व और कालक्रमात्मक स्थान पर अधिक वल दिया जाता है। अतएव, जहा तक बाल मनोविज्ञान का सम्बन्ध है, उनकी योजना का आज भी बिल्कुल आधुनिक दिखाई देना कायम है। (देखें सारणी 3)

सारणी 3

काल-विकास का अवधिकरण

(एल० विगोत्स्की के अनुसार, 1972)

आयु	अवधि या सकट का नाम	अवधि की अवस्था और सकट का पक्ष
0-2 महीने	जन्म का सक्ट	(a) पूव-सक्टकालीन
		(b) सक्टकालीन
		(c) उत्तर-सकटकालीन
2 महीने 1वप	शिशुता	(1) प्रारम्भिक शिशुता
		(2) उत्तरवर्ती शिशुता
1 वप	1 वप की आयुवालो का सक्ट	(a), (b), (c)
1-3 वप	प्रारम्भिक वाल्यकाल	
3 वप	3 वप की आयु वालो का सक्ट	(a), (b), (c)
3-7 वर्ष	विद्यालय पूव की आयु	(1), (2)
7 वप	7 वप की आयुवालो का सकट	(a), (b), (c)
8-12 वप	विद्यालय की आयु	(1), (2)
13 वप	13 वप की आयु वालो का सक्ट	(a), (b), (c)
14-17 वप		(1), (2)
17 वप	17 वप की आयुवालो का सक्ट	(a), (b), (c)

1 एल० एस० विगोत्स्की (दी प्राब्लम आव एज पिरियो डाइजेशन आव चाइल्ड डेवलपमट), (प्राब्लम्म आव साइकालाजी), 1972, न० 2, पृ० 117

फिर भी, विगोत्स्की का अपक्षाकृत जटिल अपन ढंग का व्यापक अवधिकरण भी स्वय अपनी सीमाएँ रखता है, जिनम म, हमारी सम्मति म, सबस महत्वपूर्ण है वयक्तिक जीवन-अवस्थाओ म बालक की सक्रियता म मौलिक परिवतना की उपक्षा (निस्सन्देह, विगोत्स्की इन सकटो को जानत थे, क्योकि उन्होंने इनका अपने बाल मनोविज्ञान के अध्ययन मे बडे अच्छे ढग स वणन किया है) और इस अवधिकरण का मानव के सम्पूण व्यक्ति-वृत्त युवावस्था, प्रौढ़ता और वृद्धावस्था तक विस्तार करने मे असफलता। परिणामस्वरूप, अवधिकरण केवल आंशिक है।

कई दशक विगोत्स्की के अवधिकरण के आविर्भाव को उनके शिष्य और विद्यार्थी एल्कोनिन के उस अवधिकरण स पृथक करते हैं जो पत्रिका वोप्रोसी साइखोलाजी (प्राब्लम्स आव साइकोलाजी—मनोविज्ञान की समस्याएँ) म एक निबध मे प्रकाशित हुआ था। एल्कोनिन न विगोत्स्की के सिद्धान्तो का आग विस्तार किया और इस बार सम्पूण रूप से प्रधान सक्रियता के सिद्धान्त पर आधारित बालक के विकास मे सम्बन्धित एक अधिक विस्तृत मनोवज्ञानिक योजना प्रस्तावित की। उस समय (1970 के प्रारम्भिक दशका) तक प्रधान सक्रियता के सिद्धान्त के साथ-साथ सक्रियता के आनुवशिक रूप से सप्रेषित स्वरूपो के सम्पूण सिद्धान्त अलक्सेई लिओन्तीव और उनके सहयोगिया के अध्ययनो मे सविस्तार प्रतिपादित किये जा चुके थे अवधिकरण की योजना की अनुपस्थिति से सयुक्त उस सिद्धान्त के अनेक लुप्त तत्वो की एल्कोनिन के निबध ने पूर्ति की और साथ ही उसे एक ऐसे व्यापक रूप को प्रदान करने म सहायता दी जो व्यावहारिक काय के लिए भी सुविधाजनक था। अपने स्वय के अवधिकरण मे (देखिये सारणी 4) एल्कोनिन ने बाल्यकाल को उन अवस्थाओ मे विभाजित किया जो सक्रियता के प्रधान प्रकारो के अनुरूप ऐसी दो अवधियो म विभाजित उपविभाजित की गयी जो प्रमुख रूप स मनोवैज्ञानिक सक्रियता के या तो प्रेरणा एव आवश्यकता के क्षेत्र म या परिचालन और तकनीकी क्षेत्र म विकसित हुई हो। एक अवस्था से दूसरी मे सक्रमण उस समय दिखाई देता है जब एक ओर बालक की परिचालन और तकनीकी सम्भावनाओ और दूसरी ओर, उन कार्यों और प्रेरणाओ, जो विकास की पूववर्ती अवस्था मे उनके आविर्भाव की ओर मागदशन करती थी के बीच असगति उत्पन्न होती है। परिणामस्वरूप यह पिछले दशक मे सोवियत मनोविज्ञानवेत्ताओ द्वारा सचालित बाल मनोविज्ञान के जबदस्त बहुसख्यक अध्ययनो के लिए कायकारी योजना बन गयी और यह इस आधार पर है कि बाल विकास को अभिलक्षित करन वाले अनेक बहुमूल्य अनुसधान किये गय। फिर भी, एल्कोनिन के अवधिकरण म भी वही महत्वपूर्ण त्रुटि सम्मिलित है जैसी हम एल० विगोत्स्की की योजना मे पात ह यह केवल बाल्यकाल की आयु के सम्बन्ध मे ही विस्तृत और सुप्रमाणित है।

सारणी-4

बाल्यकाल मे मनोवैज्ञानिक विकास का अवधिकरण

(डी० एल्कोनिन के अनुसार, 1971)

प्रधान सक्रियता	1	2	3	4	5	6
[illegible]	I II	I II	I II	[illegible]	[illegible]	I II
अवधि	शिशुता	प्रारंभिक बाल्यकाल	विद्यालय पूर्व आयु	[illegible]	[illegible]	[illegible]
युग	प्रारंभिक बाल्यकाल		[illegible]		[illegible]	
आयु वर्षों में	0	1	3	[illegible]	[illegible]	15 17





विकास का विश्लेषण करना प्रारम्भ कर सकते हैं। यही कारण था कि जिसमे प्रणालीविज्ञान सम्बन्धी स्थितियाँ, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के सामान्य सिद्धान्त और वे अवधारणाएँ जो विश्लेषण के लिए आवश्यक होती हैं तथा अवधिकरण योजना का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया गया। फिर भी, वर्तमान से सम्बन्धित तथ्यों की ओर हम मुड़ें इससे पहले हम भूतकाल की छोटी यात्रा—जीवन की अवस्थाओं की अवधारणा के इतिहास में एक संक्षिप्त भ्रमण—के लिए चलना होगा। 'बाल्यकाल', 'किशोरावस्था', 'युवावस्था और 'वृद्धावस्था' जैसे शब्दों के समान ही तदनुरूप प्रभाग, जिनको ये शब्द व्यक्त करते हैं, स्वयं ऐतिहासिक रूप से अनुकूलित हैं। जब तक हम अपनी अवधारणाओं को वास्तविक इतिहास से सम्बन्धित नहीं करेंगे, जीवन की अवस्थाओं का हमारा विश्लेषण स्वतः ही सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ से पृथक होने, जिसे किसी रूप में अधर में लटकने के खतरे में हो जायेगा और यह सोवियत मनोविज्ञान के प्रणालीविज्ञान का खण्डन करता है।

" प्रत्येक प्रश्न को इस दृष्टिकोण से कि वह निश्चित तथ्य इतिहास मे कैसे घटित हुआ और उसके विकास की प्रमुख अवस्थाएँ क्या थी और, उसके विकास के दृष्टिकोण से जाँच करने के लिए, आज वह क्या हो गया है इसकी जाँच करने के लिए आधारभूत ऐतिहासिक सम्बन्ध को नही भूलना है।"

—व्लादिमिर लेनिन

अध्याय 2

मानव के जीवन की अवस्थाएँ सस्कृति और इतिहास

जीवन की अवस्थाओ की अवधारणा का सामाजिक-ऐतिहासिक प्रवेश-मार्ग

मानव इतिहास के प्रारम्भ मे

जीवन की अवस्थाओ की पौराणिकी

जीवन की अवस्थाओ का दशन

जादू और जीवन की अवस्थाएँ

जीवन की अवस्थाओ का विज्ञान

आधुनिक ससार मे जीवन की अवस्थाएँ

जीवन की अवस्थाओ की अवधारणा का सामाजिक-ऐतिहासिक प्रवेश-मार्ग

जीवन की अवस्थाओ की अवधारणा का इतिहास अभी तक एक विस्तृत व्याख्या की प्रतीक्षा कर रहा है यह भविष्य के लिए शेष बचा हुआ काय है। हमारे पास सफलता के प्रति आशावान होने का कारण है क्योकि मानव-जीवन की अवस्थाओ के ऐतिहासिक विकास स सम्बन्धित प्रश्नो म आजकल एक जबदस्त रुचि हुई है और प्रारम्भिक अध्ययन पहल ही से प्रकाशित किय जा चुके है।

आयु-वर्गों के मनोविज्ञान का इतिहास निस्सन्देह एक चित्ताकर्षक विषय है। अपनी कृतियो मे से एक मे लब्धप्रतिष्ठ सोवियत मनोविज्ञानवेत्ता अलेक्जेण्डर लूरिया लिखत हैं

"कोई भी केवल इस तथ्य से आश्चयचकित हो सकता है कि व विचारधाराए जिनका सम्बन्ध अनेक मनोवज्ञानिक प्रक्रियाओ के उद्‌भवो स है और जो इस तथ्य को मानत है कि मानव चेतना की सबसे अधिक महत्वपूण अभिव्यक्तियाँ व्यावहारिक सक्रियता के बुनियादी प्रकारो और संस्कृति के यथाथ रूपों के अधीन विकास करती है, मानसशास्त्र सम्बन्धी विज्ञानो के द्वारा सवथा उपेक्षित की गयी है। [1]

यह आयु सापेक्ष मनोविज्ञान पर वहाँ लागू होता है जहाँ व्यक्तित्व के विकास मे आयु-सापक्ष परिवतनो के सामाजिक ऐतिहासिक एव सांस्कृतिक निर्धारण की अवधारणा अपेक्षाकृत नवीन रूप मे आविर्भूत हुई है। बहुत समय तक मानव की आयु सापेक्ष विशिष्टताओ का अध्ययन करने वाले अनेक मनोविज्ञानवेत्ता आयु को मानव की शरीर रचना और उसके विशिष्ट मनोवज्ञानिक अभिलक्षणों के जातिगत गुणो पर पूणतया निभर होने वाली प्राकृतिक मानवीय दशा के रूप में देखते थे। मानव के आयु-सापक्ष मनोविज्ञान से सबधित इस प्रकार की प्रकृतिवादी अवधारणाए 1920 के दशक तक प्रबल रही जब जातिगत अध्ययनो के प्रचण्ड

---

1 ए० आर० लूरिया (कन्सर्निंग दी हिस्टारिकल डेवेलपमण्ट आव काग्निटिव प्रॉसेसेज) मास्को नौका पब्लिशस 1974 पृ० 5

विकास (ल्यूसीन लेवी—ब्रूहल, मार्गरेट मीड, रथ एफ० बेनडिक्ट, फ्राज़ बोआस, निकोलाई मिक्लुखो—मखलाई और अनक अन्य) न व्यक्तित्व के परिवतना के आयु-सापक्ष प्रकृतिवादी स्वरूप को क्षति पहुँचाना प्रारभ किया। अनुसधानकर्ताओ द्वारा सग्रहीत बहुमूल्य जातीय-सास्कृतिक सामग्री ने मानव विकास के सभी नीरस प्राचलिक के सम्बन्ध म यूरोपीय सभ्यता एव तथाकथित समाजो के बीच मे अन्तर को स्थापित करना सम्भव बना दिया वाल्यकाल भिन्नता करता है जैसे किशोरावस्था करती है, और कभी-कभी, जैसा मार्गरेट मीड ने समोआ द्वीप-समूह और इसके बाद न्यू गिनी के देशज लोगो के सम्बन्ध म निश्चित किया—वाल्यकाल से वयस्क जीवन म सक्रमण किशोरावस्था की अवधि के बिना ही प्रभावशील हो जाता है। उस समय तक यूरोपीय लोगो के लिए जो प्रकृति के नियम का 'प्राकृतिक' प्रकटीकरण दिखाई देता था वह सस्कृति के उन विशिष्ट लक्षणो, जिनके अन्तगत मनुष्य ने विकास किया निभर होन के रूप म परिवर्तित हो गया। इन अध्ययनो का महत्व इस बात मे निहित है कि वे पहली बार विश्वासोत्पादकता के साथ यह प्रदर्शित करते है कि किसी जीवन-अवस्था की अवधि, वाल्यकाल से वयस्कता मे सक्रमण के स्वरूप और किसी सकट की उपस्थिति या अनुपस्थिति और किशोरावस्था मे सघष, सही रूप म प्राकृतिक कारणा पर, निभर नही करते किन्तु व्यक्ति के जीवन की ठोस सामाजिक परिस्थितियो द्वारा निर्धारित किये जाते हैं।

इस बात को महत्व देना चाहिए कि बहुत स अशा म मानव की जीवन अवस्थाआ की विशेषताओ तक पहुँचने वाले यथाथ—ऐतिहासिक प्रवेशमाग के उद्भवो को मार्क्सवाद के सस्थापको के विचारो मे ढूढा जा सकता है। जमन विचारधारा मे काल मार्क्स और फ्रेडरिक एगेल्स ने जमनी के युवा-हेगेलीय दाशनिक मक्स स्टिमर की इस कारण आलोचना की कि उन्होने (स्टिमर ने) व्यक्तियो के जीवन पर अमूत रूप से विचार किया और ऐतिहासिक युगो, जातियो और वर्गों की उपेक्षा की। परिणामत यह उनके सबसे समीप वग (बुर्जुआ) की प्रमुख चेतना पर 'अनावश्यक बल', और उस चेतना के मानव जीवन की 'प्राकृत' दशा के रूप म उन्नयन की ओर अग्रसर हुआ। 'इस स्थानीय और पडिताऊ विचार सकीणता मे ऊपर उठन के लिए उन्हे केवल 'अपन' युवक को युवा खिरगिज-कजाख का उल्लेख न करते हुए, उस प्रथम युवा लिपिक को, जिससे उसका सामना होता है, एक युवा अंग्रेज कारखाना मजदूर को या युवा यांकी को सम्मुख रखना पड़ता है।'[1]

---

1 काल मार्क्स और फ्रेडरिक एगल्स 'दी जमन आइडियोलॉजी, इन काल मार्क्स-फ्रेडरिक एगेल्स, कलेक्टड वर्क्स, खं० 5, प्रोग्रेस पब्लिशस, मास्को, 1976 पृ० 129

अपनी पूजी मे काल मार्क्स ने यह भी बताया है कि श्रमिक वर्ग के हितो का प्रतिनिधित्व करने वाले ब्रिटिश ससद के एक वग न वयस्कता की आयु को 12 वष तक बढाने का कैसे प्रयत्न किया।

अनुसधानकर्ता बाल्यकाल एव अन्य जीवन अवस्थाओ के तुलनात्मक ऐतिहासिक विश्लेषण की ओर प्रवत्त हुए ह। इन अध्ययनो के दौरान यह 'अकस्मात प्रकट हुआ', जसाकि प्राय वैज्ञानिक अध्ययनो म होता है जब किसी के प्रसग का बिन्दु परिवर्तित हो जाता है, कि जीवन-अवस्था ऐसी कोई वस्तु नही है जो निरतर एव सम्पूण हो, किन्तु अनिवाय रूप से, सामाजिक एतिहासिक प्रतिभास है। विशेषकर यह देखा गया कि बहुत-सी भाषाओ म आयु-सापेक्ष अवधारणाएँ मूल रूप म सामाजिक अवस्था और सामाजिक स्थिति का अथ रखती थी। उदाहरण के लिए, प्राचीन रूसी शब्द 'ओट्रोक' (जिसका आग जाकर अथ हुआ 'बच्चा'), 'दास , 'नौकर कामगार', 'राजकुमार का योद्धा' के अथ मे था।

सोवियत मनोविज्ञान म जीवन-अवस्थाओ को समझने म सामाजिक ऐतिहासिक प्रवश माग पवेल ब्लान्स्की और लेव विगोत्स्की के अध्ययनो के द्वारा सन्निविष्ट किया गया। 1920 और 1930 के दशका के तिथि निर्धारण तक, अपने अध्ययनो मे इन अनुसधानकर्ताओ ने प्रदर्शित किया कि केवल बाल्यकाल का ही नही किन्तु बाल्यकाल के विकास के इतिहास का भी अस्तित्व है, कि बाल्यकाल एक अपरिवतनीय प्रतिभास नही है और यह मानव जाति के ऐतिहासिक विकास की प्रत्येक अवस्था मे भिन्न भिन्न है। भौतिकवादी आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान के आधार प्रस्तुत करने मे पवल ब्लान्स्की और लेव विगोत्स्की ने बलपूवक कहा कि एक ओर, बालको के आयु-सापक्ष अवधिकरण और मनोवज्ञानिक विकास तथा दूसरी ओर, नयी पीढिया की एतिहासिक दष्टि से बदलती हुई सामाजिक शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था के बीच एक अन्तर्निहित सयोजन है। दोनो विद्वानो ने दढतापूवक कहा कि बाल्यकाल किशोरावस्था और तरुणाई की स्थिति एक साकार ऐतिहासिक दृष्टि स विशिष्ट उस प्रभास का निर्माण करत ह जो समाज क समग्र विकास के स्वरूप और स्तर से जुडा हुआ होता है।

इन विचारो न समूचे आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान पर एक गहरा क्रान्तिकारी प्रभाव डालन का प्रवास किया यद्यपि आज उन्हान अपन आपको बाल-मनोविज्ञान के क्षेत्र मे सर्वाधिक पूण रूप स अभिव्यक्त किया है। यहाँ बाल्यकाल का इतिहास 'बालक के मानसिक विकास का इतिहास [1] है और बालको की आयु-सापेक्ष विशेषताओ के वे प्रति-सास्कृतिक अध्ययन हैं जो ऐसे परीक्षणो के आधार बन गये हैं जिन

1 वी० आई० लेनिन, 'कान्सपैक्टस आव लाजेल्स बुक दी फिलॉसाफी ऑव हिराक्लिटस दी आब्सक्योर आव इफेसस', कलक्टेड वक्स, वा० 29, प्रोग्रेस पब्लिशस, मॉस्को, 1976 पृ० 351

पर आयु-सापेक्ष व्यक्तित्व परिवतना के सास्कृतिक एव ऐतिहासिक सामाजिक-निर्धारण के विचार का मनोवैज्ञानिक म परीक्षण किया जा चुका है। फिर भी यह आशा करने का पर्याप्त कारण है कि जो आज बाल मनोविज्ञान का मानदड है वही कल मानव की जीवन-अवस्थाओ के वणक्रम को व्याप्त करने के लिए आ जायेगा, क्योकि, केवल बाल्यकाल ही नही किन्तु, युवावस्था, प्रौढता एव वद्धावस्था की अवधिया का भी एतिहासिक रूप स विकास होता है और वे सस्कृति के इतिहास मे स्वय का भिन्न रूप म प्रकट करत ह। सक्षेप म यह विश्वास करन का हरसम्भव कारण है कि जो अस्तित्व मे है वह जीवन की अवस्थाएँ नही किन्तु जीवन की अवस्थाआ का इतिहास है जिसके बिना मानव की आयु-सापेक्ष विशिष्टताआ का विश्लेपण केवल विद्यमान आकडा का सकारात्मक वणन ही हो सकता है। इस प्रकार के सरचनात्मक वणन की सीमाआ का अतिक्रमण, उन कारका, जो इन आँकडो म परिवतन उत्पन्न करत ह, पर विचार करके अर्थात उनके आविर्भाव और विकास का नियत्रित करन वाले वास्तविक ऐतिहासिक-सामाजिक-सास्कृतिक रचनातत्र को स्थापित करके ही करना सम्भव है।

इस अध्याय मे प्रस्तुत किये निष्कष ऐस काय का केवल एक आशिक उत्तर है। इसके अतिरिक्त, इस विचार-वस्तु का प्रतिपादन स्वय जीवन की अवस्थाआ के इतिहास की भूमिका होन का दावा कठिनता से ही कर सकता है। यह, बल्कि, ऐस इतिहास का शीघ्रगामी फिर भी, आवश्यक रेखाचित्र है।

सवप्रथम जो कुछ दिखाया जाना चाहिए वह यह है कि व्यक्तित्व मे आयु-सापक्ष परिवतनो की वतमान दशा मानव के सामाजिक जीवन के दीघकालीन ऐतिहासिक एव सास्कृतिक विकास का परिणाम है और यह उस विकास का किसी भी अथ मे अन्तिम परिणाम नही है। यह एक आदश नही किन्तु यथाथ आन्दोलन है। आज भी जीवन की अवस्थाएँ परिवर्तित होन के लिए कायम रहती हैं बाल्यकाल का स्वरूप उसी प्रकार बदल रहा है जैस किशोरावस्था का, और युवावस्था, प्रौढता एव वृद्धावस्था म भी गहर परिवतन चल रहे हैं। इन आयु-सापक्ष परिवतना के प्रत्यक्ष भविष्य का ताकन के हतु और उन प्रवत्तियो का, जो उनके विकास को चिह्नित करत है, पता लगान के लिए जीवन की अवस्थाआ के सम्पूण इतिहास का पीछे मुड कर दखना आवश्यक है।

आदिम समाजा की आयु-समस्या को समझने म प्रधान रूप मे 'पौराणिक' चेतना पर उसके उस विशेष महत्व को मान्यता दना आवश्यक है जो उस विशिष्ट संसार को सगठित करता है और उसको समझन की कुजी प्रदान करता है। उसी ही अथ म यह भी है कि हम प्राचीनकाल मे आयु चेतना के दाशनिक स्वरूप' और मध्यकालीन समाज मे इसके 'जादुई' अथ सम्बन्धी प्रयत्नो की ओर सकेत करेंगे। स्वभावत इस प्रकार का महत्व आशिक रूप मे परम्परा का विषय है और किसी

ऐतिहासिक काल पर इसके साथ-साथ अनेक पहलुओ (दार्शनिक और नैतिक, सौन्दय सम्बन्धी और प्राकृतिक विज्ञान सम्बन्धी, आर्थिक और शिक्षाशास्त्र सम्बन्धी, आदि) पर विचार किया जा सकता है। किन्तु हम सबसे अधिक स्पष्ट वह 'रग', जो किसी निश्चित क्षण पर मानव के जीवन की अवस्थाओ के ससार को सगठित करने मे सबसे बडी भूमिका निभाता है और जो किसी ऐतिहासिक अवस्था मे आयु-सापेक्ष परिवतनो के वणक्रम म एक व्यवस्था लाता है, चुनना पसन्द करते हैं। ऐसा प्रतीत होगा कि ऐसे प्रवेश माग के कुछ-कुछ परम्परागत स्वरूप के होते हुए भी यह हमारे अनुसधान की दो आधारभूत स्थितियो—यथा, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और व्यापक दृष्टिकोण—के सारगभित सम्मिलन को, सबसे अधिक लाभकारी ढग स, प्राप्त करना सम्भव बनाता है।

मानव इतिहास के प्रारभ मे

प्रसिद्ध जमन लेखक टामस मन न मानव जाति के अतीत की एक 'अथाह कुए' अर्थात एकदम तलरहित' से तुलना की है। जिस प्रकार भी कोई आगे बढे तो भी वह तले तक नही पहुँचता, इसके बदले म 'अतीत के दृश्यो' का प्रकट होना कायम रहता है।

"इसी कारण वस्तुत किसी विशेष मानव समुदाय, जाति अथवा एक ही निष्ठा वाले परिवार के इतिहास के प्रारभ की परपरागत प्रत्यन्तर प्रसग की शब्दावली मे परिभाषा की जाती है और यद्यपि हम पूरी तरह समझत हैं कि हम कुए की गहराइयो को नापने म कभी सफल नही होगे हमारी स्मृतियाँ अन्तर के ऐसे बिन्दु पर ठहर जाती है और हम कुछ प्रकार की विशिष्ट राष्ट्रीय एव व्यक्तिगत ऐतिहासिक सीमाओ को स्वीकार करके सन्तुष्ट हो जाते हैं।'[1]

होमो सपीन्स जाति के सवप्रथम प्रकट होने से लेकर अब तक लगभग 1600 पीढियाँ हो चुकी हैं किन्तु इनम स प्रथम को सूक्ष्मता के किसी भी अश तक पहचानना कठिनता से ही सभव है। वास्तविक तथ्य म अनुसधानकर्ता प्रथम कई सौ पीढियो को एक सामान्य नाम आदिम मानव, के अन्तगत एक साथ सम्मिलित कर देते है और यद्यपि समय के सन्दभ म उनका इतिहास आधुनिक मानव के

---

1 ग्रियि, टामस मन्न, जोसेफ अण्ड सीन बुडर वैण्ड आई० स्टॉकहोम बमन फिशर वरलाग 1948, पृ० 9 10

इतिहास से आग बन जाता है (क्योंकि यह कई दसियो हजार वर्षों तक चलता रहा) तो भी, हमारे लिए इसकी वपौती अनेक लुप्त जतु-शास्त्रवेत्ताओ और मानवशास्त्रवेत्ताओ के भीमकाय प्रयत्नो के द्वारा उपलब्ध तथ्यो के अपेक्षाकृत मर्यादित सग्रह तक सीमित है। हमारे अपने विषय के सम्बन्ध मे इन निष्कर्षो से क्या सीखा जा सकता है ? आदिम समाजो म आयु-वग की सीमाओ मे क्या परिवतन हुए ? किन आयु विशिष्टताओ ने आदिम मानव के आयु वर्गों को चिह्नित किया ? हम प्राप्त जानकारी के प्रासगिक अशों को एकत्र करने की चेष्टा करेंगे।

हम अनेक स्रोतो से स्थापित कर सकते हैं कि आदिम समाज मे जीवन की औसत लम्बाई 19 और 21 वर्षों के बीच घटती-बढती रहती थी। प्रत्यक्ष रूप से किसी व्यक्ति का सम्पूण जीवन वत्त उस समय प्रत्येक पीढी के लिए निर्धारित दो या तीन दशको की शब्दावली मे नापा जाता था।

मानव-जाति के प्रारभ मे और उसके सास्कृतिक विकास की प्रारभिक अवस्थाओ मे प्रौढ मनुष्य ही प्रमुख व्यक्ति होता था। वह इद गिद के इलाको को जानता था और उसके पास जीवन के अनेक वर्षों का अनुभव होता था वह जानता था कि फल कब और कहाँ पकेंगे, मछलियाँ कसे पकडी जायेंगी और पशुओ को कैसे मारा जायेगा। यह ज्ञान उसे समाज की सबसे महत्वपूण एकीकृत करने वाली कडी बना देता था। किन्तु जसे ही वद्धावस्था आ पहुँचती थी और उसकी शक्ति उसे निराश कर देती थी उसका ज्ञान और दक्षता व्यथ हो जाते थे। असहाय वृद्ध मनुष्यो को उस समय परित्यक्त कर दिया जाता था। यही कारण है कि आदिम समाजो मे वयोवृद्ध लोगो की कमी होती थी। प्राचीन पुरापाषाण युग के 20 ज्ञात प्रतिनिधिया (निएण्डरथेलियन) के अतिरिक्त उत्तर पुरापाषाण युग के 102 प्रतिनिधियो मे से कोई एक भी व्यक्ति ऐसा नही पाया गया जिसकी आयु मृत्यु के समय 60 वष से आगे बढी हो, मध्यपाषाण युग के 65 प्रतिनिधियो मे से केवल एक ही व्यक्ति ऐसा पाया गया जिसकी आयु 60 वष से आग बढी थी, नवपाषाण युग मे वृद्ध व्यक्ति मृतको की कुल सख्या के 10 प्रतिशत का ही प्रतिनिधित्व करते थे, *बडे-बडे देशान्तरणो के अनुवर्ती युग मे वृद्ध व्यक्तियो का अनुपात* केवल किंचितमात्र ही अधिक था जैसा फ्रैंक जातिया के कब्रिस्तानो की खोजो से सूचित होता है।

आदिम समाजा मे वृद्ध व्यक्तियो की सख्या म क्रमिक वद्धि आर्थिक कारणो से वृद्ध व्यक्तिया को मार डालने की प्राचीन प्रथा के क्रमिक सिथिलन के द्वारा बडे रूप मे स्पष्ट की गयी है। इसे प्राय धार्मिक आवश्यकता के रूप मे प्रस्तुत किया गया, यद्यपि वास्तविक व्यवहार मे इसे भोजन की अपर्याप्तता के रूप मे प्रेरित किया गया था। यह समान रूप स व्याप्त शिशु-हत्या की विशद प्रथा का भी कारण था।

वृद्ध व्यक्तियों के समान ही बालक भी स्वयं को सामाजिक जीवन की परिधि में पाते थे। किन्तु जीवन में अपना स्थान प्राप्त करने के लिए किसी बालक को सर्वप्रथम जीवित रहना होता था, और यह कठिन था। अनुसंधानकर्ता सोचते हैं कि पृथ्वी पर मानव के अस्तित्व के प्रारंभिक काल में बाल मृत्यु 50 प्रतिशत से अधिक बढ़ गयी। किन्तु यद्यपि कोई बालक जीवन के प्रथम और सबसे अधिक कठिन वर्ष में जीवित रहा तो भी उसके आगे जीवित रहने के अवसर न्यूनतम थे। बालक उन रोगों से नष्ट हो जाते थे जिनसे लड़ने में आदिम मनुष्य असमर्थ था। भोजन की आपूर्ति कम थी और पैतृक देखभाल न थी। इसके अतिरिक्त, जैसा पहले उल्लेख किया गया, शिशु हत्या की वह प्रथा मौजूद थी जो कृषि का अनुसंधान न होने तक जारी रही। शिशु-हत्या एक विस्मयकारी पैमाने (15 प्रतिशत से 50 प्रतिशत) तक व्यवहार में आती थी। मिशनरियों के द्वारा एकत्र किये गये आँकड़ों के अनुसार ताहिती पर नवजात बालकों में से दो तिहाई का गला घोंट दिया जाता था या एक बाँस की तेज छड़ी की सहायता से मार डाला जाता था।

आदिम प्रथाओं के अनुसार सर्वप्रथम दो श्रेणियों के बालक मारे जाते थे। वे जो कमजोर होते थे और जिनका विकास जैसे-तैसे होता था (विशेषकर लड़कियाँ) और वे बालक जो परिवार में तीसरे या चौथे इत्यादि होते थे।

शिशु हत्या की प्रथा के साथ-साथ नवजात बालक कभी कभी केवल अपने भाग्य भरोसे भी छोड़ दिये जाते थे। यह प्रथा अपेक्षाकृत लम्बे समय तक अस्तित्व में रही और विकसित राज्यों (प्राचीन पूर्व मिस्र) के आविर्भाव में दिलचस्पी रखते हुए भी अधिकारियों द्वारा बर्दाश्त की जाती रही। यह मत माना जाता है कि बालकों को छोड़ देने की प्रथा का 'वैधीकरण' शिशु हत्या के प्रभाव में डाले जाने वाले बालकों की संख्या को घटाने के उद्देश्य को सम्मुख रखकर किया जाता था। प्राचीन यूनान में भी माता पिता को नवजात बालकों का परित्याग करने की अनुमति थी। वस्तुतः, यह प्रथा पुरातत्व काल में प्रायः सभी बड़ी-बड़ी सभ्यताओं में विशद रूप से व्याप्त थी। तिस पर भी या तो यांत्रिक या औषधीय उपायों के माध्यम से गर्भपात आमतौर पर व्यवहार में आता था।

छोटी बालिकाओं का भविष्य विशेष रूप से दुःखपूर्ण था। यद्यपि बालक और बालिका दोनों को ही अनुष्ठानपूर्वक मारा जाता था यदि उनके कोई शारीरिक दोष होता, यदि उनकी माँ मर गयी होती या यदि वे किसी 'अभागे दिन' में जन्म लेते तो भी बालिकाओं को आर्थिक कारणों—भोजन की कमी—से पहले मारा जाता था।

एक बार जब मनुष्य ने अग्नि के उपयोग पर आधिपत्य कर लिया तो वयोवृद्ध व्यक्तियों और बालकों की स्थिति में सुधार हुआ जैसे ही प्रथम सामाजिक श्रम विभाजन (आयु और लिंग पर आधारित) प्रकट हुआ। उस समय पुरुषों की

भूमिका यह थी कि भोजन की व्यवस्था कर जबकि स्त्रिया को, बालको और वद्ध लोगो के साथ, अग्नि के लिए सावधानी रखनी होती थी।

सक्षेप म, आदिम समाजो म प्रौढ वयस्को द्वारा अग्रणी भूमिका निभाई जाती थी। परिणामत मानव का सम्पूण अस्तित्व इस प्रौढता को प्राप्त करने का प्रयत्न था जिसके बाद वह बिना वृद्धावस्था प्राप्त किये ही एक छोटी-सी चमक के बाद और ऐसे वशजो, जिनके जीवित रहने के अवसर कम होते थे, को छोड जाने के बाद इस ससार से अदश्य हो जाता था। इतना होते हुए भी, मानव-जाति ने इन कठिन परिस्थितियो मे स्वय का पुनरुत्पादन करने की व्यवस्था की और भविष्य के लिए जीवित रही। यह वह समय भी था जब मानव की जीवन-व्यवस्थाओ से सम्बधित अवधारणाओ का विकास होना प्रारभ हुआ। वे प्रारभिक रूप से मानव की दनन्दिन क्रियाओ मे अन्त स्थापित थी।

जीवन की अवस्थाओ की पौराणिकी

प्राचीन मानव की समय सम्बधी अवधारणाएँ, जो उसकी जीवन की अवस्थाओ की समय मे प्रतिबिम्बित हुई थी, वे आधुनिक मानव की अवधारणाओ से भिन्न थी। वे आधारभूत रूप म कुछ-कुछ विरोधाभासी प्रवेश-माग मे अभिलक्षित थी जिनकी हम समय के 'अलौकिक अथवा लौकिकप्राय' दष्टिकोण मे व्याख्या करेंगे।[1] कुछ परिस्थितियो मे चेतना के पुरातन रूप एक ऐसी घटना को, जो अतीत मे घटित हुई और एक ऐसी घटना जो वतमान मे घटित हो रही है, समय की एक ही अवधि मे घटित होने वाले उसी श्रेणी के प्रभासो के रूप मे देखेंग। जिराल्ड व्हिट्रो लिखते हैं, "हमारे सम्मुख, इसीलिए, एक ऐसी विरोधाभासी स्थिति प्रस्तुत की जाती है कि मानव ने अपनी काल सम्बधी प्रथम सजग चेतना मे मूल प्रवृत्तियो के रूप मे काल से बढकर होने या उसको ममाप्य कर देने का प्रयत्न किया।"[2]

आइगोर कोन, एक सोवियत अनुसधानकर्ता ने, प्राचीन मानस की इस विशिष्टता की व्याख्या 'चेतना की पौराणिकी-सम्बधी अपविस्तृता' के उस रूप मे की है जो किसी व्यक्ति के लिए अपने 'स्वय' को अपने अनगिनत पूवजो से पृथक करना असभव बना देता है। जोसेफ एण्ड हिज ब्रदस मे टॉमस मन्न प्राचीन चेतना

---

1 आर० जी० कोलिंगवुड, दी आइडिया ऑव हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड, क्लेरेंडन प्रेस, 1946 पृ० 15

2 जी० जे० व्हिट्रो दी नेचुरल फिलॉसाफी ऑव टाइम, लन्दन, टॉमस नेल्सन एण्ड सन्स, लि० 1961, पृ० 55

की इस विशेषता को अत्यन्त निपुण ढंग से सम्प्रेषित करते हैं। बूढ़ा दास एलीजर उस कहानी को कि कैसे यित्जहाक ने रिबेका से विवाह का प्रस्ताव किया, ऐसे सूक्ष्म ब्योरे के साथ वर्णन करता है मानो वह उसके स्वयं के जीवन की घटना हो। वास्तविक रूप में, यह घटना उसके पूर्वजों में से किसी से सम्बन्धित थी जिन्होंने परिवार में इस कार्य को सम्पन्न किया था।

'जोसेफ ने एलीजर के वृत्तान्त को ऐसे आनन्द के साथ सुना जो उस वृत्तान्त के व्याकरणिक रूप पर प्रकट किये गये आश्चर्य के होते हुए भी कम न हुआ था। इस असलियत से भी वह तनिक भी अशान्त नहीं हुआ कि वृद्ध पुरुष की 'आयु पर्याप्त रूप में स्पष्ट सीमाएँ नहीं रखती किंतु पिछले भाग से खुली थी, यदि यह भी मान लिया जाय, तो उसके पार विलीन हो गयी, उसकी वैयक्तिकता की सीमाओं के परे स्थित हो गयी और उन भावात्मक अनुभवों को आत्मसात किया जो यदि दिन के प्रकाश में देखे जाते तो प्रथम की अपेक्षा तृतीय व्यक्ति के रूप में स्मरण किये जाते और पुनः उत्पन्न किये जाते।"[1]

संसार का पौराणिकी सम्बन्धी प्रत्यक्ष ज्ञान केवल देवताओं और वीरों के कार्यों से सम्बन्ध रखने वाले उन वृत्तान्तों, जिनके पीछे देवताओं और आत्माओं की इच्छा शक्ति के द्वारा नियन्त्रित संसार का वास्तविक प्रत्यक्ष ज्ञान छिपा हुआ है में ही नहीं, किन्तु कार्यों और कर्मकाण्डों, नकाबों, नृत्यों, गोदना, दीक्षाओं, आदि, में भी अभिव्यक्त होता है। पौराणिकी—मान्य व्यक्तियों के साथ जो कुछ घटित होता था' वह प्राचीन मनुष्य के लिए एक प्रतिमान के अनुकरण के लिए उदाहरण और आदर्श बनने वाले, स्वरूप को प्राप्त कर लेता था। पुराण आदिम समाजों में अपनाये गये मूल्यों की विशिष्ट व्यवस्थाओं पर बल देते हैं और विशिष्ट व्यवहार सम्बन्धी मानदंडों का समर्थन करते हैं और उन्हें स्वीकृति देते हैं। वे समाज की एक निश्चित 'भाषा' का निर्माण करते हैं जिसके माध्यम से आदिम समुदायों के सम्बन्ध नियन्त्रित होते हैं। ऐसे समाजों में मानव-आयु की सभी अवधारणाएँ पुराण में स्थापित प्रथाओं का समुच्चय होने के कारण एक कर्मकाण्डी स्वरूप रखती थीं। यहाँ आयु श्रेणियाँ, भी उस 'भाषा' की भूमिका निभाती थीं जो समाज की परंपराओं को सुरक्षित रखना संभव बनाती थी।

आज का मानव काल की ऐसी अवधारणा को अव्यवस्थित और अस्त व्यस्त पाता है। फिर भी इसमें अपनी स्वयं की संगतता इसका स्वयं का तर्क और सौन्दर्यशास्त्र है। जबकि प्राचीन मनुष्य (किसी अर्थ में आधुनिक मानव के समान) कतिपय काल आयामों (पवित्र काल, उत्सवों का काल बलिदानों का काल, आरम्भ काल का पुनरावर्तन में संयुक्त एक पुराण के पुनर्निर्माण का काल और

---

1 टॉमस मन्न, पूर्वोद्धृत

अत मे वयक्तिक अनुभव म अति व्यक्ति के स्वय के जीवन का काल) मे एक साथ रहता था तो उस परिवर्तित काल का सामाय प्रवाह एक नियत्रक सिद्धान्त के अधीन होता था और अनुत्क्रमणीयता (रखीय काल) पर उत्क्रमणीयता (चक्रीय काल) को प्रवलता के रूप मे अभिव्यक्त किया जाता था। यह प्राय सभी प्राचीन सभ्यताओ और कुछ उन तत्कालीन परम्परावादी सस्कृतियो, जिहोने प्राचीन स्वरूपो की विशेषताओ को बनाये रखा, का अभिलक्षण है।

एक सोवियत अनुसधानकर्ता, एरोन गुरेविच, जिहोने इस विशिष्ट समस्या का अध्ययन किया है, उल्लेख करते हैं कि प्राचीन सस्कृतियो मे अन्तर्निहित मूल्यो की व्यवस्थाएँ अतीत से सनिहित रूप से जुडे हुए दैवी धारावाहिक वतमान से सम्बधित विचारधारा पर आधारित थे। प्राचीन चीन मे काल का प्रत्यक्ष ज्ञान एक पूजन पद्धति विषयक क्रम से सम्बध रखने वाले और एक कठोर आवतन, जसे, उदाहरण के लिए पूव का 60 वर्षीय चक्रीय कैलेण्डर, के अधीन युगो, वशो और शासनो का एक चक्रीय क्रम है।[1] प्राचीन भारत की काल सम्बधी अवधारणा को अभिव्यक्त करने वाला प्रतीक एक अतरिक्षीय अनुक्रम के चक्र का चिह्न था जो जम और मत्यु के चक्र को निरतर नवीन करते हुए शाश्वत रूप से घूमता है। हमे प्राचीन मिस्रियो के बीच म भी ऐसी ही अवधारणाएँ मिलती हैं।[2]

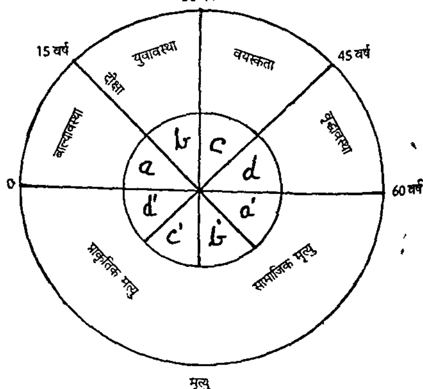
एक सुप्रसिद्ध अमरीकन मानव जाति वणनकार कोलिन एम० टनबुल, जिहोन अफ्रीकी लोगा की उत्पत्ति का प्राचीन काल म उनकी आयु-मापेक्ष अवधारणाओ को सम्मिलित करत हुए अध्ययन किया है, ने एक ऐसे आयु-सापेक्ष चक्रीय क्रम का वणन किया है जो समूची अवधारणा के उदाहरण के रूप मे काम आ सकता है। (देखिये सारणी 5) इस सारणी से देखा जा सकता है कि 15 वष की अवस्था मे अभिजातो का प्रत्यक वग दीक्षा के ऐसे कमकाड मे से गुजरता है जिसका विभिन लोगो और भिन भिन सस्कृतियो म व्यवहार किया जाता है। यह कम काण्ड बाल्यावस्था की समाप्ति और वयस्क जीवन के प्रारम्भ का प्रतीक होता है और अनेक दु खदायी चनौतियो का साथ लिये हुए होता है। दीक्षा के अनुसरण मे उस वग का एक नाम रखा जाता है और उस 'जात समझा जाता है (यही तथाकथित 'पुनजम की अवधारणा है) यह और अधिक 15 वर्षों तक कायम रखा जाता है, उस समय उस वर्ग के सदस्य उस वग की एकता का उसके सम्पूण अस्तित्व के दौरान सुरक्षित रखत हुए, एक नवीन आयु-श्रेणी मे स्थानान्तरित हो जात हैं। अधिक आयु वग के पुरुष, यदि वे 60 वष के हो जान तक जीवित रह,

---

1 एम० ग्रैनेट, ला पन्सी चाइनोइग, परिस, 1934, पृ० 86, 90, 97, 103
2 एच० फ्रैंकफट, दी बथ आव सिविलिजेशन इन दी नियर ईस्ट, लन्दन, 1951, पृ० 20

सारणी 5

चक्रीय आयु-क्रम[1]



इस संतोष के साथ देख लेते है कि बालक उत्पन्न किये जा रहे हैं जिन्हे 15 वर्ष की आयु मे उस 'प्रतिच्छाया वर्ग' के रूप में दीक्षा दी जायगी जिसे वही नाम दिया जायेगा जैसा व्यक्तियों के उस वर्ग को दिया गया था जो अब वास्तविक (प्राकृतिक अथवा सामाजिक मृत्यु के समीप पहुँच रहा है) इस रीति से पीढियो (वर्गो) के बीच एक कडी सुरक्षित की जाती है प्रत्येक का अपना स्वरूप होता है और प्रत्येक 60 वर्ष पर उसी नाम के अधीन पुनर्जन्म लेता है। जैसा हम देखते है काल एक चक्र के रूप में घूमता है।

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार का आयु वर्गों का क्रम एक

1 कोलिन एम० टर्नबुल मन इन अफ्रीका, गार्डन सिटी, न्यूयार्क, ऐंकर प्रेस/ इंग्लैंड, 1976, पृ० 51

आयु-सापक्ष श्रम विभाजन का स्थापित करने के लिए एक सुविधाजनक प्रणाली की अपक्षा अधिक है, यह गम्भीर और सार्वत्रिक दीक्षा कमकाण्डो के माध्यम मे एसे दृढ सम्बन्धा का निर्माण करता है जो एक सामान्य काय के सदभ म व्यक्तियो के बडे समूहा का जोडत ह, 'निष्ठा' की विशिष्ट भावनाएँ उत्पन्न करते ह, शक्ति के वितरण के लिए आधार प्रदान करते है, यह युवको को भूमि, पशु, फसला की रक्षा करने म सामूहिक रूप मे काय करने के लिए प्रोत्साहित करता है और 'सामाजिक भूमिकाआ को आयु की अवधियो मे विभाजित करता है अर्थात् यह अन्त मे लोगा की आत्मिक बिरादरी का निर्माण करता है।"[1]

किन्तु प्राचीन समाजो म चक्रीय आयु वर्गीकरणो की प्रबलता ने रेखीय आयु-वर्गीकरणो (अनुत्क्रमणीय काल) की आधारभूत अवधारणाओ के समकालिक आविर्भावो को नही रोकता। हम, उदाहरण के लिए, प्राचीन चीन के जीवन अवस्थाआ के वर्गीकरणो मे से एक मे पाते ह। (देखिए सारणी 6) कोई भी

सारणी 6

जीवन की अवस्थाओ का प्राचीन चीनी वर्गीकरण[2]

	वष
युवावस्था	20 वष तक
विवाह की आयु	30 वष तक
सामाजिक उत्तरदायित्व पूरे करने की आयु	40 वष तक
अपनी स्वय की भूला का ज्ञान	50 वष तक
सक्रिय जीवन की अन्तिम अवधि	60 वष तक
वाछित आयु	70 वष तक
वृद्धावस्था	70 वर्ष से ऊपर

अवस्थाओ को विशिष्टीकृत करने वाले सामान्य आधार की अनुपस्थिति और पृथक्-पृथक् अवस्थाआ के नामो के आध्यात्मिक एव लाक्षणिक स्वरूप (उदाहरणाय, 'किसी की स्वय की भूलो का ज्ञान'), से चकित रह जाता है। बाल्यावस्था क स्पष्ट चरण का अभाव भी अभिलक्षण है। यह सीधे ही युवावस्था मे सम्मिलित किया गया है।

कोलिन एम० टनबुल एक अफ्रीकी जाति के विषय म, जिसने अपनी आदिम प्रथाआ को सुरक्षित रखा है, रेखीय आयु-वर्गीकरण के एक और अधिक विस्तृत

1 देखिए, कोलिन एम० टनबुल, मन इन अफ्रीका, गाडन सिटी, न्यूयॉर्क, ऐंकर प्रेस/डबलडे, 1976, पृ० 51-57

2 ई० रोजेट, प्रोसेस स्टारजेनिया साइ लुडनासी, स्टडियम डेमाग्राफिजन, वास जावा, 1959, पृ० 108

रूपभेद पर विचार करते हैं। प्रत्येक आयु-वर्ग को लड़कों के लिए दीक्षा की आयु के तदनुरूप कई उप वर्गों में विभाजित किया जाता है। जब प्रथम दीक्षा के समय वर्ग के लिए प्रवेश खोल दिया जाता है, अन्य सभी वर्गों को एक ही स्तर से आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता है। कभी कभी वर्ग चार वर्ष तक के लिए 'खुला' रखा जाता है। इसके उपरान्त यह समय की उस अवधि तक के लिए बन्द कर दिया जाता है जिसके दौरान उस आयु-स्तर के प्रतिनिधि जीवित रहते हैं और दूसरे किसी को प्रवेश नहीं दिया जाता है। प्रारम्भिक स्तर पर प्रत्येक उपवर्ग अपनी वैयक्तिकता को सुरक्षित रखता है और अपनी गतिविधियों के लिए अपने स्वयं के इलाके पर अधिकार रखते हैं। युवाकाल से वयस्क अवस्था में गुजरने पर उपवर्ग अदृश्य हो जाते हैं और सम्पूर्ण वर्ग एक एकल रूप को प्राप्त कर लेता है और जब तक इसके सदस्यों के जीवन का अन्त नहीं हो जाता तब तक इसकी सुरक्षा करता है। वर्ग के अन्तिम सदस्य की मृत्यु के उपरान्त उसका नाम और विशिष्ट स्वरूप सदा के लिए अदृश्य हो जाता है।

यह तथ्य, कि चक्रीय और रेखीय आयु-वर्गीकरण प्राचीन चेतना में सह अस्तित्व में थे, कोलिन एम० टर्नबुल के अध्ययनों से ही उदधृत फिर भी अन्य रूपभेद के द्वारा सम्यक् प्रकार से लेखबद्ध किया गया है। यह तथाकथित सोपान सदृश आयु-वर्गीकरण है जिसमें काल की चक्रीय और रेखीय दोनों अवधारणाएँ बहुत कुछ सन्निहित है।

हमने चक्रीय, रेखीय और सोपान सदृश आयु व्यवस्थाओं पर विचार किया क्योंकि एक परिवर्तित रूप में एक केन्द्रीय विचार (चक्रीय स्वरूप रेखीय स्वरूप, सोपान-सदृश रूप) सभी ऐतिहासिक दृष्टि से ज्ञात आयु वर्गीकरणों में किसी एक या दूसरे ढंग से विद्यमान है। यह उन आधुनिक आयु वर्गीकरणों में भी देखा जा सकता है जो अपेक्षाकृत अधिक जटिल और विस्तृत है। जिन व्यवस्थाओं का वर्णन किया जा चुका है—जो सरल किन्तु पर्याप्त रूप से प्रतिनिधि स्वरूपों का निर्माण करते हैं—उनमें हम आयु वर्गों को लक्षित करने वाले अनेक उत्तरवर्ती सम्बन्धों की रूपरेखा पाते हैं। विशेष रूप से हम प्राचीन दीक्षाओं में नयी पीढ़ियों के समाजीकरण के लिए उन अनेक आधुनिक कर्मकाण्डों का आदिप्रारूप देखते हैं जो युवा लोगों की सामाजिक प्रौढ़ता (उदाहरण के लिए किसी का पारगमन-पत्र प्राप्त करना, युवा श्रमिक अथवा विद्यार्थियों के समुदायों, आदि में प्रवेश) के प्रतीक होते हैं। चक्रीय आयु वर्गीकरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सारतत्वों को सम्प्रेषित करने पर बल देते हैं, (यह एक सामान्य नाम स्वीकार करने का रूप ले सकता है क्योंकि साधारणतया नामों की संख्या सीमित होती थी, उदाहरण के लिए, कुछ आयु वर्ग जो जीवन में प्रवेश कर रहे हैं वृद्ध पुरुषों के किसी एसे आयु वर्ग के नाम के उत्तराधिकारी होते हैं जो दृश्य से लुप्त हो रहा है किन्तु जिसके लिए नयी पीढ़ी उसकी

दष्टिगोचर वर्तमानता की प्रतिनिधि बनती है) आज भी व्यावसायिक, आध्यात्मिक और अन्य क्षेत्रो मे एक पीढी से अगली पीढी को बपौती को सप्रेषित करने का विचार एक प्रासगिक दस्तूर माना जाता है। प्राचीन आयु व्यवस्थाआ मे हम पीढिया, विशेषकर उत्तरवर्ती पीढिया, अर्थात् पिताओ और पुत्रो, के बीच सघर्षों का प्रारम्भ पाते हैं। उदाहरण के लिए, जब उन पिताओ के लिए, जो युवा योद्धा थे, अपने बच्चो—अगले आयु वग, जो दीक्षा को प्राप्त कर चुका था और इस प्रकार पिताओ के लिए वृद्ध पुरुषो की श्रेणी मे सक्रमण करन का सकेत दे रहा था, अपने स्थान को सौपने का समय आता था—वे सभी सभव उपायो से इसका प्रतिरोध करते थे, अब भी अपने आप को पर्याप्त रूप से ओजस्वी और शक्ति से पूण महसूस करत थे और अपने स्थान और समाज म अपनी स्थिति को उनको सौंपने को प्रस्तुत न थे।

किसी को भी, किसी भी तरह, प्राचीन और अर्वाचीन अवधारणाआ के उभयनिष्ठ तत्वा के कारण भ्रम मे नही पडना चाहिए, क्याकि प्राचीन मनुष्य की आयु अवधारणाओ का वर्गीकरण अपेक्षाकृत विशिष्ट है और एक सामाय आधार—पौराणिकीय आधार—के पूणतया अधीन है। प्राचीना ने पहले से ही मानव-जीवन की आयु-सापक्ष अवस्थाओ के सामाजिक दष्टि से महत्वपूण स्वरूप पर ध्यान दिया था और पुराण मे मूतरूप दिय हुए ससार के एक समग्र प्रतिबिम्ब के आधार पर जीवन की अवस्थाआ का समझने के लिए अपने स्वय के ही विशिष्ट रूप-विधान को विकसित किया। इसन अनुकरण के लिए एक आदश के रूप मे कार्य किया और सामाजिक जीवन को उसके विशिष्ट आवतनो के माध्यम से पुनरुत्पादित करने के लिए एक प्रणाली का प्रस्तुत किया। प्राचीन काल मे लोग समझते थे कि जीवन म प्रवेश करने वाला एक बालक जीवन की सक्रियताआ के किसी कायक्रम पर अधिकार नही रखता जीवन के अनुकूल नही हुआ और परिणामस्वरूप प्रारभिक वर्षों मे स्वय को सीमा रखा स्थिति (जीवन और मृत्यु के बीच) मे पाया क्याकि प्राकृतिक चयन फिर भी काय करता था और यह बलवान ही था जो जीवित रहा जबकि दुबल और 'अनावश्यक' छानकर बाहर फेंक दिये गये। बालक का जीवन पूर्णतया बिरादरी के जीवन और उसकी आवश्यकताओ से नियत्रित होता था और बालक सामाजिक रचनातत्र मे एक तत्व था। वह सवप्रथम उस रचनातत्र मे स्त्री के प्रच्छादन के एक भाग के रूप मे सम्मिलित किया गया क्योकि बालको की रखवाली और पालन-पोषण प्रदान करने के उद्देश्य से किये जान वाले कमकाण्डो के विशिष्ट समुच्चय का काय सौंपा गया था। इसके बाद बालक उस विशिष्ट आयु वग से जाड दिया गया जिसके अन्तगत एक विशेष प्रकार के प्रशिक्षण और शिक्षा का स्थान होता था और इसके उपरान्त उससे जाति का नाम (जिसके बिना वह अपने सारे जीवन मे बालक ही बना रहता आदि) प्राप्त करने

के अधिकार का लाभ उठान के लिए दीक्षा के कर्मकाण्ड स गुजरन की आशा की जाती थी। इस ढग से, आदिम मनुष्य क जीवन की सभी आयु-सापेक्ष अवस्थाए एक एसे कमकाण्ड से गुथी हुई थी जिसके वे अधीन होती थी। अपने क्रम मे, कमकाण्ड की व्याख्या पुराणा के द्वारा की गयी थी, और यह प्राचीन काल म व्यक्तियो की आयु चेतना के पौराणिकीय स्वरूप को स्पष्ट करती है।

फिर भी पौराणिकीय चेतना के अय महत्वपूण अभिलक्षण का उल्लेख होना चाहिए।

मानव-जीवन (विशय रूप से इसकी अवधि) की प्राचीन (पौराणिकीय) अवधारणाए एक विशेष गुण स सम्पन थी जिस ठीक प्रकार से काल्पनिक कह कर अभिव्यक्त किया जा सकता है। हामर के अनुसार, नस्टर तीन मानव-जीवन अवधि' तक जीवित रहा जबकि डैण्डो इलिरियन और लाक्मा के राजाआ म स एक 500 और 600 वप की आयु तक पहुँच गये बताय जात थे। इनकी व्याख्या एक महाकाय अतिशयोक्ति के रूप म की जा सकती है और फिर भी

सोवियत अनुसधानकर्ता क्लाचकोव उल्लेख करते ह कि सुमेरी राजाआ की नामावली किसी का ध्यान 'प्रलयपूव और 'प्रलयोपरात' के राजाआ के 'वय क्तिक शासना की सचमुच काल्पनिक अवधियो' की आर आकर्पित करती है। कोई भी एक विशिष्ट प्रवत्ति का भी देख सकता है प्रासगिक घटनाएँ एतिहासिक काला मे जितनी अधिक पहले घटित हुइ मानव जीवन की अवधि जिसका वे प्रसग देत थे, उतनी ही अधिक अविश्वसनीय होती गयी।

यह आठवें 'प्रलयोपरान्त वश का प्रारम्भ था जब उचित रूप स विश्वसनीय मानव-जीवन-अवधि प्रकट होनी आरम्भ हुइ।[1]

क्लोचकाव दखत ह कि सुमेरी राजाआ के लगभग सभी शासन 360 के द्वारा विभाज्य है (मासापाटामिया के प्राचीन कैलण्डर के अनुसार एक वप मे 360 दिन होत थे) इस प्रकार यह दिखाई देता है कि 'एक दिन एक वप के बराबर होता है' और तदनुरूप शासनो की वास्तविक अवधियो को प्राप्त करने के लिए किसी को 360 से भाग देना होगा, यह एक एसी प्रक्रिया है जा ऐतिहासिक दृष्टि मे दखन मे विश्वसनीय परिणाम प्रदान करती है।[2] यह सभव है कि मेसोपोटामिया के प्राचीन विद्वान किन्ही विशिष्ट वशा की पवित्रता की कोटि का कूट बनाने के

---

1 आई० एस० क्लोचकोव (दी स्पिरिच्यूअल कल्चर आव बेबीलोनिया) मास्को, नौका पब्लिशस, 1983 पृ० 23, पी० विडलनवेट, टम्प्स डेस डयूक्स एट टम्प्स डस हाम्म, इन रव्यू डे एल हिस्टायर डेस रिलीजन्स, न० 157, 1960 पृ० 55-80

2 आई० एस० क्लोचकाव पूव उद्धत, पृ० 23

लिए ऐसे 'काल गुणाकों' का प्रयोग करते थे। किसी भी अवस्था में, ये अंक स्पष्ट रूप से घोषित प्रतीकात्मक स्वरूप (राजाओं के सम्प्रदाय के महत्व और पवित्र स्वरूप को उनके शासनों को राजकीय शक्ति के प्रतीक के रूप में रूपान्तरित करके बढाने के इरादे से किया सकल्पित अतिरंजन) से सम्पन्न होते हैं।

हमें इसी प्रकार के व्यक्ति की जीवन-अवधि के काल्पनिक प्रतीकात्मक प्रसंग दूसरे ऐतिहासिक स्रोतों में भी मिलते है। उदाहरण के लिए, ओल्ड टस्टामेंट के पितृ असाधारण रूप से दीर्घजीवन वाले बताये गये है आदम 930 वर्ष जिये, नूह 950 वर्ष जैसा 'सुमेरी राजाओं की नामावली में है' प्रलयोपरान्त के पितृ उतने लम्बे समय तक नहीं जिये जितने उनके पूर्ववर्ती अब्राहम केवल 175 वर्ष की आयु में मर गया जबकि आइज़क कुछ अधिक लम्बे समय—180 वर्ष तक जीवित रहा। बाइबल भी बताती है कि प्रलय से पहले मानव की औसत जीवन-अवधि 120 वर्ष थी और 'तब पृथ्वी पर भीमकाय मनुष्य रहते थे।'

हमारे लिए यह एक महत्वपूर्ण साक्ष्य है किन्तु ऐतिहासिक ज्ञान के अर्थ में नहीं, क्योंकि इसमें ऐसा कुछ नहीं है जो 'वैज्ञानिक आधार-सामग्री कही जा सके' (कोई अनुसंधानकर्ता अतीत में सदियों तक रहने वाली जीवन अवधि की संभावना में विश्वास नहीं करेगा) जो महत्वपूर्ण है वह कुछ और है। सामाजिक विकास के बहुत प्रारम्भिक चरण में सामाजिक विचारधारा में एक घटनाक्रिया, यथा आयु प्रतीकवाद, का उदभव हुआ। यह इतिहास में आद्योपान्त प्राचीन काल में, मध्य कालीन सभाओं और हमारे स्वयं के समय में दैनन्दिन चेतना बनी रही।

सामाजिक विकास—आदिम समाजों और पूर्व के प्रारम्भिक दास राज्यों—के प्रारंभिक कालों की जीवन-अवस्थाओं के हमारे संक्षिप्त सर्वेक्षण का सारांश लिखने में किसी (व्यक्ति) को उत्तरवर्ती अवस्थाओं की तुलना में उनके विशिष्ट स्वरूप, अर्थात् जीवन की क्रियाओं (कर्मकाण्ड) से सम्बन्धित धारणा के प्रत्येक आवेष्टन, पर ध्यान देना चाहिए। एक सोवियत अनुसंधानकर्ता सेर्गेई अवेरिन्त्सेव ने प्राचीन यूनानियों के द्वारा प्राचीन सभ्यताओं के इस चिह्न की अवहेलना के विरोध में प्राचीन सभ्यताओं के इस चिह्न की ओर ध्यान आकर्षित किया है। उन्होंने लिखा है कि मिस्रियों, बेबीलोनियनों और जूडियनों की सर्वोच्च उपलब्धियों से युक्त सम्पूर्ण विचारधारा भी कोई दर्शन नहीं है, क्योंकि इसका लक्ष्य 'प्राणी' नहीं किन्तु जीवन है, सारतत्व नहीं किन्तु अस्तित्व है और इस कारण यह श्रेणियों में नहीं किन्तु मानव के आत्म-अनुभव के अविभेदीकृत प्रतीकों के रूप में कार्य करती है। इसके विपरीत, यदि यह मान लिया जाय यूनानियों ने प्रभासों की जीवनधारा से उनके सारतत्व (चाहे थेल्स के सम्बन्ध में यह 'पानी', पाइथागोरस के सम्बन्ध में 'संख्या', डेमोक्रिटस के सम्बन्ध में 'परमाणु और प्लेटो के सम्बन्ध में 'विचार' हो) को निकाल लिया और उस 'सारतत्व की बुद्धिमानी से छल-योजना

करनी प्रारम्भ की और इस प्रकार दर्शन के आधार स्थापित किये। यूनानियों ने सैद्धान्तिक विचारधारा को एक स्वायत्त सत्ता के रूप में स्वच्छन्द कर दिया। वे संसार के आन्तरिक चिन्तन को संसार के इर्द गिर्द के चिन्तन के रूप में रूपान्तरित करने में अग्रणी थे। संक्षेप में, जीवन-अवस्थाओं से सम्बन्धित विचार प्राचीन काल में चिन्तन का ध्येय नहीं था अपने स्वयं के सैद्धान्तिक विश्लेषण से सम्पन्न न था। यह प्राचीन यूनानियों के समय से ही है कि उस अवधारणा का विकास प्रारंभ होता है।

जीवन की अवस्थाओं का दर्शन

यूरोपीय परम्परा में मानव की जीवन-अवस्थाओं की अवधारणा छठी शताब्दी ई० पू० के आयनिक दर्शन में उद्भूत होती है। प्राचीन आयनिकों के विचारों ने पुराण और दर्शन को मिश्रित कर दिया और साथ ही जादू एवं नैसर्गिक भौतिकवाद और औषधि ज्ञान तथा प्रकृति सम्बन्धी सामान्य ज्ञान को भी मिला दिया। मानव के जीवन की अवस्थाओं से सम्बन्ध रखने वाली अवधारणाओं के विकास के लिए आयनिक विचारकों के विचारों के महत्व का आवश्यकता से अधिक अनुमान नहीं लगाया जा सकता—एक परिवर्तित रूप में हम उन्हें प्राचीन यूनान के विभिन्न दार्शनिकों के बीच हेलेनवाद के युग में, बाइज़ेन्तानी साम्राज्य की नाटकीय कृतियों में, वर्जिल की प्रसिद्ध अनीड में, मध्यकालीन शोध प्रबन्धों और जीवन की अवस्थाओं से सम्बन्ध रखने वाली आधुनिक सामान्यतया धारण की हुई अवधारणाओं में सन्निविष्ट बहुत से पूर्वाग्रहों में भी पाते हैं।

प्राचीन आयनिक विचारकों के दो विचार विशेष रूप से व्यवहार्य तथा व्यापक हैं। यह सर्वाधिक प्रकृति की मौलिक आयुग्मितता की प्रस्थापना, उन प्राकृतिक एवं अतिप्राकृतिक शक्तियों, की जो विधर्मी कालों के सामान्य विश्वासों में उद्भूत हुए थे, एकता से सम्बन्ध रखता है। आयनिकों ने संसार का एक ही कठोर नियम (अन्तरिक्षीय निर्धारणवाद) में शासित एक ऐसी एकल व्यवस्था के रूप में अर्थ किया जो ग्रहों की गति और वानस्पतिक चक्रों के ऋतुसम्बन्धी परिवर्तनों से लेकर व्यक्तियों के भाग्य तक प्रत्येक बात की परिभाषा करती थी। इसलिए कोई भी पाइथागोरस के जीवन की अवस्थाओं और ऋतुओं के क्रम के बीच की अनुरूपता की परिभाषा करने के प्रयास को समझ सकता है। हम इस उनके जीवन-अवस्थाओं के वर्गीकरण—आयनिक विचारकों द्वारा प्रस्तुत हमारे लिए ज्ञात सबसे अधिक प्राचीन वर्गीकरण में—दे रहे हैं (देखिए सारणी 7)। पाइथागोरस ने बाल्यकाल और किशोरावस्था (निर्माण की अवधि) की वसन्त से, यौवन की ग्रीष्म से इत्यादि से तुलना की। पाइथागोरस के अनुसार प्रत्येक अवस्था की अवधि ठीक

सारणी-7

पाइथागोरस के अनुसार जीवन की अवस्थाओ का वर्गीकरण[1]

	वष
1 निर्माण की अवधि	0-20 ('वसन्त')
2 युवा व्यक्ति	20 40 ('ग्रीष्म')
3 एक व्यक्ति जीवन उत्कष म	40 60 ('शरद')
4 वृद्ध दुबल व्यक्ति	60 80 ('शीतकाल')

20 वर्ष थी। आज एक बीस-वर्षीय चक्र का विशेषीकरण एक पूणतया मनमाना रूढिवाद प्रतीत होगा। किन्तु पाइथागोरस के समय म इस प्रकार का 'रूढिवाद एक ऐसे सवथा भिन्न विचार की अभिव्यक्ति था जिसकी आज के रीतिवाद की अवधारणा से कोई उभयनिष्ठता नही थी। हमारे मन म छठी शताब्दी ई० पू० के आयनिक दशन की वह अन्य मौलिक अभिधारणा है जो सभी प्रभासा, उदाहरणाथ, साख्यिक प्रतीकवाद के सवतोमुखी अन्तसम्बन्ध के विचार को एक विशेष रीति से अभिव्यक्त करती है। पाइथागोरस के लिए सख्याएँ केवल गणितीय चिह्न ही नही थे किन्तु धम के एक अन्तर्निहित लक्षण, ससार के भौतिक चित्रण, और जादू के कर्मकाण्डो के भी चिह्न थे। सख्याएँ प्राचीन यूनानियो के लिए ससार की एकलता के अतगत एक निश्चित अनुरूपता स्थापित करना सभव बना देती थी। वे आकस्मिक सयोग अथवा ऊपरी सादश्य के रूप मं नही समझी जाती थी किन्तु अन्तरिक्षीय अनुक्रम की अनिवाय अभिलक्षण मानी जाती थी।

यह विचार हिप्पोक्रेटस द्वारा प्रस्तुत जीवन अवस्थाओ के वर्गीकरण म स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया गया था। वह वर्गीकरण एथेन्सी विधि निर्माता सोलन (छठी शताब्दी ई० पू०) को भी श्रेय प्रदान करता है। जीवन की अवस्थाओ के वर्गीकरण म (देखिये सारिणी 8) हिप्पोक्रेटस प्राचीन विज्ञान द्वारा प्रस्थापित प्रारम्भ के वर्षों ('सकटकाल') की उस अवधारणा को लेकर अग्रसर हुए जो साख्यिक प्रतीकवाद के विचार पर आधारित थी।

इन अवधारणाओ क अनुसार प्रत्यक सात वर्ष (दूसरो के अनुसार प्रत्येक नौ वष) पर मानव के ढाँचे म एक ऐसा पुनर्निर्माण होता है जो व्यक्ति के स्वास्थ्य और जीवन के लिए खतरनाक होता है।

1 ई० रोसट, प्रॉसेस स्टारजेनिया साइ लुडनोसाइ, स्टडियम डेमोग्राफिज्ने वासजवा, 1959, पृ० 109

सारणी 8

हिप्पोक्रेट्स के अनुसार जीवन की अवस्थाओ का वर्गीकरण[1]

अवधि	वष
पहली	0 7
दूसरी	7-14
तीसरी	14 21
चौथी	21-28
पाँचवी	28 35
छठी	35-42
सातवी	42 49
आठवी	49 56
नवी	56 63
दसवी	63 70

प्राचीन लोग सात चौन्ह, इक्कीस तिरेसठ, सत्तर, सतहत्तर (अथवा नौ, अठारह, सत्ताइस तिरेसठ, बहत्तर इक्यासी) की अवस्थाओ स डरते थे। स्वभावत तिरेसठ की अवस्था विशेष भय पैदा करती थी क्योकि उस बिन्दु पर दोनो चक्र अनुरूप होते थे। ऐसा हो सकता है कि इक्यासी की अवस्था के मानव जीवन क चरम बिन्दु के रूप मे होने के सम्बन्ध म प्लेटो का विचार इन अन्य विश्वासो से जुडा हुआ हो। पोलैण्ड के एक जनसांख्यिक एडवड रोजेट के अनुसार सतहत्तर वष की आयु (दो दरांतियाँ' अथवा दो कुल्हाडियाँ' जो मानव-जीवन का विच्छेद कर देती हैं) न अनेक पालण्डवासिया म एक रहस्यमय आतक उत्पन्न कर दिया। हिप्पोक्रेटस ने इन अवधारणाओ के पूण समथन म, मनुष्य के जीवन को सात वष की प्रत्येक अवधि के हिसाब से दस अवधिया म विभाजित किया, और यह कहा जा सका कि उसके आभाम रूप मे 'सरल' वर्गीकरण ने उत्तरवर्ती विचारको पर बडा भारी प्रभाव डाला। इसमे रोम क राजनेता और लेखक छोटे प्लिनी, रोम के वैयाकरण और पडित मक्रोबिअस अरब के दाशनिक और कारडोवा के चिकित्सक इब्न रश्द (एव रॉइस) के द्वारा भाग लिया गया। हम इस विचार के, जो अपन उन्भव मे गभीर रूप से विधर्मी हैं, समानान्तरो को बाइबल म पाते हैं पवित्र धमग्रथ के अनुसार आदम 931 वष की (अर्थात 133 की 7 गुनी) आयु म

1 वही, पृ० 110

मरा। बाद के समयो म, 17वी शताब्दी मे, हमारे पार्थिव जीवन पर शनि के प्रभाव के शब्दा मे 7 वप के चक्र की व्याख्या करने के प्रयत्न किये गये। केवल उस शताब्दी के अन्त मे ऐसा हुआ कि एक पोलण्ड का पादरी उत्कृष्ट जमन दार्शनिक एव गणितज्ञ गाटफाइड विल्हेल्म लीबनिज की मदद स व लन्दन रायल सोसायटी की एव प्रमुख अग्रेज ज्योतिषी तथा गणितज्ञ एडमण्ड हेली की सहायता से यह स्थापित करन म सफल हुआ कि 'प्रारभिक वर्षो' के सिद्धान्त और मानव-जीवन पर उनके तथाकथित हानिकर प्रभाव व कोई आधार नही ह।[1]

यह उल्लेख करना महत्वपूण है कि प्राचीन यूनानियो के द्वारा विकास और परिवतन की श्रेणियो के रूपा मे नही किन्तु एक अपरिवतनीय अवस्था मे होने अथवा एक बडे चक्र म घूमने की स्थिति मे ससार का देखा और अनुभव किया गया। ससार मे घटन वाली घटनाएँ विलक्षण नही थी। यूनानियो का विश्वास था कि अतीत मे ऐसे व्यक्ति और प्रभास अस्तित्व मे थे जो, कहना चाहिए, पाइथागोरियन या 'लम्बे वप' के युग के अन्त म वापिस आयेंगे। हमे उस समीपता पर भी ध्यान देना चाहिए जो प्राचीन यूनानिया की अन्तरिक्षीय और वैयक्तिक कालो म सम्बधित अनेक अवधारणाओ और पुरातन पूव के लोगा के उल्लिखित विचारो के बीच सीधे आदान प्रदान की सीमा पर थी। हम यहाँ एक परिवर्तित रूप मे चक्रीय काल (यूनानियो के लिए सदिश अथवा रेखीय काल एक गौण भूमिका निभाता था) और पुनजन्म की अवधारणा दोनो और साथ ही हिप्पोक्रेट्स के जीवन आयु सापेक्ष परिवतना के तत्वा को पा सकत है। फिर भी, सास्कृतिक विरासत के तत्व यहाँ उच्च कोटि को मौलिक यूनानी पौराणिकी, जो प्राचीन चेतना के तथाकथित 'ज्योतिषीय स्वरूप के द्वारा आधार प्राप्त किये हुए हैं, से दाम्पत्य-सूत्र मे बँधे हुए हैं। प्राचीन यूनानी एक सम्पूण सुसगत अन्तरिक्ष— 'सुघटयतापूवक ढले हुए पूर्ण' को इस रूप मे देखत थे कि मानो कि वह एक निश्चित सामान्य आकृति या मूर्ति हा, अथवा विशेष प्रकार की ध्वनियाँ निकालने वाला उच्च प्रकार के सुरा वाला वाद्ययन्त्र हो।[2] अलेक्सी लोसेव (एक सोवियत अनुसधानकर्ता) इतिहास की मूर्तिकलात्मक शैली' के एक प्रकार की ओर, यह बतात हुए कि प्राचीन यूनानिया क लिए अतरिक्ष "पदाथ के अनन्त परिभ्रमण का प्रतिनिधित्व करने वाला, साथ ही अविशिष्टीकृत अस्तव्यस्तता से उद्भूत होने वाला और अपनी सगतता, सुडौलता, सादृश्यपूर्ण सरचना, और प्रशान्त महत्ता मे

---

1 ई० रोजेट, ट्रावनी जाइसी लुडजकीगा राक्ला, वार्सेजवा, क्रैको, गास्क 1979

2 ए० एफ० लोसेव, इस्तोरिया एण्टीचनोई एस्टरटिकी (दी हिस्ट्री ऑव एन शिएट एस्थटिक्स), मॉस्को, इस्कुस्तवो पब्लिशर्स 1963, पृ० 50

विलक्षण, और इसके अतिरिक्त अपने स्वयं के श्रम को भंग करके अपने विनाश की ओर बढ़ने वाला और फिर स्वयं को अस्तव्यस्तता में रूपांतरित करने वाला"[1] था, संकेत करता है।

हमने प्रमुख रूप में प्राचीन यूनानियों के जीवन-अवस्थाओं में सम्बंधित दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक विचारों पर चिन्तन किया है और आयु वर्गों के उस विशिष्ट संगठन का उल्लेख नहीं किया है जिसको उन्होंने बनाया।

प्राचीन यूनानियों के लिए आयु लम्बे समय तक कर्मकाण्ड का तत्व नहीं रही और आयु और लिंग के अनुसार श्रम के विभाजन पौराणिकीय उपायों पर आधारित किये बिना ही अंकित किये गये। पुराण अपने अधिकारों पर बल देता रहा किन्तु इस जीवन की गतिविधियों से बाहर ले जाया गया, यदि यह भी मान लिया जाय तो यह शब्दशः नाटकीय स्तर तक ले जाया गया (ऐसचीलस, यूरीपाइडस, सोफोक्लीज़)—क्योंकि देवताओं और वीरों की जीवनियों पर बाहर की तरफ से दृष्टि डाली जाती थी। जीवन की अवस्थाओं का विश्लेषण करने में प्राचीन यूनानियों ने पौराणिकीय आदर्श का अन्धानुकरण नहीं किया किन्तु इसे उन्होंने जीवन के तर्क के साथ संगतता सहित अपने विचारों में पुनरुत्पादित किया। बल बुद्धिपूर्वक पुराण के क्षेत्र से जीवन के दर्शन के क्षेत्र में हटा दिया गया।

तब कोई जीवन के उस ढंग की उसकी अवस्थाओं की शब्दावली में कैसे व्याख्या करेगा ?

सर्वप्रथम, हम इस बात पर ध्यान दें कि आदिम समाजों की तरह, प्राचीन यूनान में भी सामाजिक जीवन में एक केन्द्रीय भूमिका प्रौढ़ व्यक्तियों के द्वारा अथवा जैसा कहा गया था—मनुष्य के द्वारा अपनी चरम सीमा के समय निभाई जाती थी बालकों की स्थिति ऐसी शोचनीय न थी जैसी आदिम समाजों में थी किन्तु फिर भी कुछ-कुछ कठिन थी। यह ज्ञात है कि प्राचीन स्पार्टा में दुर्बल और अपर्याप्त रूप से विकसित बालकों को नष्ट करने की प्रथा का व्यवहार में लाया जाना जारी रहा। स्पार्टा प्रधानतः एक सैनिक शक्ति था और लगभग प्रत्येक बात उसकी उस सैनिक शक्ति को कायम रखने और आगे विकसित करने के अधीन थी जो स्वस्थ पुरुष शरीर पर दृढ़तापूर्वक आधारित थी। 6 से 30 वर्ष के बीच की आयु वाले सभी पुरुषों को गुरुजनों की परिषद के द्वारा कठोरतापूर्वक संगठित एवं नियंत्रित किया जाता था। 6 और 18 वर्ष के बीच की आयु वाले तरुणों को सैनिक सेवा की कठिनाइयों की शिक्षा दी जाती थी और उन्हें इसके लिए तैयार किया जाता था, जबकि 18 और 30 वर्ष की आयु के बीच वे सैनिक टुकड़ियों में सेवा करते थे। इसके अतिरिक्त अधिकांश समय में युवा स्पार्टन विशेष शिक्षकों

1 वही

की अगुवाई म अपन परिवारो मे अलग रहत थे। 30 वष की आयु क बाद, जबकि अपनी सैनिक सेवा को जारी रख रहा होता था तब किसी स्पाटन को पूरे नागरिक अधिकार और घर पर रहने की सम्भावना प्राप्त होती थी। 60 वष की आयु के बाद वह सबसे वृद्ध लोगो के उस वग का सदस्य बन जाता था जिससे गुरजनो की परिषद के सदस्य निर्वाचित होते थे।

पडोसी एथेन्स मे, जीवन ऐसा सन्य-सगठित न था और केवल एक आयु वग, इफेबेस (18 मे 20 वष) पूरी तरह से सैनिक प्रशिक्षण मे नियोजित होता था।

गुरुजनो की स्थिति म हुए परिवतनो पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, क्योकि वे प्राचीन यूनान मे कोई केन्द्रीय भूमिका न निभाते थे, व सामाजिक जीवन की परिधि मे नही रखे जाते थे। प्राचीन यूनानियो के उस बुद्धिमत्ता के प्रति, जो वृद्धावस्था से जुडी हुई थी, ऊँचे सम्मान ने वद्ध पुरुषो को, सक्रिय सामाजिक जीवन के अनुपयुक्त माने गये समाज के कमजोर सदस्यो (जैसे वे आदिम समाजो मे माने जाते थे) की कोटि से निकालकर, महत्वपूण हस्तियो, जैसे गुरुजनो, जिनके काय मे देश का शासन चलाना और युवा पीढी के पालन पाषण का निरीक्षण करना सम्मिलित था, के रूप म रूपान्तरित कर दिया। प्राचीन यूनान मे अत्यन्त वृद्ध पुरुषा का दशन गुरुजनो के प्रति इस नये दृष्टिकोण से सयुक्त था।

आज हम प्राचीन यूनान के उन अत्यन्त वद्ध पुरुषो के विषय मे सर्वाधिक रूप से परिचित है जो सामाजिक गतिविधि के किसी क्षेत्र मे प्रसिद्ध हो गये। विशेष रूप से, कवि साइमनाइड्स 90, स्टेसीकोरस 85, दाशनिक डेमोक्रिटस-104, स्टोइक दाशनिक जेनो और क्लीन्थस क्रमश 98 और 99 वष तक जीवित रहे।

रोम मे किशोरावस्था की आयु 14 से 17 वष तक रहनी मानी गयी जिस समय मनुष्य का चोगा प्राप्त किया जाता था, यौवन 46 वष तक रहता था (46 वष की आयु पर पहुँचने वाले रोम के नागरिक सैनिक सेवा से बरखास्त कर दिये जाते थे और उनकी सेंचूरिया के वरिष्ठ विभाग मे प्रविष्ट कर दिये जाते थे) 46 वष की आयु के बाद वरिष्ठ आयु प्रारम्भ हो जाती थी, और रोमन लोगो के विचारो के अनुसार 60 वष की आयु पर वद्धावस्था आरम्भ हो जाती थी।

रोमन लोगा मे वयस्कता की आयु तब प्रारम्भ हाती थी जब, अपने परिवार की परिषद के निर्णय का अनुसरण करते हुए एक युवा व्यक्ति अपने बचपन के कपडे हटा देता था और मनुष्य का चोगा पहन लेता था। वयस्कता की आयु उस लैंगिक परिपक्वता के रूप मे समझी जाती थी जो उस प्राचीन काल मे सैनिक सेवा के लिए युवा पुरुष की योग्यता का प्रमाण माना जाता था। साम्राज्यीय रोम मे पुरुषा के लिए वयस्कता की आयु 14 से 17 वष के बीच होती थी। रोमन विधिवेत्ताओ के अनुसार स्त्रियो मे वयस्कता अधिक पहले, लगभग 12 वष की आयु मे आ जाती थी। वस्तुत यह किसी व्यावहारिक महत्व की बात नही थी क्योकि रोम मे

स्त्रियाँ अपने समस्त जीवन म अपन पिताओ, पतियो तथा समीपी सम्बन्धियो क सरक्षण मे रहती थी।

प्राचीन रोम मे आयु सरचना के विशिष्ट अभिलक्षणो का विश्लेषण करत हुए आइगोर कोन उल्लेख करते हैं कि

"रोमन गणराज्य म बच्चो के पालन-पोषण के लिए बुनियादी रचनातत्र, बहरहाल, समाज के ऊँचे तबको म, परिवार था। सवप्रथम बालक माता के द्वारा, फिर पिता के द्वारा प्राय दासो म से आये विशेष प्रकार के शिक्षको की सहायता मे पाला जाता था। इसके उपरात जब किशोर सामाजिक जीवन म भाग नेना आरम्भ करता तब प्राय उसका पथ प्रदशन किसी व्यक्तिगत मित्र अथवा पारिवारिक सरक्षक के द्वारा होता था। रोमन लोगो का दीक्षा का कमकाण्ड—मनुष्य के आवरण का प्रस्तुतिकरण (पुरुषत्व का चोग़ा)—भी वृहद रूप मे एक पारिवारिक काय था। इस प्रकार की व्यवस्था ने व्यक्तिवाद को प्रस्थापित करने म योगदान किया और एक युवा व्यक्ति को सबसे पहले अपने स्वय के परिवार की ओर ही उन्मुख किया।"[1]

फिर भी, प्राचीन रोम मे यह भी था कि, जसा पहले कभी न था, आयु सापक्ष *अवधारणाए किसी व्यक्ति के विशुद्ध पारिवारिक सम्बन्धो के क्षेत्र के बाहर के* सामाजिक सम्बन्धो को प्रस्तुत करने वाली एक स्पष्ट प्रवृत्ति को प्रकट करती थी। यह आकस्मिक नही है कि वे रोमन विधि के विशिष्ट विषय थे। सामाजिक जीवन की अवस्थाओ के रूप म उनके सामाजिक मूतरूप पर रोमन विचारको की कृतियो मे आयु सापक्ष श्रेणियो के रूप मे विचार किया गया। विशेष रूप से लटिन शब्द 'जुवेनिस' (तरुण व्यक्ति) टैसीटस के द्वारा 14 वष के किशोर से लेकर 18 वष के युवा पुरुष और 30 वष के एक वयस्क मनुष्य और एक 36 वष के वाणिज्यदूत[2] तक व्यापक अनेक अर्थों म इसका प्रयोग किया गया। टसीटस के शब्द 'जुवेनिस के अथविन्यास मे मुख्य तत्व सामाजिक गतिविधि के प्रवेश-द्वार पर खड़े हुए किन्तु फिर भी एक स्वतत्र नागरिक के सम्पूण शक्ति, अधिकार और उत्तरदायित्व पर अधिकार न रखने वाले मनुष्य की अवधारणा है। इस शब्द के इस प्रमुख अथ को ऐसे सन्दर्भों मे निम्न रूपो मे स्पष्ट किया गया है—' तरुण होने पर जो जन सभा म प्रविष्ट होन वाले हैं' और 'एक तरुण (जुवेनिस) एक ऐसा व्यक्ति है जो जनसभा म भाषण देने, एक वक्ता होने के लिए तयार हो रहा है।'

---

1 आई० एस० कोन, सोशियोलोजिया लिचनोस्ती (दी सोशियोलाजी आव पसनलिटी), मास्को, पोलितइडेट पब्लिशस, 1967, पृ० 113

2 जी०एस० नब, कार्नेली टाटसिट, रेमिया, झिझन, निगी (कार्नेलियस टैसीटस, टाइम्स लाइफ वक्स), मास्को, नौका पब्लिशस, 1981, पृ० 62

उसके युग के अन्य प्रमुख रोमन विधिवेत्ता अलपियेनस ने जीवन की प्रत्याशा के सम्बन्ध में एक ऐसी सारणी तैयार की जो कालांतर में जनसांख्यिकीय अध्ययनों की प्रणालियों में से एक बन गयी और प्राचीनकाल की संस्कृति के एक आकर्षक स्मारक को प्रस्तुत करती है। (देखिये सारणी-9)

सारणी 9

जीवन की अगली प्रत्याशा

(अल्पियेनस के अनुसार, तीसरी शताब्दी ई०पू०)[1]

आयु	जीवन की अगली प्रत्याशा
0 20	30
20-25	27
25-30	25
30 35	22
35 40	20
40-41	19
41-42	18
42-43	17
43 44	16
44 45	15
45-46	14
46 47	13
47 48	12
48-49	11
49-50	10
50 55	9
55-60	7
60 और ऊपर	5

1 एल० डबलिन ए० लोत्का, एम० स्पीजलमैन, लेंग्थ ऑव लाइफ, ए स्टडी ऑव दी लाइफ टेबल (रिवाइज्ड एडीशन), न्यूयार्क, 1949, पृ० 30 31

यह सारणी एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानव-जीवन आयु सम्बन्धी गति विज्ञान तक पहुँचने के लिए एक प्रयास के रूप मे आकर्षक है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि प्राचीन रोम म 65 वर्ष की आयु को पूर्णतया साधारण जीवन-अवधि के रूप मे समझा गया था। यह जोडा जाना चाहिए कि एक वयो वद्ध व्यक्ति सामान्यतया अपेक्षाकृत रूप मे एक प्रमुख हस्ती बन जाता था। उदाहरण के लिए यह इस तथ्य से देखा जा सकता है कि राज्य का सर्वोच्च सस्थान 'राज्य सभा (शब्द सेनेक्स—वृद्ध पुरुष) कहलाता था।

फिर भी वृद्धावस्था रोमन लोगो मे दर्शन-सम्बन्धी चिन्तन के क्षेत्र की विषयवस्तु थी। विशेष रूप से किसी को भी सिसरो की पुस्तक **वृद्धावस्था पर** के सम्बन्ध मे जानना चाहिए। इसने वृद्धावस्था सम्बन्धी अध्ययन उत्तरवर्ती प्रगति पर सारगर्भित प्रभाव डाला। सिसरो का सिद्धान्त (वद्धावस्था एक रोग है) हमारे अपने समय तक कायम रहा है और कई अर्थों मे इसने मध्यकालीन समाज, पुन र्जागरण और आधुनिक काल मे भी जीवन की उस अवस्था की व्याख्या मे केन्द्रीय भूमिका निभाई है। सिसरो की प्रस्थापना के आधार पर रोमन चिकित्सक और प्रकृतिवादी क्लौडियस गलन (लगभग 130 200 ई०), औषधविज्ञान पर जिनकी कृतियाँ पुनर्जागरण तक निर्विवाद थी और जिनके दृष्टिकोण की 'प्राकृतिक दर्शन' के रूप म व्याख्या की जा सकती है ने वद्धावस्था से सम्बन्धित पर्याप्त उपयोगी जानकारी प्रस्तुत की है और वे कुछ रोगनिरोधी उपायो, यथा, व्यायाम, मालिश, सक्रियता न्यून भोजन, रक्तमोक्षण की अनुपयुक्तता आदि के साथ सम्मुख आये। सक्षेप म, रोम म पहले ही से वद्धावस्था विस्तृत एव व्यापक विचार एव विश्लेषण की विषय-वस्तु वन गयी।

प्राचीन काल म जीवन की अवस्थाओ की व्याख्या का सारांश निकालने म हम इसकी प्रमुख विशिष्टताओ पर ध्यान देना होगा। प्राचीन यूनानियो ने जीवन अवस्थाओ स सम्बद्ध अवधारणाओ को अतरिक्षीय नियतिवाद और प्रकृति की मूलभूत समग्र एकता के विचार पर आधारित सद्धान्तिक विश्लेषण की विषय वस्तु बनाया और उन्होंने आयु-सापेक्ष प्रतीकवाद का आग विकास किया और उस पूर्णता प्रदान की। रोमनो न आयु-अवधारणाओ को विधिशास्त्र की विषय-वस्तु बनाया और आयु-श्रेणियो तथा सामाजिक जीवन की प्रक्रियाओ के बीच एक अन्तर्निहित सम्बन्ध स्थापित किया। समाज म आयु-सापेक्ष विभाजनो की वास्तविक व्यवस्था क सम्बन्ध म कोई ('परिपक्व व्यक्तियो के प्रमुख पद पर रहने वाले) उन गुरुजनो की भूमिका क परिवर्तनो पर ध्यान द सकता है जो (अपनी बुद्धिमत्ता क लिए) विशेष रूप स सम्मानित होने क लिए आते थ। किसी को इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि जब प्राचीनता का युग मानव इतिहास क अपेक्षाकृत आवृत एव समग्र भाग का सस्थापित करता है उसी प्रकार जीवन की अवस्थाओ म सम्बद्ध

अवधारणाओं का विकास प्राचीन यूनानियों और रोमनों के संसार-दृष्टिकोण सम्बन्धी अपेक्षाकृत आवृत्त एवं अद्वितीय पक्ष को प्रस्तुत करता है।

परिणामतः उस समय के मनुष्यों के द्वारा दार्शनिक विश्लेषण की सहायता से जीवन और उसका निर्माण करने वाली अवस्थाओं (जीवन अवस्थाओं) की एक समग्र अवधारणा को प्राप्त करने के लिए अद्वितीय एवं विशाल प्रयत्न किया गया। इसने पौराणिकी से दर्शन में आनेवाली सामाजिक चेतना के विकास और हमारे अपने युग के वैज्ञानिक और मानववादी विचारों के प्रतिबिम्ब के प्रमुख भाग की परिभाषा कर दी। प्राचीन यूनानी और रोमन जीवन-अवस्थाओं के अनेक पक्षों (औषधीय, प्राकृतिक विज्ञान सम्बन्धी, विधिक, आर्थिक, नैतिक, सौन्दर्यशास्त्रीय आदि) को देखने वाले प्रथम थे। फिर भी, उनके दृष्टिकोण की सबसे अधिक लाक्षणिक विशेषता उसकी दार्शनिक प्रकृति थी। शायद उस समय से लेकर समाज के इतिहास में, इसकी कोई बात नहीं कि दर्शन अपने विकास के दौरान किस ऊँचाई तक पहुँच गया था, जीवन की अवस्थाओं को समझने में यह इतना सहायक कभी न रहा है।

इसके आगे हम मध्यकालीन समाज पर विचार करेंगे।

जादू और जीवन की अवस्थाएँ

एक फ्रांसीसी इतिहासवेत्ता फिलिप एरीस बताते हैं कि 'जीवन-अवस्थाओं' की अवधारणाओं ने मध्यकालीन समाज के सम्बन्ध में छद्म-वैज्ञानिक शोध प्रबन्धों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लेखकों ने ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया है जो विशुद्ध शाब्दिक मालूम होते हैं, बाल्यकाल (एनफैंस), किशोरावस्था (प्यूरीलाइट), तरुण अवस्था (एडालिसेंस), यौवन (जुनेसी), वृद्धावस्था (वीलेसी) और सठियापा (सैनीलाइट) फिर भी इनमें से प्रत्येक शब्द जीवन की किसी विशेष अवधि की ओर संकेत करने के लिए निर्दिष्ट किया गया है।[1] मध्यकालीन समाज में रहने वाले व्यक्तियों के लिए जीवन-अवस्थाओं की अवधारणा ने 'वैज्ञानिक अवधारणाओं' की भूमिका निभाई, और, इसके अतिरिक्त यह 'भार', 'माप' आदि की अवधारणा से कम महत्वपूर्ण नहीं थी। बिंदु यह है कि 'आयु', 'जीवन की अवस्थाएँ' और 'आयु-परिवर्तन' की अवधारणा ने मध्यकालीन विचारकों के लिए भौतिक वर्णन और छठी शताब्दी ई० पू० के आयनिक दर्शन में विकसित स्पष्टीकरण के

---

1 पी० एरीस, लनफैण्ट एट ला वाई फैमिलिएल सोअस लानसीन रिजिमे, पेरिस, एडीशन्स ड्यू स्यूइल, 1973, पृ० 6

सिद्धान्त से उद्भूत और मध्यकालीन संकलनकर्त्ताओं के द्वारा बाइजेन्तीन स्रोतों से प्राप्त संसार के प्रत्यक्ष ज्ञान में आवश्यक वर्गीकरण प्रस्तुत किया। हमने इसमें पूर्व पहले ही उल्लेख कर दिया है कि स्पष्टीकरण का यह सिद्धान्त संसार की मौलिक समग्र एकता—प्राकृतिक और अतिप्राकृतिक दोनों—के दृष्टिकोण पर आधारित था। इस प्रकार की अवधारणा में इस अन्तर्सम्बद्धता और समग्र एकता के सूचकों में से एक संख्याओं और उनके प्रतीकत्व की अनुरूपता थी। जीवन की अवस्थाओं की मनुष्य और संसार के बीच के इन रहस्यमय सूचकों के रूप में व्याख्या की गयी। इसके अतिरिक्त, मध्यकालीन विद्वानों ने नक्षत्रीय सादृश्यों का स्पष्ट दुरुपयोग किया और उस कारण से मनुष्य के संसार से सम्बन्ध की उनकी धारणा पहली ही नजर में ऐसी उथली दिखायी देती थी जैसी फलित ज्योतिष की जन्मपत्रियाँ जो 'सात ग्रहों' और राशिचक्र से समीपता से जुड़ी हुई थी। फिर भी, ऐसी व्याख्या किसी भी रूप में नीमहकीमपन का उदाहरण नहीं थी किन्तु अन्तरिक्षीय नियतिवाद के विचार की विशुद्ध तर्कपूर्ण वर्तमानता थी। संसार के प्रत्यक्ष ज्ञान के विशिष्ट अभिलक्षणों और मध्यकालीन मनुष्य के चिन्तन की शैली और जीवन के प्रति उनकी विशिष्ट भावना को समझने के लिए यहाँ यह महत्वपूर्ण है। अत्यन्त साधारण शब्दावली में इसकी पूर्व निर्धारित भाग्य के सामने आत्म-समर्पण के रूप में, जैसी सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी कहावत 'सैस्ट ला वाई' (ऐसा ही जीवन है) में अभिव्यक्त की गयी है, परिभाषा की जाती है। मध्यकालीन मनुष्य के लिए जीवन जीवन अवस्थाओं का आवश्यक चक्रीय अनुक्रम, कभी आनन्दपूर्ण और कभी विषादमय था, जो प्रत्येक व्यक्ति के वैयक्तिक अनुभव से इतना निर्धारित नहीं होता था जितना वस्तुओं के सामान्य क्रम और सारतत्व से क्योंकि बहुत ही थोड़े व्यक्ति पूरा जीवन जीने के लिए पर्याप्त रूप से भाग्यशाली थे। यह उस ऊँची मृत्यु-दर[1] का समय था जिसे आज, प्रसंगवश, औषधीय कलाओं[2] के ह्रास पर आरोपित किया जाता है।

इसके अतिरिक्त, मध्यकालीन समाज में जीवन-अवस्थाओं का प्रकरण लोक कला में असाधारण रूप से व्यापक था और इसके उपरान्त यह ऐसे व्यावसायिक कलाकारों जैसे टिटियन और वान डिक की कृति में भी व्याप्त हुआ। इस बात पर ध्यान देना रुचिकारक है कि जीवन की अवस्थाओं से सम्बन्धित प्रारम्भिक मध्य काल के रंग चित्रों में बालकों को अल्पवयस्कों के रूप में चित्रित किया गया था। वे कुछ प्रतीकात्मक लक्षणों से, न कि आयु के प्रकार से, पहचाने जा सकते थे। ठीक

1 पी० एरीस, पूर्वोद्धृत, पृ० 11

2 श्मिथ पी० हर, क्वाकसेरिशेज आल्टर, II औफ्लेज, लीपज़िग 1943, पृ० 18-19

उसी प्रकार, दूसरे आयु वर्गों के प्रतिनिधि भी अपनी वेशभूषा के स्वरूपा के साथ-साथ अपने वातावरण की वस्तुओ (पुस्तक के साथ विद्यार्थी, किसी वृद्ध पुरुष के बिल्कुल पास खडी हुई कुरहाडी स मृत्यु आदि) के माध्यम से ही खासतौर पर पहचाने जा सकते थे।

यह कुछ-कुछ आश्चयजनक है कि जीवन अवस्थाओ की ओर इतना समीप वर्ती ध्यान रहने पर भी वे प्राय अस्त व्यस्त हो जाती थी किशोरावस्था एव तरुणाई म कोई भेद नही किया गया था और इन दोनो अवस्थाओ को सरलता से बाल्यावस्था मे सम्मिलित कर दिया गया था। यह उन मध्यकालीन विद्यालयो और विश्वविद्यालयो के उदाहरण से प्रस्तुत किया गया है जहा आयु-अभिमुख सिद्धान्ता का अनुसरण नही होता था भिन भिन अवस्थाओ के विद्यार्थी एक ही कक्षा मे पाये जा सकते थे। कोई भी मध्यकालीन समाज की जीववज्ञानिक कारका और विशेषकर उस लैंगिक परिपक्वता के प्रारभ की ओर, जिसको किसी ने बाल्यकाल की समाप्ति से सयुक्त नही किया, दिखायी गयी सम्पूण उदासीनता से भी आश्चयचकित हो सकता है। बाल्यकाल निभरता के विचार के साथ समीपता मे जुडा हुआ था और उम समय तक समाप्त नही होता था जब तक किसी वरिष्ठ पर निभरता भी ममाप्त नही हो जाती थी। यही कारण है कि लगभग किसी अवस्था का कोई मनुष्य 'लडका' (वैलेट, गाकन) कहला सकता था। सक्षेप म, महत्व सामाजिक स्थिति का दिया जाता था और कोई भी आयु सम्बन्धी आत्म-चेतना को उस शब्द के हमारे अपने अथ मे परम्परागत तात्पय के रूप मे समझ सकता है।

ससार के सम्बन्ध मे ऐसे विचार के निश्चित होने पर कोई समाज मे किसी कठोर आयु-सरचना के सम्बन्ध मे कुछ नही कह सकता। मध्यकालीन यूरोप के ग्राम समुदायो के सम्बन्ध मे, उदाहरण के लिए, बाल्यावस्था' और 'युवावस्था' के बीच अन्तर करने का कोई अथ नही है, क्योंकि वे एक ऐसी समग्र सामुदायिक चेतना मे एकीकृत हो गये थे जिसने मनुष्य का आयु सम्बन्धी वैयक्तिकता सहित किसी भी वयक्तिकता मे वचित कर दिया। जीवन की अवस्थाएँ लैंगिक एव श्रम के आयु विभाजना मे एक कारक के रूप मे विद्यमान थी। मध्यकालीन नगरो के उद्योग-सघो मे केवल वही आयु जब कोई बच्चा 'शिक्षार्थी' बन सकता था, अथवा वह समयावधि जब वह अपने पेशे' के विपरीत ध्रुव पर पहुँच जाता था, अर्थात्, वयस्क बन जाता था, महत्वपूण होती थी। जबकि इन मामलो मे आयु विभेदीकरण और अधिक विस्तृत था फिर भी यह अनिवाय नही था। सक्षेप मे बाइजेन्तियम और मध्यकालीन यूरोप के विद्वानो न जीवन के विभागा को ऐसे नाम दिये जिनम से अनेका का उस समय की अधिकाश जनता के लिए यथाथ म अस्तित्व ही नही था। बाल्यकाल और साथ-ही-साथ किशोरावस्था एव युवावस्था, और उस विषय

के लिए वृद्धावस्था भी सामाजिक विकास के अगले ऐतिहासिक चरणों में विशिष्टीकृत किये गये।

मध्यकालीन समाज पर विचार करते समय किसी को यह ध्यान देना चाहिए कि आज चाहे यह आश्चर्यजनक प्रतीत हो कि उस समय बहुत से लोग सैंट टामस एक्विनास और सैंट आगस्टाइन जैसे उत्कृष्ट विचारक भी, पिशाचों में विश्वास करते थे। यह तब विशेष रूप से आश्चर्यजनक नहीं है कि साधारण लोग निष्ठापूर्वक विश्वास करते थे कि धर्माधिकरण की अग्नि बहुत-सी असली पिशाचनियों को जला रही थी। संक्षेप में, यह स्पष्ट है कि मध्यकालीन युग समाज के उस रहस्यमय प्रत्यक्षज्ञान से प्रभावित थे जो मानव की जीवन अवस्थाओं, जिनमें ऐसे सुज्ञात प्रश्न, जैसे यौवन में आयु का सम्बन्ध, किसी के यौवन को वापिस लाने और जीवन को दीर्घ बनाने के प्रयत्न सम्मिलित हैं, के विषय तक व्याप्त थे। अतः हम इस पर पृथक से विचार करेंगे।

औचित्य के लिए यह कहा जाना चाहिए कि यह अकेले मध्य-कालीन युग में कदापि नहीं था कि जीवन की अवस्थाओं को जादुई शक्तियों के कार्य से जोड़ने के लिए प्रयत्न किये गये। मनुष्य प्राचीन काल से आयु को जादुई ढंग से प्रभावित करने के लिए कोशिश करने में लगा रहा। और हमारे प्रबुद्ध युग में भी जादू में अभिरुचि है, यदा-कदा हम सुनते हैं कि इस समय भी अन्य 'साधन' दीर्घजीवन तथा अमर्त्यता के रहस्य का खोल चुकने का दावा करता है। समय के प्रारंभ से ही मनुष्य ने न केवल दीर्घजीवन एवं अमर्त्यता के स्वप्न देखे हैं—उदाहरण के लिए, यह जीवन का दीर्घीकरण ही था जिसको पाने का कल्पित फौस्ट द्वारा प्रयत्न किया गया था—किन्तु उसने यौवन के दीर्घीकरण के लिए भी लालसा की है। प्राचीन यूनानी पौराणिकी से हमें पता चलता है अभागे टिथोनस की प्रतिमा का, जिसे उषा की देवी इओस की प्रार्थना पर अमर्त्यता प्रदान की गयी थी किन्तु अनन्त यौवन नहीं। ठीक उसी तरह, जोनेथन स्विफ्ट ने लापूटा के अमर्त्य निवासियों का वर्णन किया, जो भी अपने कपाल पर अमर्त्यता के चिह्न के साथ जन्म लेता था उसके भाग्य में अनन्त जराजीर्णता बदी थी।

मानव-जाति का इतिहास 'जीवन के अमृत' अथवा, अधिक सत्यतापूर्वक, 'अनन्त यौवन के अमृत', वृद्धावस्था की असहायता रुग्णता एवं पीड़ा से मुक्ति पाने के प्रयत्नों के बहुत से उदाहरण प्रस्तुत करना है।

इससे पहले हम प्राचीन भारतीय औषधीय शोध प्रबन्ध आयुर्वेद में इस विषय पर, कि यौवन को कैसे अक्षुण्ण रखा जाय जिसमें व्यावहारिक बुद्धिमत्ता के अनेक उपायों के साथ स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी शिक्षा भी सम्मिलित है, चिन्तन प्राप्त होता है।

प्रसिद्ध एडविन स्मिथ पपीरस में 'वृद्ध पुरुषों को युवा पुरुषों के रूप में

रूपान्तरित करने वाली प्रवशिका' शीपक के अधीन 4,000 वप पहले की शिक्षा अन्तर्विष्ट है। किन्तु इसके उपचार उह निराश करेंगे जो कठोर उपाया के पक्षपाती हैं, क्योकि सामा यतया उनका सम्ब ध अगरागो से होता है। इस हस्तलिपि के अन्त म प्राचीन मिस्री लेखक मानता है कि य उपाय केवल किसी के गजापन, चम की विवर्णता और वृद्धावस्था के अ य अप्रिय लक्षणो का ही उपचार करते है।

प्राचीन यूनान के एक पुराण का दावा है कि एक जादूगरनी मेडिया म वद्ध पुरषो को टुकडा मे काटकर और उह जादुई जडी-बूटियो से युक्त एक कडाह म उबालकर यौवन को वापिस ला देने की शक्ति है। पुरानी परम्पराएँ प्राचीन यूनान के एक राजा की याद दिलाती है जो ऐसी वीभत्स प्रक्रिया के वशवर्ती हो गया जो प्राणघातक सिद्ध हुई यद्यपि उसके पूव शल्योपचार का एक एसा 'परीक्षण' हो चुका था जिसके परिणामस्वरूप कहा जाता है कि मेडिया ने एक बकरे को सफलतापूवक पुनर्युवक बना दिया। इस कथा का सूत्र प्राचीन मिस्र का वह पुराण है जो ओसीरिस के पुनर्जीवन और पुनर्यौवन और प्राचीन मिस्रियो के ओरफिक रहस्यो से सम्ब घ रखता है। एक जादुई कडाह मे स्नान करने के बाद पुनर्यौवन के इस विचार ने काला तर मे एक रोमन कवि ओविड और सिक दरिया के कीमियागर जोसीमस को प्रेरित किया। हम एक पौराणिक पक्षी, अमरपक्षी, जिसने भी जलकर और राख से पुनज म पाकर यौवन की नवीनता पुन प्राप्त की।

पुनर्यौवन का विपय बहुत-सी लोक-कथाओ का एक प्रिय विपय रहा है, जैसे उदाहरण के लिए जापानी कथा 'यौवन का पखा' अथवा ग्रिम भाइयो की कथाओ मे से एक 'वह मनुष्य जो नये सिरे से गढा गया।' वस्तुत अनक लोक-कथाओ मे जादू के साधना के माध्यम से पुनर्यौवन का विपय एक व्यग्यात्मक शैली मे प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिए, एक जापानी कथा मे एक वद्धा स्त्री ने 'पुनर्यौवन स्रोत मे स्नान करने के वाछित माप की सीमा को पार कर लिया और एक बच्चे के रूप म परिवर्तित हो गयी—यह ऐसा बि दु था जिस पर विचारणीय व्यग्य के साथ ध्यान दिया गया। हम छोटे कुबडे घोडे की रूसी कथा के ज़ार के दुर भाग्य को याद करें जो अपने यौवन को पुन प्राप्त करन के प्रयास मे, खौलत हुए पानी के कडाह मे कूद गया और नष्ट हो गया।

मध्यकालीन युग मे पुनर्यौवन के उपायो को खोजने के प्रयासा पर नया बल दिया गया। जबकि प्राचीन यूनानी साहित्य मे वृद्ध पुरपा का आकपक रूप मे प्रस्तुत किया गया किन्तु मध्यकालीन लेखन-कार्यों मे वे भद्दे और घृणास्पद दिखायी देते है। इसके आग है पुनर्यौवन के लिए ऐसी उत्कट आकाक्षा। और मध्यकालीन ज्योतिपी रसायनशास्त्री और दाशनिक 'दाशनिक के पारस को खोजत थे जो मनुष्य को धन, शक्ति और यौवन दता।

रसायन म यौवन को लौटाने के प्रमुख साधन सोना, सूखे हुए शव, सप-मांस,

और मानव रक्त समझे गये। इसे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया गया उदाहरण के लिए सोना 'सूर्य से समीपता से संयुक्त है'—जो ताप का स्रोत है और वह 'इसलिए शरीर के ताप को बनाये रखने में योगदान करता है। रोजर बेकन कहता है कि जादू की सहायता से मानव शरीर को सभी 'अशुद्ध पदार्थों' से मुक्त करना और जीवन को सदियों तक दीर्घ बनाना सम्भव है।[1] उन्होंने विशेष रूप से सोने, लोबान मोती, समुद्री गुलाब के तेल, हरिण की मज्जा, कच्चा सर्प माँस और युवती स्त्रियों के प्रश्वास के प्रयोग की सिफारिश की।

परवर्ती विचार निम्नलिखित धारा से जुड़ा हुआ था।

वृद्धावस्था निर्विवाद रूप से मैथुनीय शक्ति के ह्रास से जुड़ी हुई होती है यद्यपि अनेक मसलों का उल्लेख किया गया है जिनमें 120 से लेकर 150 वर्ष तक के व्यक्तियों ने न केवल मानसिक शक्तियों किन्तु मैथुनीय शक्ति सहित शारीरिक शक्तियों को भी कायम रखा। उदाहरण के लिए, प्रसिद्ध टॉमस पार एक परिश्रम करने वाले किसान के रूप में 152 वर्ष जीवित रहा। 120 वर्ष की आयु में उसने एक विधवा से पुनर्विवाह किया जिसके साथ वह 12 वर्ष तक ऐसे बढ़िया स्वास्थ्य से रहा कि उसके समकालीनों के अनुसार, विधवा का ध्यान उसकी वृद्धावस्था की ओर गया ही नहीं। किन्तु, तो भी, ये अपवाद केवल सामान्य नियम की पुष्टि ही करते है। फिर भी, मानव जाति जीवन के निश्चित नियमों को सुस्पष्ट रूप से मानने के लिए सबसे कम प्रवण है और यह सुप्रसिद्ध है कि एतिहासिक दृष्टि से, विशेषकर चौदहवीं से अठारहवीं शताब्दियों में 'काले जादू' में उत्कट रुचि के समय अनेक नानाविध तरीकों से मैथुनीय शक्ति को दीर्घ कालीन बनाने के अनेक प्रयत्न किये गये, इनमें कुछ ऐसे है जिन्हें आज कवर बताया जायगा, यद्यपि उनका सम्बन्ध पाश्चात्य सभ्यता के उद्गम यूरोप के अपेक्षाकृत वर्तमान काल में है। इनमें से एक तरीका था रक्त शोषण, यौवन को पुनः प्राप्त करने के लिए युवा पुरुषों का पुनः रक्त पीना। यह सत्य है कि कालान्तर में 16-17वीं शताब्दियों का यह काल जादू का फॉर्मूला विरोधाभासीय रूप में रक्त आधान के विशुद्ध वैज्ञानिक तरीके में मूर्तिमान कर लिया गया। इसके समान ही व्यापक था सनामिटवाद का तरीका—यह भी एक जादुई प्रक्रिया थी जिसका आधार यह सिद्धान्त था कि युवती लड़कियों के श्वास में, जिसे 'अपने पूर्ण रूप में पवित्र जीवन की शक्ति' में सन्निविष्ट माना जाता था (रोजर बेकन पूर्व-कथित विचार) पुनर्यौवन की शक्तियाँ हैं। यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है कि ये

1 आर० बेकन, डी रिटार्डेशन एक्सीडेंशियम सिनक्टुटिस कम एलिस आपस कुलिस डी रेबस मैडीसिनलीबस, सम्पादक ए० जी० लिटिल, ई० विथिंग्टन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1928

प्रयत्न कितने निरर्थक प्रमाणित हुए। जादू के सभी रूपों की तरह वे व्यक्ति की इच्छाओं को यथार्थ के रूप में मानने की आकांक्षा पर आधारित थे।

फिर भी कोई मध्यकालीन समाज में जादुई 'उपचारों' की निरन्तरता में आश्चर्यचकित होता है। वे बिल्कुल सामान्य थे और एक चिकित्सक और दार्शनिक मार्सिलियो फिसिनो के द्वारा दी गयी शिक्षा से समानता रखते थे। फिसिनो का विश्वास था कि जब कोई मनुष्य सात की दस गुनी या आठ की नौ गुनी आयु तक पहुँच जाता है तो 'उसके शरीर का वृक्ष' वर्धमान शुष्क हो जाता है, और, तदनुसार, अपने यौवन को पुनः प्राप्त करने के लिए उसे किसी युवा शरीर की तरलताओं में भागीदार बनना चाहिए। एक वृद्ध मनुष्य को एक युवती, स्वस्थ एवं सुन्दर स्त्री को खोजना होता था और पूर्णिमा को उसके स्तनों से दूध पीना होता था, इसके बाद उस शतपुष्पिका शक्कर के साथ खानी चाहिए थी, क्योंकि शक्कर दूध के खट्टे होने को रोकती है जबकि शतपुष्पिका सभी अंगों में इसके परिभ्रमण को सुविधाजनक बनाती है।[1]

इस प्रकार के जादुई नुस्खों की सामान्यता का मुकाबला उसके परिणाम से होना था जो 'नहीं' था यद्यपि आत्यन्तिक साधन, उदाहरण के लिए, सम्पत्तिशाली वृद्ध पुरुष विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित कुमारियों के बीच में लेटते थे किन्तु लाभ कुछ नहीं होता था, प्रयोग में लाये जाते थे।

अपेक्षाकृत लम्बे समय तक जादुई औषधियों का उपचार में प्रयोग जारी रहा। सोलहवीं शताब्दी में हमें प्रसिद्ध जर्मन चिकित्सक पैरासैलसस का प्रसंग मिलता है जिसने 'जीवन के अमृत' की तलाश की, उसे पाया, और उसे अनवरत रूप से पिया, और 48 वर्ष की आयु में मर गया। 1972 में किसी जर्मन लेखक ने ताप के माध्यम से पुनर्यौवन के लिए 'राजा डेविड का नुस्खा' मध्यकालीन चिकित्सकों के लेखों में पाया। यह अपने समय में बहुत अधिक लोकप्रिय था किन्तु वांछित प्रभाव प्राप्त न कर पाया।

जीवन की अवस्थाओं का विज्ञान

सम्भवतः यह व्यापक रूप से माना जाता है कि पुनर्जागरण ने अपनी प्रेरणा 'प्रबुद्ध पुरातनता' में प्राप्त की, यद्यपि उस विशेष युग में मानव-जाति के विकास के सम्बन्ध में सम्मतियाँ भिन्न भिन्न हैं। फिर भी, हमारे लिए यह महत्त्वपूर्ण नहीं है

1 देखिये, बी० मीयर, कुरियोसम फौएनमिल्च अल्स वरजुंगमित्तल, ज़ेड फ्लीस्च-अण्ड मिल्चहाइजीन, न० 8, पृ० 266-267, 1928

कि हम मध्यकालीन संस्कृति से पुनर्जागरण का वैषम्य दिखला रहे हैं अथवा हम उनमें सामान्य सांस्कृतिक विरासत के तत्त्व खोजने का प्रयत्न करते हैं। अन्ततोगत्वा, यदि कोई चरम दृष्टिकोण पर एकमात्र बल नहीं देता तो वे बिल्कुल सफलतापूर्वक सह-अस्तित्व में होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुनर्जागरण मध्यकालीन समाज से आविर्भूत हुआ था और फिर भी वह उससे तात्त्विक रूप में भिन्न हो गया। दोनों युगों की संयुक्त विरासत और विभेदों को अभिव्यक्त करने के प्रयत्न में हम क्विटा एसेंशिया (पाँचवें सारतत्त्व) के उस सामान्य विचार की ओर उन्मुख होते हैं जो प्राचीनता में उत्पन्न हुआ और सारे मध्यकालीन समाज और पुनर्जागरण में बना रहा। प्राचीन यूनानियों और रोमनों के मन में निश्चित पंचम और इसके अतिरिक्त मौलिक (सारभूत) तत्त्व, यथा वह मौलिक सारतत्त्व जो अन्य पदार्थों (जल, पृथ्वी, वायु और अग्नि—प्रारम्भिक चार तत्त्व) को उत्तेजित और क्रियाशील करते हैं। इस मौलिक सारतत्त्व को ऐसी तात्त्विक शक्ति के रूप में समझा गया जिससे मनुष्य का जन्म हुआ, जब वर्जिल ने एइनिया के पोतभग के समय अस्तित्व के झंझावात में मनुष्य के जन्म के प्रतीक को देखा। पुनर्जागरण के युग के प्रारम्भ में यह मनुष्य स्वयं ही था जो मनुष्य के लिए एक केन्द्रीय विषय वस्तु बना और इस प्रकार अपने स्वयं के जीवन में एक सत्तात्मक आकर्षण अभिव्यक्त किया।

जीवन की अवस्थाओं को समझने में परिवर्तन जीवन के स्वयं के प्रति बदले हुए रुख के परिणामस्वरूप हुए। वे पुनर्जागरण के समय प्रारम्भ हुए और प्रबुद्धता के द्वारा चलाये गये और इसके अतिरिक्त वे बाल्यकाल की अवस्था (विशेषकर शिक्षा के विषय में) से सम्बन्धित थे। मध्यकालीन समाज में शिक्षा की कला, जैसी प्राचीन काल में व्यवहार में थी, अधिकतर भुला दी जा चुकी थी। जबकि प्रारंभिक युगों में बालकों के संसार और वयस्कों के संसार में मोटे रूप में विभेद किया जाता था, मध्यकालीन समाज में बालक जैसे ही अपनी माता की सहायता (अनुमानतः सात वर्ष की अवस्था में) छोड़ देते थे तब ही वयस्क जीवन में प्रवेश कर लेते थे। बालकों को तुरन्त ही उनके वयस्क परिवार' में समाविष्ट कर लिया जाता था जिसके साथ वे प्रतिदिन के श्रम के भार में भागीदार बनते थे। प्राचीन काल के असदृश, परिवार पालन-पोषण का केन्द्र नहीं था, इसके कार्य जीवन की वर्तमानता, (विशुद्ध भौतिक अर्थ में) नयी पीढ़ी का पुनरुत्पादन और इसके लिए सम्पत्ति और परिवार के नाम का सम्प्रेषण तक ही सीमित थे। संक्षेप में, मध्यकालीन समाज अपने भविष्य को अपने बालकों के साथ नहीं जोड़ता था। हम यह याद करें कि यह भविष्य सर्वथा भिन्न नियामक सिद्धान्तों (भाग्य, नियति, आदि) के द्वारा निर्धारित रूप में समझा जाता था। पारिवारिक सम्बन्ध केवल बड़े पुत्रों तक ही उनकी उत्तराधिकारी के रूप में योग्यताओं को देखकर विस्तृत किये जाते थे।

पुनर्जागरण के मानववादी, जिन्होने 'ससार और मनुष्य' की खोज की थी, शिक्षाशास्त्र के प्रति असाधारणत उदासीन थे। मनुष्य के ऊँचे जीवन-लक्षण की घोषणा करते हुए भी उस जीवन-लक्ष्य के विचार से शिक्षा देने के लिए कोई चिन्ता व्यक्त नही की। और पुनर्जागरण के दौरान बाल्यकाल उससे तनिक भी भिन्न नहीं हुआ जितना वह अधकार युग म रहा था। यद्यपि यह विरोधाभासी मालूम हो सकता है, पुनजागरण के महान व्यक्तियो ने मानव की आयु-सापेक्ष आत्म चेतना के अग्रिम विकास का यथाथ रूप मे प्रभावित नही किया, इस विषय मे व उन शिक्षाशास्त्रीय सुधारको (प्रबोधको) से बहुत पीछे थ जिन्होने मध्यकालीन समाज (और पुनर्जागरण) की 'अराजकता' के विरुद्ध मजबूत परिवार और एक 'नये प्रकार की शिक्षा' के समथन मे सघष किया। पुनर्जागरण की अनुवर्ती प्रबुद्धता न बाल्यकाल के स्वरूप को मूलत परिवर्तित कर दिया और परिवार एव विद्यालय की इसके शिक्षको के रूप मे परिभाषा की। परिवार को बच्चा की देखभाल करने और उन्ह शिक्षित करने का काय सौपा गया। विद्यालय न बच्चे को 'स्वतत्रता' से वचित कर दिया और उसे ससार के ऐसे कठोर अनुशासन मे रख दिया जिसमे शारीरिक दण्ड एव बन्दीकरण सम्मिलित थे। सक्षेप म, बालको का ससार वयस्को के ससार स परिवार की शिक्षा और विद्यालयो के द्वारा निर्मित बाधाओ के द्वारा पृथक कर दिया गया।

जबकि पुनजागरण और प्रबुद्धता न समाज के भीतर बालका की स्थिति को परिवर्तित कर दिया, उन्होने उनके आनन्द को सुनिश्चित नही किया। शिक्षा के साथ उनका सम्बन्ध कठोरता एव अनुशासन एव दण्ड के यदा-कदा निदयतापूण स्वरूपो के द्वारा नष्ट कर दिया गया। बालको के ससार के एक अलग क्षेत्र मे पृथक्करण ने वयस्का की दुनिया तक ऐसी बाधा निर्मित कर दी जिसे बालको को यथाथ वयस्क-ससार मे प्रवेश करते समय प्रवेश-द्वार पर ही पराभूत करना पडता था। विद्यालयो ने बालको को इस जीवन के लिए तयार करना आरम्भ किया। वे बच्चो को विशेष सामाजिक स्तरो को आबटित करने, बच्चो को उनके सामाजिक उदभव पर आधारित 'वर्गों और सामाजि विभागा के सम्बन्ध के अनुसार छाँटने का एक उपकरण भी बन गय। इस बात पर ध्यान देना भी मनोरजक है कि जबकि पूव काल मे विभिन्न वर्गों से सम्बन्ध रखने वाले बालक एक ही खेल खेलते थे, इस बिन्दु पर सामाजिक स्तर के अनुसार खेलो के स्वरूप का भी विभेदीकरण होना आरम्भ हो गया था।

पूँजीवाद के अधीन सामाजिक उत्पादन के परिवतनो और जीवन एव उसकी आयु-सीमाओ के परिणामस्वरूप होने वाली आयु-सापेक्ष आत्म चेतना के परिवतन कई मार्गों पर एक साथ आगे बढे।

विकास के सबसे अधिक आकषक मार्गों म से एक साहित्यिक कृतियो मे

अंकित किया गया है। इसे बाल्यकाल की वह नयी खोज कहा जायेगा जिसे प्रारम्भिक 19वीं शताब्दी में कल्पनावादियों द्वारा किया गया था।

काव्य और सत्य शीर्षक अपनी आत्मकथा में गटे स्मरण करते हैं कि उनके बाल्यकाल (मध्य 18वीं शताब्दी) में कोई बाल साहित्य (निस्संदेह, पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त बालकों के लिए विशिष्ट पुस्तकें) नहीं था, जबकि प्रारम्भिक 19वीं शताब्दी में उनकी संख्या पहले से ही पर्याप्त थी।

इस सम्बन्ध में सोवियत अनुसंधानकर्ताओं ने यह अवलोकन किया है कि बाल्यकाल पर प्रकाश डालने के लिए किसी को सर्वप्रथम दूसरी अवस्था का भार अनुभव करने के लिए इसको हटा देना होगा। बाल्यकाल की अपने स्वयं के मूल्य से सम्पन्न आध्यात्मिक विकास की एक स्पष्ट अवस्था के रूप में अवधारणा भावुकतापूर्ण-कल्पना प्रधान दृष्टिकोण से उद्भूत हुई। श्रेण्यवाद बाल्यकाल सम्बन्धी काव्य के प्रति सर्वथा विवेकशून्य था—यह मानव के सर्वव्यापक आदर्श तत्त्वों में रुचि रखता था और बाल्यकाल को वैसे ही मानदण्ड से अन्तर (अपरिपक्वता) के रूप में देखता था, जैसे उन्माद को मानदण्ड से मनोवैज्ञानिक विचलन (अविवेक) समझता था। बाल्यकाल में एक अभिरुचि, जो अपने स्वरूप में काव्यात्मक की अपेक्षा वस्तुतः नीरस एवं शिक्षात्मक थी, प्रबुद्धता के प्रतिनिधियों में देखी जा सकती थी अपनी जनवादी आकांक्षाओं में उन्होंने केवल समाज के तृतीय सम्पदा के सदस्यों के लिए ही लिखना आरम्भ नहीं किया, किन्तु इस प्रकार साहित्य को निर्वाचित कुलीनतंत्रीय क्षेत्र की सीमाओं के पार विस्तृत करते हुए बालकों (जो आयु क्रम-परम्परा में अधिक नीचे स्तर पर थे) के लिए भी, उनमें एक ऐसे होनहार क्षेत्र को जो विवेक और गुण के बहुमूल्य फल उत्पन्न कर सकता था, देखकर, लेखन प्रारम्भ किया। प्रबुद्धता के प्रतिनिधि बालकों के लिए ऐसे साहित्य का निर्माण करने में अग्रणी थे जो प्रमुख रूप से अपने स्वरूप में शिक्षात्मक था[1] फिर भी, यह केवल स्वच्छन्दतावाद ही था जिसने बाल्यकाल को अवस्था विकास में उपयोगितावादी प्रारम्भिक चरण के रूप में ही नहीं माना किन्तु उसे स्वयं में बहुमूल्य एक ऐसे संसार के रूप में पहचाना जिसकी गहराई और ताजगी वयस्कों के लिए भी आवश्यक थी। आयु-वर्गों के बीच के सभी सम्बन्ध, यदि यह मान भी लिया जाय स्वच्छन्दतावादी मनोविज्ञान और सौन्दर्य शास्त्र में विलोम कर दिये गये जहाँ प्रारम्भिक बाल्यकाल को विकास की एक अपर्याप्त अवस्था के रूप में देखा गया, अब यह वयस्कता की अवस्था ही थी जो कम वांछित एवं बाल्यकाल की निष्कपटता और पवित्रता को खो चुकने वाली अवस्था के रूप में सामने आयी। संक्षेप में, स्वच्छन्दतावादियों ने बाल्यकाल को स्वतंत्र वास्तविकता एवं स्वयं में एक संसार के रूप में विश्व-साहित्य के लिए प्राप्त किया।

किन्तु इन परिवर्तनो के लिए ऐसे कारण भी थे जो स्वच्छन्दतावाद से बहुत दूर थे। बहुत अशो मे उन्होंने केवल साहित्य को, जहाँ वे सही रूप मे अधिक स्पष्टता से अभिव्यक्त किय गये थे, ही प्रभावित नही किया किन्तु शिक्षाशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्र को भी। विकसित पूजीवादी उत्पादन बाल-श्रम (बहुत से पूजीवादी देशा मे आज भी बाल-श्रम का उपयाग किया जाता है) के उपयोग के कभी विरुद्ध नही रहा। किन्तु जैसे-जैसे तकनीक अधिक जटिल और तीव्र होती गयी अर्थव्यवस्था का प्रशिक्षित, शिक्षा प्राप्त एव निपुण श्रमिको की आवश्यकता हुई और अन्ततागत्वा इसने भावी श्रमिको के लिए अधिक व्यापक प्रशिक्षण की आवश्यकता की ओर निर्देश किया। शिक्षा मे कुछ परिवर्तन हुए। प्रगतिशील राजनीतिक नेताओ ने बाल्य का बढान और बाल-श्रम पर रोक लगाने के लिए सघर्ष किया। इस सबने सर्वव्यापकत सभव सामाजिक सन्दर्भ मे बाल्य-काल सम्बन्धी दृष्टिकोण को प्रभावित किया।

बाल्यकाल के प्रति पूजीवादी समाज का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध मे कि इस व्यवस्था ने सामान्यतया आयु-समस्या का कैसे निरूपण किया, इस प्रकार के 'लिटमस परीक्षण' का काम दे सकता है। एक ओर, यह कुशल श्रम मे अभिरुचि रखता था और शिक्षा से सम्बन्धित था, किन्तु दूसरी ओर, बाल-श्रम का शोषण मौजूद था (हम डिकन्स द्वारा प्रस्तुत स्पष्ट कृतियो का स्मरण करें), एक ओर बाल्यकाल एक आर्थिक श्रेणी मे रूपान्तरित कर दिया गया, तो दूसरी ओर, इस पर स्वच्छन्दतावादिता आदि के अनुसार विचार किया गया।

बुर्जुआ सिद्धान्तवादी भी प्राय समान रूप से परस्पर विरोधी निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। इन्हे निम्नलिखित उदाहरण की शब्दावली मे प्रदर्शित किया जा सकता है।

एक अन्तर्निहित रूप से विरोधाभासी स्थिति जनसांख्यिकीय साहित्य मे देखी जा चुकी है, उदाहरणार्थ जीवित रहने की परिस्थितियो की गिरावट (युद्ध, बेकारी आर्थिक सकट, मुद्रास्फीति आदि) प्राय, आश्चर्यजनक रूप से, बाल्य मृत्यु-दर की गिरावट से जुडी रहती है। कुछ प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तवादी इसका 'तथ्यो मे से एक के रूप मे समर्थन करते हैं जो उनके अद्भुत तर्क, यथा 'जितना ही अधिक बुरा, उतना ही अधिक अच्छा', किसी देश की स्थिति जितनी अधिक बुरी होती है, जनता के लिए यह उतनी ही अधिक अच्छी होती है। (?) इस प्रकार की स्थितियो का विश्लेषण करते हुए कार्ल मार्क्स ने पूँजी की प्रथम जिल्द मे लिखा कि सामान्य बेकारी और तगी के काल मे चिकित्सको ने देखा कि बालको की मृत्यु-दर घट गयी। मार्क्स स्पष्ट करते है कि औद्योगिक गतिविधियो के विराम ने इस समय बेकार माताओ को, कम-से-कम कुछ समय के लिए, उनके बच्चो के पास लौटा दिया, और इसने अन्त मे उस अवधि मे बालको की देखभाल मे सुधार होने के कारणो को

स्पष्ट कर दिया ।[1]

इस सम्बन्ध मे किसी का इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि आयु-सापक्ष और शिक्षाशास्त्रीय मनोविज्ञान बहुत तरह से पूजीवादी विरोधाभासा का ऋणी है। पूजीवादी उत्पादन के विकास और उसके वधमानत जटिल स्वरूप न 19वा शताब्दी क अन्त म पहले से ही कुशल व्यक्तियो के प्रशिक्षण मे मूलभूत सुधारा की माग कर रखी थी। इसने सबसे अधिक प्रतिभाशाली और योग्य बच्चा को पहचानना आवश्यक बना दिया। परिणामस्वरूप, मनोविज्ञानवक्ताओ के सम्मुख प्रतिभाशाली बच्चा का पता लगान के लिए किसी प्रक्रिया क विकास का काय प्रस्तुत हुआ। यह वही है जिसन फ्रामीसी मनोविज्ञानवेत्ता विने और साईमन क उन प्रसिद्ध आई० क्यू० परीक्षणा का माग प्रदर्शित किया जिसन वस्तुत वैज्ञानिक बाल मनोविज्ञान के प्रारम्भ को चिह्नित किया।

आखिरकार और अधिक पीछे देखने पर इसे ध्यान मे रखना चाहिए कि प्रारम्भ से ही पूजीवाद ने उस वैज्ञानिक अनुसधान को प्रोत्साहित किया जिसने विचारणीय सीमा तक उत्पादन दक्षता को बढान मे सहायता दी और मुनाफा और उद्यमो की योग्यता को प्रतियोगिता करने के लिए बढावा दिया। यह विशपकर प्राकृतिक विज्ञानो के सम्बन्ध मे सत्य था। उपोत्पादन के रूप मे इस अनुसन्धान ने आयु से सम्बन्ध रखन वाली अनक प्रकार की अवधारणाएँ, उदाहरण के लिए, आयु-सापेक्ष विकास के शरीरविज्ञान सम्बन्धी अवधिकरण जिन पर रचना-तन्त्रो के विकास रूप म देखा गया, उत्पन्न की। कुछ उदाहरण निम्नलिखित है।

19वी शताब्दी म फ्रासीसी मनोवज्ञानिको ने एक ऐसे वर्गीकरण अनुक्रम का उपयोग किया जिसने मानव जीवन को चार अवधियो मे विभाजित किया[2]

1 बाल्यावस्था, लडको के लिए 14 व 15 वष की आयु पर और लडकियो के लिए 11 वष की आयु पर समाप्त होने वाली,
2 युवावस्था पुरुषा के लिए 23 25 वष की आयु पर और स्त्रियो के लिए 19 20 वष की आयु पर समाप्त होने वाली,
3 प्रौढावस्था दानो ही लिंगो के लिए 55 60 वष की आयु पर समाप्त होने वाली,
4 वृद्धावस्था 55 60 वष की आयु से प्रारम्भ होने वाली।

फिर भी 19वी शताब्दी के प्रमुख फ्रासीसी मनोविज्ञानवेत्ताओ म से एक,

1 देखिए, काल माक्स पूजी, जिल्द I, प्रोग्रेस पब्लिशस, मास्को 1984, पृ० 372
2 ई० राजेट, प्रोसस स्टारजेनिया साई सुडनोसी, पृ० 3

जीन पियरे मेरी फ्लाउरस ने एक सवथा भिन्न वर्गीकरण-अनुक्रम पर निभर किया। (देखिये सारणी 10)

सारणी 10

जीवन की अवस्थाओं का वर्गीकरण

(जी० पी० फ्लाउरस के अनुसार)

सख्या	अवधि	वष
1	बाल्यावस्था की प्रथम अवधि	0 9
2	बाल्यावस्था की द्वितीय अवधि	10-19
3	प्रथम युवावस्था	20 29
4	द्वितीय युवावस्था	30-39
5	प्रौढावस्था की प्रथम अवधि	40 54
6	प्रौढावस्था की द्वितीय अवधि	54 69
7	वृद्धावस्था की प्रथम अवधि	70-85
8	वद्धावस्था की द्वितीय अवधि	85 के बाद

दूसरा वर्गीकरण-अनुक्रम रोगविज्ञान सम्बन्धी शरीर-रचना विज्ञान मे और आधुनिक क्रियागत रोगविज्ञान के सस्थापक, जमन विशेषज्ञ लुडविग एसचाफ का वर्गीकरण है।

वे दस अवधियो का परिचय देते हैं

1 *गर्भावस्था मे विकास*
2 नवजात शिशु—जीवन के सातवें दिन तक
3 शशव—जीवन के सातवें महीने तक
4 बाल्यावस्था—जीवन के सातवें वष तक
5 किशोरावस्था—14 वष की आयु तक
6 परिपक्वता—25 वष की आयु तक
7 प्रौढावस्था—45 वष की आयु तक
8 वद्धावस्था का प्रारम्भ—65 वष की आयु तक
9 वद्धावस्था—85 वष की आयु तक
10 अग्रवर्ती वृद्धावस्था—85 वष के ऊपर

हम यह देखें कि एल० एस्चाफ ने जन्म से पहले के विकास की अवधि को सन्निविष्ट किया और दूसरे वद्धावस्था एव बाल्यावस्था दोना को विस्तृत तथा

उपविभाजित किया।

साधारणत, यद्यपि वे महत्व स रहित नही ह, फिर भी इन अवधिकरणा ने मानव जीवन के आयु-सापेक्ष विभाजनो को समझन म कोई नवीन मौलिक योगदान नही किया। वे पूववर्ती कालो की सद्धान्तिक अवधारणाओ मे अधिक भिन्न नही है, और, उन अवधारणाओ के असदृश वे आयु को (आयु-सापेक्ष परिवतना को दैहिक आधार मे परिणत करके) समझन म प्रकृतिवादी माग पर ही बल देत हैं।

अधिक मौलिक परिवतनो का, जो 19वीं शताब्दी मे घटित हुए, सम्बध जीवन के उसकी अवस्थाओ के रूप मे अवधिकरण से नही, किन्तु कुछ-कुछ पृथक पृथक अवस्थाओ के सारतत्व का समझने से था। हमने बाल्यकाल के सम्बन्ध के दृष्टिकोणो म होने वाले परिवतनो का पहले ही से उल्लेख कर दिया है। हम अब वृद्धावस्था सम्बधी दृष्टिकोणो के परिवतनो का उल्लेख करें।

यह पहले ही दिखाया जा चुका है कि वृद्धावस्था मानव विकास की एक विशिष्ट अवधि के रूप मे ऐतिहासिक रूप से विकसित हुई है। इसके अतिरिक्त, वास्तविकता एव हमारे पूववर्तियो की चेतना दोना म वृद्धावस्था जीवन मे अपेक्षाकृत पहले प्रारम्भ हुई और फिर भी यौवन की अवस्था मे समीपता से सम्बधित थी। मोतियर के 'वयोवृद्ध प्राणी अपेक्षाकृत अभी तक युवक है, क्योकि वृद्धावस्था को शारीरिक दुबलता के रूप म नही कि तु वस्तुत उस आयु-परिवतन के रूप म देखा गया जो यथाथ म स्वय वृद्धावस्था के पहुँचने से बहुत पहले प्रारम्भ हो जाती है। और अधिक सामा य रूप मे, अभी तक अति आधुनिक काला मे वृद्धावस्था को कोई विशेष सम्मान नही मिलता था—यह अ यधिक धार्मिक जोश, खोखली बकवक, भुलक्कडपन और अनेक दूसरी असफलताओ स जुडी हुई थी।

जबकि वृद्धावस्था पर विचार एव अनुसधान एक बहुत लम्बे समय (पहले ही हिप्पोक्रेट्स, सिसरो और गेलन के समय म) प्रारम्भ हो चुका था और वतमान काल म अपेक्षाकृत गहन अध्ययन का विषय था तो भी सिम्गो द्वारा मौलिक रूप से परिभाषित (सिनेक्टस इप्स ऐस्ट मोरबस) स दभ म ही इसके पास पहुँचने का सिलसिला जारी रहा। 19वीं शता दी के अन्तिम चरण मे वृद्धावस्था क प्रति इस उपेक्षा पर काबू पाने की आवश्यकता पर जोर देते हुए एक फ्रांसीसी चिकित्सक, मन चिकित्सक एव मनोविज्ञानवत्ता जीन चारकोट ने आने वाले अनेक वर्षों के लिए फ्रांस को वज्ञानिक वृद्धावस्था विज्ञान का के द्र बना दिया। रूस मे वृद्धावस्था से सम्बधित पूर्वाग्रहो को हटाने के लिए 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण म इल्या मक्नीकोव और 1917 की समाजवादी क्रान्ति के बाद सोवियत अनुसधानकर्ताओ द्वारा ठीक उसी माग का अनुसरण किया गया।

वस्तुत हम युग-संधि क समय अनुसधानकर्ताओ द्वारा विकसित वृद्धावस्था सम्बधी उस मौलिक रूप म नवीन दृष्टिकोण को बता सकत हैं जिसने इसे महत्व

म जीवन की अन्य अवस्थाओ के बराबर समझा, जीवन के अन्तिम वष अव विघटन की प्रक्रिया के रूप मे अधिक लम्बे समय तक परिणत नही किये गये, यथाथ म व अपने स्वय के मूल्य लक्ष्यो और विशिष्ट अभिलक्षणो से युक्त होने वाले समझे गये।

वृद्धावस्था म वधमान अभिरुचि होने के अनेक कारण थे, इनम सम्मिलित थे—जनसांख्यिकीय महत्व (मानव जाति 19वी शताब्दी के अन्तिम चरण और 20वी शताब्दी के आरभिक चरण मे आयु मे बढने लगी, अर्थात्, समाज म वयोवृद्ध लोगो का अनुपात बढने लगा) आर्थिक कारक (उत्पादन क्रियाओ की प्रकृति, निपुणता और अनुभव चाहती थी जो आयु के साथ विकसित होते है), चिकित्सा सम्बन्धी महत्व (अर्थात्, अनेक रोगो पर काबू पाना और इस प्रकार जीवन की परिधि का बढना) और अन्त मे मानव अमत्यता सम्बन्धी धार्मिक एव दाशनिक विवेचन आश्चयजनक ढग से जीव विज्ञान की उस अग्रसरता से सयुक्त हो गये जिससे अनेक लोग अनन्त जीवन के विश्वास को वज्ञानिक रूप से प्रमाणित करने की आशा करते थे।

तब हम जीवन-अवस्थाओ के इतिहास के सर्वेक्षण से क्या निष्कष निकालेंग ? सभवत पाठक ने पहले ही यह ध्यान दिया होगा कि हमने किसी दृष्टिकोण विशेष के ढाचे मे बने रहना वधमानत कठिन पाया है। जीवन-अवस्थाओ की समस्या के अय पर विचार करने मे शिक्षाशास्त्र एव अथशास्त्र, विधिशास्त्र एव सौन्दयशास्त्र के द्वारा एक वधमान भूमिका निभाई गयी है। फिर भी, सभवत , विज्ञान पर 19वी शताब्दी मे सामाजिक चेतना के अग्रणी स्वरूप के तौर पर बल देना उपयुक्त होगा। इसी कारण यह वैज्ञानिक अनुसधान ही है जो आज आयु की समस्या को सुलझाने का प्रतिनिधि बनता है। हमारे लिए यह दृष्टिकोण मानस के विज्ञान मे सन्निविष्ट है जिसके माध्यम से हम आज जीवन-अवस्थाओ की समस्या के पुनर्वीक्षण करने का प्रयत्न करेंगे। ऐसे सन्दभ मे हमारे अध्ययनो का ध्येय होग विकसित समाजवादी समाज मे आयु सम्बन्धी समस्या।

आधुनिक ससार मे जीवन की अवस्थाएँ

इतिहास की उपेक्षा करना हमे काल के तत्व के सम्बन्ध मे आत्म विस्मृत कर देगा। हम सोचते हैं कि जीवन-अवस्थाओ के इतिहास के हमारे छोट से सर्वेक्षण का साराश देते समय इसको ध्यान मे लाना अनुपयुक्त नही होगा। जैसे ही हम आज के व्यक्तित्व विकास के आयु-सम्बद्ध परिवतनो के विश्लेषण की ओर मुडते हैं तो हम इस सर्वेक्षण मे क्या शिक्षाएँ प्राप्त करते हैं ? हम देख सकते हैं कि

जीवन-अवस्थाओ के ऐतिहासिक विकास का संक्षिप्त अध्ययन भी मानव-जीवन के आयु सम्बन्धी पक्षो के सामाजिक उद्भव और सांस्कृतिक ऐतिहासिक विशिष्टता के सम्बन्ध म कोई सन्देह पीछे नही छोडता। यह हमारे अन्तरतम का प्राकृतिक नियम नही है और न ही अस्तित्व का जीववैज्ञानिक आवतन है किन्तु मानव जीवन की अवस्थाओ के रचनातन्त्र की प्रक्रिया (एसी प्रक्रिया जो अभी तक पूण नही हुई है) का एसा ऐतिहासिक रूप से अनावरण है जो इस विषय के लिए सन्तुलित दृष्टिकोण के सारतत्व का निर्माण करता है।

मानव जीवन के आयु-सापक्ष गति विज्ञान के वे परिवतन जिनकी हम 'समसामयिक' कहकर व्याख्या करेंगे एक विशिष्ट ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम और उस प्रक्रिया म एक बिन्दु (क्योंकि विकास अभी तक पूण नहीं हुआ है) दोनों के अतिरिक्त कुछ नही हैं। और आज, बीसवी शताब्दी के अन्त के समय हम ऐसे नवीन परिवतनों के साक्षी हो रह हैं जो केवल भविष्य मे ही सभवत व्यापक रूप से समझे और स्पष्ट किये जा सकते है। तो भी आज तक हम पूणतया असहाय नही हैं जब हम नये तथ्यो और प्रभासो पर विचार करते हैं क्योंकि अतीत का ऐसा अमूल्य अनुभव हमारे अधिकार म होता है जो केवल अकेला ही इन परिवतनो का अकित करना सभव बनाता है जो आज जीवन अवस्थाओ के सम्पूण क्रमक्रम को प्रभावित कर रहे हैं। बाल्यकाल की अवधि म महत्वपूण परिवतन हुए हैं। इस अवस्था को दीघ बनाने की ओर झुकाव हो चुका है क्योंकि आदमी को अपनी योग्यताओ का विकास करने और उन मानवीय गुणो जिनकी सामाजिक जीवन, काय और नियात्मकता म आवश्यकता है, पर अधिकार करने के लिए समय की वधमान मात्रा की जरूरत है। फिर भी, बाल्यकाल, अपनी सभी अवस्थाओं म, व्यक्तित्व के विकास के 'कायक्रम' के रूप म बढाया जाता है और सामाजिक शिक्षा और सामान्य शिक्षा और अधिक घनीभूत होती जा रही हैं। किशोरावस्था म व्यक्तित्व के विकास की एक विशेष अवस्था (बाल्यकाल से वयस्कता तक की सक्रमणात्मक अवस्था) के रूप म महत्वपूण परिवतन स्थान पा रहे है, और कुछ विकासशील लोगो के विषय म यह अवस्था प्रथम बार दृष्टिगोचर हुई है। प्रारभिक युवावस्था की स्थिति मे परिवतन अक्षरश हमारी ही आँखो के सामने स्थान पा रहे है और युवावस्था और प्रौढावस्था को नये अथ दिये जाते है जब वद्धावस्था से उधार लेकर आयु सीमाएँ बढ रही है। स्वय वद्धावस्था भी आखिर बार पीछे धकेल दी गयी है। व्यक्तियो की आयु चेतना म भी और अधिक परिवतन स्थान ले रहे है। सक्षेप म जीवन-अवस्थाओं का इतिहास विकसित होने से रुका नहीं है और प्रत्येक नयी पीढी उस इतिहास म एक नया पृष्ठ जोडती है। अब हम व्यक्तित्व विकास के आयु-सापक्ष परिवतनो की ओर उस रीति से मुडेंगे जिससे हम उन्हे 1980 के दशको म देखेंगे।

"किसी समय एक कहावत थी कि बालक केवल जीवित रहने की तैयारी कर रहे है। किन्तु जो बचपन मे सजीव नही रहा है वह जीवन मे कठिनाई से ही सफल होगा।"

—एस० मर्शाक

अध्याय 3

बाल्यावस्था

सब कुछ बाल्यावस्था से प्रारभ होता है
प्रथम रोदन
"सक्रियताकरण समष्टि"
सर्वोत्तम जिसे बालक खिलौने के साथ कर सकता है
बालक के जीवन मे खेलो की भूमिका
बालक सीखने के लिए ही सीखता है

सब कुछ बाल्यावस्था से प्रारभ होता है

मानव जीवन बाल्यावस्था से प्रारभ होता है और उस जीवन का अध्ययन भी वही पालन करता है। आज बाल मनोविज्ञान आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान के अनुसधान का दस मे से नौ भाग प्रस्तुत करता है। यह महान सभावनाएँ लिये हुए है और अनुसधान की सूत्रीकरण एव परीक्षण प्रणालियो और विभिन्न अवधारणाओ के लिए अवसर प्रदान करता है। यह सबसे अधिक साहसिक परिकल्पनाओ, अनुमानो और सन्देहो के लिए विश्रान्ति स्थल है।

इसके अतिरिक्त, एक लेखक, जिसने मानव जीवन की अवस्थाओ के सम्पूर्ण विस्तार पर विचार करने का निश्चय कर लिया है, अपने आपको एक कठिन स्थिति मे पाता है। यह असमजस कि उसे सकल्प करना चाहिए या नही, साधारण है और फिर भी अपेक्षाकृत 'कठोर' है। एक ओर, आधुनिक विज्ञान मे आधार सामग्री की प्रचुरता और बाल मनोविज्ञान के प्रश्नो से सम्बन्धित निष्कर्षो का विस्तृत स्वरूप ऐसा है कि यदि हम इसका अनुसरण करते तो यह हमारे व्यक्तित्व विकास की अन्य सभी अवस्थाओ के तुलनात्मक विश्लेषण के बडे भाग को अनुपात हीनता से घेर लेता। दूसरी ओर, बाल-मनोविज्ञान के अति सक्षिप्त सर्वेक्षण मे कोई विलोपन अपरिहार्य रूप से ऐसी क्षति के परिचायक होते हैं जो समस्त प्रस्तुतियो से सम्बन्धित होते हैं क्योकि सब कुछ बाल्यावस्था से प्रारभ होता है। और यदि *कोई आवश्यक तत्व का लोप कर देता है तो उत्तरवर्ती प्रतिपादन* मे उसके लिए स्थान प्राप्त करना कठिन होता है।

प्रस्तुत विवेचन बालको के मनोवैज्ञानिक विकास की अवस्थाओ की उस विश्लेषणात्मक योजना पर आधारित है जो सोवियत मनोविज्ञान मे अपनाई जा चुकी है। वस्तुत यह सोवियत मनोविज्ञानवेत्ताओ (लिडिया बोजहोविच, पवेल ब्लॉन्स्की लेव विगात्स्की, वेमिली डेवीडोव, अलेक्जेण्डर जेपोरोज हैटस, अलेक्सी लिओन्तीव, माया लिसिना, निकोलाई पोद्दियाकोव लिआ स्लेविना और अन्य) की कई पीढ़ियो के अनुसधानो का सामान्यीकरण करता है। सक्रियता के प्रमुख प्रकारो की अनुरूपता और सयोजित नवीन मनोवैज्ञानिक सघटनो पर आधारित उस योजना की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है।

शिशुता (जन्म से लेकर एक वर्ष की आयु तक) बालक और वयस्कों के बीच सीधे भावात्मक सम्प्रेषण के द्वारा अभिलक्षित होती है। इस स्तर पर बालकों और वयस्कों के बीच सम्पर्क और पारस्परिक सम्बन्धों की आवश्यकता है। यह संयुक्त-विभाजित गतिविधि तब सभी उत्तरवर्ती व्यक्तित्व विकास और बालक के सामाजिक अनुभव के आत्मसात्करण के आवश्यक रूप का आधार बन जाती है।

प्रारंभिक बाल्यकाल (1 और 3 वर्ष की आयु के बीच) में बालक के व्यक्तित्व का विकास वस्तु-हस्त-कौशल की क्रियाओं पर बल देता है। इस समय यह होता है कि बालक अपने वातावरण की वस्तुओं का उपयोग करते हुए सामाजिक रूप में विकसित प्रणालियों को आत्मसात् करते हैं।

विद्यालय-पूर्व आयु (3 से 7 वर्ष की आयु के बीच) के बालक पाठ अदा करने के शौकीन होते हैं। यह बालक को विशिष्ट सामाजिक कार्यों के अस्तित्व और व्यवहार के मानदण्डों का पता लगाने की अनुमति देता है। अपने स्वयं के कार्यों का इनके साथ समन्वय करने में इन कार्यों और मानदण्डों के द्वारा निर्दिष्ट होने की आवश्यकता का विकास होता है। इसके अतिरिक्त, भूमिका अदा करना कल्पना और प्रतीकात्मक प्रतिस्थापन के लिए एक ऐसी क्षमता का विकास करता है जो शिक्षा की उत्तरवर्ती प्रक्रिया में एक मौलिक भूमिका निभाती है।

प्रारंभिक विद्यालय वर्ष, जो 7 वर्ष की आयु से लेकर 10 वर्ष की आयु तक बढ़ते हैं, सम्पूर्ण रूप से सीखने की क्रियाओं से जुड़े रहते हैं। उस प्रक्रिया के दौरान बालक यथार्थ से एक सैद्धांतिक सम्बन्ध, वस्तुओं के परावर्तन के सैद्धान्तिक (आदर्श) रूपों के अनुकूल बनने की योग्यता और अन्तर्व्यक्तिगत पारस्परिक क्रियाओं और, विशिष्ट रूप से अमूर्त अवधारणाओं के साथ क्रियाशील होने की योग्यता का विकास करना प्रारंभ करते हैं।

तब यह वर्तमान सिद्धान्तों द्वारा सुझाये गये बालकों के व्यक्तित्व विकास के आयु-सापेक्ष परिवर्तनों की आधारभूत प्रतिमा है।

इस प्रकार हमने बाल मनोविज्ञान से सम्बन्धित अनुसंधानों को संगठित करने के लिए अपनी सिद्धान्तों की सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत की है। प्रस्तुत अध्याय में हमने बाल्यावस्था के दौरान व्यक्तित्व विकास के प्रधान तत्वों को प्रकट करने का प्रयास किया है। उन नियमों, जो व्यक्तित्व विकास को नियन्त्रित करते हैं, के (पूर्व में सूत्रबद्ध) ऐतिहासिक सैद्धान्तिक दृष्टिकोण के सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए, हम उस विकास पर हुए बाल मनोविज्ञान सम्बन्धी अध्ययनों के अनुसंधानों पर आधारित सोवियत मनोविज्ञानवेत्ताओं के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करेंगे। हम जानते हैं कि मनोवैज्ञानिक विकास कार्यों के दौरान अग्रसर होता है। किन्तु यथार्थ में कैसे ?

प्रथम रोदन

जिस किसी ने उस प्रथम रोदन को सुना है, वह उसे कभी नही भूलेगा एक मानव शिशु ने ससार मे प्रवेश कर लिया है। इस सम्बन्ध मे एक नवजात शिशु सारी सजीव प्रकृति मे प्राप्त मौन अनुरूपता का उल्लघन करता है, अन्य कोई प्राणी जैसे ही प्रकट होता है तो अपनी स्वय की आवाज से अपने जीवन के इद गिर्द की आवाजो के साधारण क्षेत्र को भग नही करता। बिल्ली के बच्चे और पिल्ले और इनके अतिरिक्त 'भारी भरकम' हाथी और दरियाई घोडे भी जब पैदा होते हैं तो मौन होते है। केवल मानव शिशु ही रोदन करते हैं।

क्यो?

क्या यह इस कारण नही है कि माता का गर्भस्थान छोडने के बाद वे अधकार, प्रकाश और अपने इद गिर्द की आवाजो की अस्तव्यस्तता, अपने फेफडो के कोमल ऊतको मे प्रवेश करने वाली उष्ण वायु के द्वारा चकित हो जाते हैं। सचमुच मानव प्राणी का गर्भाशय के भीतर से गर्भाशय के बाहर के अस्तित्व तक सक्रमण क्रमिक नही होता—यह एक विस्फोट, एक छलाँग, एक क्रान्ति को प्रस्तुत करता है। प्रकृति और वयस्क मानव के जन्म का रूखेपन से स्वागत करते हैं। प्रसूति विशेषज्ञ उसे उसके पाँवो से पकड लेता है और उस नाभि रज्जु को काट देता है जिसने इतने लम्बे समय तक उसके अस्तित्व को बनाये रखने का काम किया था। बालक को उन कम्बलो मे लपेटा जाता है जो उसकी कोमल त्वचा के लिए कठोर होते है, और उसे एक ऐसी उष्ण वायु के प्रवाह मे सास खीचनी पडती है, जिसे वह अपने फेफडो से बाहर निकालने का प्रयास करता है। सक्षेप मे, उसका रोदन उस सबके विरुद्ध एक विद्रोह होता है जो उसके जन्म की प्रक्रिया से जुडा होता है। किन्तु, क्या यही अन्तिम होता है?

अब सबसे अधिक कठिन घटनाएँ उसका पीछा करती हैं। अपने स्वय के जन्म के आयास के द्वारा पहले ही से परिश्रान्त और लगभग जडता की दशा मे वह सो जाता है और उस नयी शक्ति को जुटाता है जिसकी उसे अगले कदम पर आवश्यकता होगी। यद्यपि उसका जन्म हो चुका होता है फिर भी वह अभी तक नही जानता कि उसका शरीर क्रियाशीलता मे आ गया है कि अब उसकी माता के अवयवो की सहायता से वचित उसके जीवनाधार रचनातन्त्र अस्तित्व के स्वायत्त रूप को सुनिश्चित करने के लिए कठोर परिश्रम कर रहे है। वह यह नही जानता कि किसी मानव प्राणी के जन्म से सलग्न सामान्य कर्मकाण्ड अपनी प्रक्रिया ग्रहण कर रहा है कि उसकी माता सो गयी है कि उसका परम प्रसन्न पिता मित्रो की बधाइयाँ स्वीकार कर रहा है, कि टलीफोन की घण्टियाँ बज रही हैं और उसके

जन्म को उदघाटित करने वाले तार नजदीकी सम्बन्धियो को भेजे जा रहे है। वह यह नही जानता कि सम्भवत अभी तक उसका कोई नाम रखा गया हो जो शायद बहुत लम्बे समय पहले ही प्रस्तुत कर दिया गया था। वह यह नही जानता कि उसका जन्म अभी तक सरकारी आँकडो मे अंकित हो चुका है और उसके लिए अभी तक सामाजिक जीवन—नर्सरी, किंडरगार्टन, विद्यालय और उत्पादन—मे स्थान तैयार किया जा चुका है। अर्थव्यवस्था की उन विभिन्न शाखाओ मे जो उसके श्रम पर विश्वास करती है, वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थानो मे जो उसकी प्रतिभा और सृजनात्मक योग्यताओ पर विश्वास करते है। उसकी प्रतीक्षा की जाती है। अभी तक वह यह नही जानता कि उसने हमारे लम्बे इतिहास, आधुनिक अन्तर्विरोधो और पारिस्थितिकीय संकटो वाले संसार मे प्रवेश कर लिया है। वह गहरी नींद मे और शान्ति से सो रहा है।

इस प्रकार एक मानव-प्राणी का जन्म हो चुका है। उसके विषय मे किसी अन्य प्राणी की भ्रान्ति नही होगी। किन्तु क्या वह (अपनी जाति का प्रतिनिधि) एक यथार्थ मानव व्यक्ति है? अथवा सम्भवत एक व्यक्तित्व (क्योकि जबकि वह अपने पिता या माता से समता रखता है तो भी वह अन्य किसी से भी असमान भी और अद्वितीय भी है)?

ये आभास रूप मे निर्दोष प्रश्न हमे उन उत्तेजनापूर्ण विवादो के मध्य तक प्रत्यक्ष रूप मे ले जाते है जिनमे शब्द, या अधिक सही रूप मे, शब्दावली और अवधारणाएँ एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वैज्ञानिक ज्ञान का कार्य कुछ विषयो को समझना अर्थात् उन्हे अवधारणाओ की शब्दावली मे अभिव्यक्त करने मे निहित है। अत सही परिभाषाओ तक पहुँचने का भी महत्त्व है।

आज अनेक मनोविज्ञानवेत्ता बालक के सम्बन्ध मे लाक के इस विचार का समर्थन नही करते कि बालक एक टैबुला रासा (साफ स्लेट) है जिस पर आवश्यक विषय-वस्तु शिक्षा और प्रशिक्षण के द्वारा अंकित की जाती है। आज आनुवंशिकता (प्रजाति प्रकार) की निर्णायक भूमिका मे विश्वास अधिक प्रचलित है। इस विचार के प्रतिपादक इस बात का दावा करते है कि नवजात बालक के प्रजाति प्रकार मे कूट किये हुए रूप मे वे सभी प्रमुख व्यक्तित्व विशेषताएँ अन्तर्निष्ट है जो कालान्तर मे परिपक्व होती है और सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के रूप मे आ जाती है। आज ये दो चरम स्थितियाँ, जो बालक के विकास के दो कारको—वातावरण सम्बन्धी कारक और आनुवंशिकता सम्बन्धी कारक—के संघर्ष को अभिव्यक्त करती है, सामान्यतया सह-अस्तित्व मे होती है और एक-दूसरे की पूरक बनती है। अपेक्षाकृत अधिक नही, तो भी एक अनुसंधानकर्ता के सम्मुख आने वाला एकमात्र कार्य जहाँ मुख्य विशेषताएँ उदभूत होती हैं, अर्थात् जो आनुवंशिकता से उत्पन्न होती हैं और जो शिक्षा और प्रशिक्षण से उत्पन्न होती है, उन्हे वही स्थापित करना है।

विभिन्न दर्शन-ग्रहणवाद, जो एस विषयों में उत्पन्न हो जाता है, और भिन्न भिन्न प्रकार के तर्कों व सम्मिश्रण से बचने के लिए मनुष्य का विशिष्ट कारकों की पारस्परिक क्रिया का उत्पादन और परिणाम समझने के प्रयासों का सर्वथा छोड़ना और इसके बदले में स्वयं व्यक्तिवृत्त में व्यक्तित्व के आत्म विकास को ढूंढना सर्वोत्तम है। व्यक्तित्व सम्बन्धी उस अवधारणा, जिससे सक्रियता सिद्धान्त उत्पन्न होता है, की कुछ और अधिक सही रूप में परिभाषा करना आवश्यक होगा।

व्यक्तित्व किस बिन्दु से प्रारम्भ होता है? हमारा उत्तर बहुत स्पष्ट है—जन्म के क्षण से, क्योंकि व्यक्तित्व यथार्थ रूप में वही है जिसे मनुष्य अपने जन्म के क्षण पर उत्तराधिकार में पाता है। जन्म लेने पर मनुष्य संसार में केवल मनो शारीरिक रचना-तन्त्र, जो उसे अपने माता पिता से विरासत में, इस प्रकार वातावरण के साथ शारीरिक पारस्परिक क्रिया की प्रक्रिया में प्रवेश करने पर मिला है, को ही नहीं लाता, वह केवल एक विशिष्ट सामाजिक उत्पत्ति और स्थिति को ही विरासत में नहीं पाता वह अपने स्वयं के व्यक्तित्व का भी विरासत में पाता है और उसी कारण के हेतु ही ऐतिहासिक वास्तविकता में प्रवेश करता है।[1] मनुष्य अपने जीवन के आदर्शों के समीप (यद्यपि उनकी अमूर्त सार्वभौमिक परिभाषा में) इतना कभी नहीं होता और अप्रतिबद्ध विकास के लिए अपने जन्म के क्षण के समय की अपेक्षा और कभी ज्यादा बड़ी सम्भावनाओं से सम्पन्न नहीं होता।

उस सम्बन्ध में हेगल की बाल्यावस्था सम्बन्धी अवधारणा को याद करना रुचिकर है बाल्यावस्था "व्यक्ति के संसार और उसके स्वयं के और वातावरण दोनों के बीच एक प्राकृतिक समस्वरता अन्तर्विरोधों से मुक्त एक प्रारम्भ का समय होता है।"[2]

यह निर्दोषिता की और आत्मा और शरीर के बीच के सामंजस्य की स्थिति है, क्योंकि आत्मा अभी तक जाग्रत नहीं हुई है। "यह व्यक्ति की अपनी जाति के साथ और सामान्यतया संसार के साथ एक निकटस्थ अन अनात्मिक, विशुद्ध

---

1 देखिये, एफ० मिखाइलाव, 'मारल अपब्रिंगिंग एण्ड दी अपब्रिंगिंग आव पर्सनेलिटी', इन साइकोलाजीचेस्किय प्राब्लेमी नावस्पेतेनीयो वोस्पितानिया देती (साइकालाजिकल प्राब्लम्स ऑव मॉरल अपब्रिंगिंग ऑव चिल्ड्रन) मास्को, दी यू एस एस आर एकडेमी आव पेडेगोगिकल साइंसेज, 1977, पृ० 6 11

2 जी० डब्लू० एफ० हेगेल सिस्टम डेर फिलासफे ड्रिटर टील, स्टुटगार्ट, 1929, पृ० 97

प्राकृतिक एकता होती है।"[1]

बाल्यावस्था की अवधारणा प्रस्तुत करने के प्रयास के लिए गम्भीर सतकता उचित है। वस्तुत आज शिक्षा शास्त्र और मनोविज्ञान बाल्यावस्था एव बालक की एक निश्चित अवधारणा, जिसकी व्याख्या एक नकारात्मक परिभाषा (कोई ऐसा जो अभी वयस्क नही हुआ है) के रूप मे परिवर्तित हो गयी है और अधिक से-अधिक बालक के जीवन और वयस्क के जीवन के बीच के गुणात्मक अन्तर की मान्यता और मानव विकास मे बाल्यकाल की भूमिका की मान्यता पर आधारित है, पर निभर करते है। आज हम बच्चा के सम्बन्ध मे जितना हेगेल जानते थे उससे कही अधिक जानते है किन्तु यह इस तथ्य के महत्त्व को नही घटा सकता कि हम अपने ज्ञान की विषय वस्तु की परिभाषा विशुद्ध प्रयोगाश्रित रीति के अतिरिक्त और किसी अन्य रीति से नही कर सकते। इस सम्बन्ध की सजगता मे (आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान के एक भाग के रूप मे) आधुनिक बाल मनोविज्ञान की एक मूलभूत सैद्धान्तिक समस्या का प्रतिपादन अन्तर्निहित है।

बालक का अस्तित्व के साथ तादात्म्य, और जिसे हेगेल प्रस्थापित करते है, उसकी मानव जाति के साथ निकटस्थ एकता भी, उनके सिद्धान्त मे, (आत्म-विकास) व्यक्तित्व विकास के लिए अन्तर के बिन्दु के रूप मे, काम करती है। इस कारण, हेगेल के अनुसार, व्यक्तित्व विकास का अन्तिम लक्ष्य जाति के साथ एकता पुनर्स्थापित करना और जाति के ऐतिहासिक, सास्कृतिक एव सामाजिक जीवन के एक व्यक्ति के रूप मे स्वय को परिभाषित करना है। वस्तुत, इस प्रकार, एक *बालक के अधिकार मे जो सब कुछ है, वह है एक प्रत्यक्ष व्यक्तित्व*, किन्तु सामान्य विकास की केवल एक सार्वभौमिक सम्भावना के रूप मे, जिसे वयस्क कष्ट के साथ प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, सिद्धान्त रूप मे उसमे प्रत्येक वस्तु को प्राप्त करने की क्षमता है (वह अस्तित्व के समतुल्य है) किन्तु उसने अभी तक कुछ भी प्राप्त नही किया है, तो भी यदि यह मान लिया जाय तो उसका व्यक्तित्व 'एक शुद्ध व्यक्तित्व है।

यह बात मौलिक महत्व की है। क्योंकि विकास के सिद्धान्त के अनुसार कि जो विकसित होता है, उसमें पहले से ही अपन आग के विकास के तत्व प्रारम्भ ही से अन्तर्विष्ट होने चाहिए। इस प्रकार एक बालक एक ऐसा 'शुद्ध व्यक्तित्व होता है' अपने विकास के दौरान स्वय को विभिन्नता की एकता मे एक वयक्तिकता के रूप मे, एक अद्वितीय प्राणी के रूप म, एक विकासशील व्यक्तित्व के रूप मे साकार कर देता है। आगे के विवेचन म व्यक्तित्व (विशुद्ध व्यक्तित्व' और 'विकसित व्यक्तित्व) की इस प्रकार की 'द्विविध' परिभाषा और अधिक स्पष्ट हो जायेगी,

---

1 वही, पृ० 97

क्योंकि हम व्यक्तित्व-विकास को एक रेखीय गति, सचयन और वृद्धि के रूप म नही किन्तु परिवतन की उस गुणात्मक प्रक्रिया, जिसमे व्यक्ति की जाति के साथ तादात्मता अपने परिवतनो मे वयक्तिकता और विरोधो के माध्यम से विकास के तत्व के द्वारा व्यवहृत होती है।

हम हेगल के बालक क विषय मे व्यक्तियो और जातियो के मौलिक रूप से अविभेदीकृत साधारण तादात्म्य को परम महत्वपूण समझते है और इसे व्यक्तित्व की प्रारम्भिक (सरलतम) अवधारणा के रूप मे देखते है। इससे अवैयक्तिक विषय निष्ठता से व्यक्तित्व का अनुमान लगाने से, कालान्तर मे, बचना सम्भव हो जाता है और इस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व का एसे वस्तुनिष्ठ सम्बधो की एक निश्चित समष्टि, जिसके माध्यम से इसका विकास होता है किन्तु जिसके रूप में इसका परिवतन नही होता, के रूप मे परिणत करने को टालना भी सम्भव हो जाता है। यह व्यक्तित्व विकास की बुनियादी दिशा, यथा, जातीय मानदण्डो के साथ तादात्मता की पुनर्स्थापना, अर्थात एतिहासिक, सास्कृतिक एव सामाजिक सक्रियता के विषय का आविर्भाव, की भी परिभाषा करता है। तदनुसार व्यक्तित्व के और दूसरे रूपा तरणो पर, उस विकास के तत्वो के रूप मे, जिसमे वे भी सम्मिलित हैं जो व्यक्तिगत क्रियाओ को जातिगत क्रियाओ के पार्थक्य (विभेद के माध्यम मे व्यक्तित्व का विकास) से जुडे हुए है, विचार किया जाएगा।

किन्तु केवल व्यक्ति और जाति की प्रारभिक तदनुरूपता से सम्बधित विचार पर ही नही किन्तु व्यक्तीयन की आर सक्रमण पर भी बल देना महत्वपूण है। इस कारण व्यक्तीयन सक्रियता के सावभौम उपायो का प्राप्त करने की वह सामान्य प्रक्रिया है जिस आनुवशिकता से प्राप्त सक्रियता के प्रकारो का सिद्धान्त व्यक्तित्व परिवतनो के आधार के रूप म देखता है। इस प्रकार के सदभ मे यह स्पष्ट है यदि कोई इन दो तत्वो (प्रारभिक तदनुरूपता और उत्तरवर्ती व्यक्तीयन) को सम्बद्ध नही करता तो वे हम विभिन्न वस्तुआ के रूप मे दिखाई देगे और उनका वही अकेलापन सभी तकपूण अथ को खो देगा व्यक्ति और जाति की प्रारभिक तदनुरूपता तब एक खोखला अमूर्तीकरण हो जायेगा जबकि उनका व्यक्तीयन उस विशिष्ट वस्तु-अभिमुखता के अधीन हो जायेगा जो किसी व्यक्ति के जीवन की विशेष अवस्थाओ मे उसी महत्वपूण सक्रियता के रूप म व्याप्त होती है।

इस प्रकार हम इस निष्कष पर पहुँचेगे कि मूल रूप मे, व्यक्तित्व विकास व्यक्ति और जाति की एक सरल अपृथक तदनुरूपता ('व्यक्तित्व') से उस व्यक्तीयन, जो साधारण आत्म ('व्यक्ति') की अद्वितीयता को स्थापित करता है, तक सक्रमण है।

'सक्रियताकरण समष्टि'

कोई मानव बालक वयस्कों के बिना जीवित नही रह सकता। पशुओ के असदृश, मानव बालक बाहरी सहायता के बिना स्वत ही ससार मे जीवित रहने योग्य नही होते—उनमे नैसर्गिक प्रवृत्तियो का वह समूह विशेष नही होता जो पशुओ के लिए जीवित रहना सम्भव बनाता है। बच्चो को देखभाल की आवश्यकता होती है—उन्हे भोजन कराना पडता है, कपडे पहनाने पडते हैं और उनकी परवरिश करनी पडती है। अपने पैतृक कर्तव्यो को पूरा करने मे मनुष्यो को बच्चे के विकास को भी सावधानी से समझना है—कम-से-कम यह सतक माता पिताओ के सम्बन्ध मे तो सत्य है। इन अवलोकनो ने व्यक्तित्व विकास के प्रारभिक काल से सम्बन्धित अनेक आवश्यक अनुसधान प्रस्तुत किये है। इस प्रकार का प्रथम अध्ययन चार्ल्स डार्विन द्वारा 1881 मे प्रकाशित किया गया, जिन्होने अपने स्वय के पुत्र के विकास के सम्बन्ध म किये गये प्रेक्षण का विवेचन किया। अपने स्वय के बच्चो के सम्बन्ध म वसे ही अध्ययन विल्हम प्रेयर, नादज्दा लेडीजिना-कॉट्स, नटालिया मैंचिस्काया और वालेरिया मुखिना के द्वारा डायरियो म सुरक्षित रखे गये थे। उन सब मे एक सामान्य सिद्धात अन्तर्विष्ट है और उदाहरणाथ वह है माता-पिता और बालको के बीच के सीधे सम्पर्क की भूमिका। इसके अतिरिक्त, यहाँ वैज्ञानिक विश्लेषण की विशिष्ट प्रणाली, तथा, विपरीतो का नियम, विशेषकर जब वह इस प्रकार है कि शिशुओ के व्यक्तित्व-विकास को नियत्रित करने वाले सबसे अधिक आवश्यक सिद्धात स्थापित कर दिये गये हो, पर निभर करने के आधार हैं।

हमने एक आदर्श स्थिति, यथा, वह स्थिति जहाँ एक बालक अपने माता पिता और निकटतम सम्बन्धियो की निगरानी प्राप्त करता है, पर विचार करते हुए प्रारभ किया। दुर्भाग्य से, ऐसी बात सदा नही होती। आज ऐसे बहुत से बालक है जो पतृक देखभाल से वचित होते हैं। ऐसे मामले भी होते है जहाँ कोई माता उस बच्चे को त्याग देती है जिसे वह प्रसूति घर मे नही चाहती। निस्सन्देह, ऐसे बच्चो का भाग्य आज ऐसा भयकर नही है जैसा प्राचीनकाल म था जब परित्यक्त बच्चो के भाग्य मे नष्ट होना लिखा था। राज्य के द्वारा ऐसी देखभाल प्रदान की जाती है जिससे बच्चो को बाल-केन्द्र म स्थान मिलता है। सवप्रथम यह दिखाई दे सकता है कि ऐसे केन्द्र मे प्रविष्ट किये जाने पर बालक को वह सब मिलता है जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण है उदाहरणाथ वयस्को की ओर से देखभाल, उसे कपडे पहनाये जाते है और भोजन करवाया जाता है। फिर भी, फिलहाल, बाल-सरक्षण केन्द्रो म बालको की मृत्यु-दर परिवारो की अपेक्षा वास्तविक रूप म अधिक थी। स्पष्टीकरण क्या है? असावधानी? कुपोषण? अनिवाय आवश्यकताओ की पूर्ति

का अभाव ? यह स्पष्ट हो गया है कि य कारण नहीं थे। ऐसे केंद्रों म बच्चा का उन्हीं तरीकों स भरण पोषण किया जाता है जो उनसे ज्यादा भिन्न नहीं होत जो परिवारों मे रहत है। किन्तु वे मुस्कराते क्यों नहीं है और उनमे मन्दता का विकास क्यों हुआ और वे सहानुभूति रहित क्यो बने रहे ? इसका उत्तर एक विशुद्ध प्रयागाश्रित रूप मे पाया गया। विभिन्न अनुसधानकर्ताओ ने भिन्न भिन्न समया पर (सर्वोपरि हम सोवियत अनुसधानकर्ता निकोलाई शलोवेनोव का उल्लख करना चाहिए। यह उल्लेख किया गया है कि यदि कतव्यरत धात्री बच्चे पर अपक्षाकृत अधिक मात्रा मे ध्यान दें और वस्तुत उसे क्षण भर के लिए भी न छोडें और स्थिति मुधर जाये। वाधक लक्षण अदश्य हो जाएँ। बच्चा मुस्कराना प्रारभ कर देता है और सक्रिय हो जाता है। कुछ विशेप रूप से कठिन मामलो म एक सरल किन्तु वहुत ही प्रभावशील 'औपधि' सहायक हुई। कायरत धात्री बालक को अपन शरीर से गम करत हुए, और यह भी मान लिया जाये कि उसके साथ एक होकर, अपने साथ ले जाती थी। यह स्पष्ट हो गया कि एक नवजात शिशु सबसे अधिक अपर्याप्त सम्पक क कारण कष्ट पाता है और परिणामस्वरूप एक ऐसी बीमारी हो जाती है जिसे मनोविज्ञानवेत्ताओ न 'चिकित्सालयवाद' कहा है। यह सम्भव था कि इस बीमारी का इलाज केवल एक ही तरीके स, अर्थात्, मानव सम्पक की भारी मात्रा के द्वारा किया जा सकता था। फिर भी, हम यह जोड दें कि कुछ बढे हुए मामलो म यह भी सहायता नहीं करता था, बीमारी बहुत दूर तक बढी हुई होती थी और बालक या तो नष्ट हो जाता था या अपन विकास म बुरी तरह स पिछड जाता था—शैशव में लगा हुआ घाव सारे जीवन के लिए अपना चिह्न छोड देता था।

व्यक्ति के प्रारभिक मनोवैज्ञानिक विकास म मानव-सम्पक की आधारभूत भूमिका के अन्वेषण ने लव विगोत्स्की द्वारा प्रस्तुत सैद्धांतिक अवधारणा को तत्वत पुष्ट कर दिया। विगोत्स्की ने अपन सिद्धान्त को इस प्रस्थापना पर आधारित किया कि बालक 'प्रारभ ही से ऐसा सामाजिक प्राणी होता है जो अन्य व्यक्तियो के बीच जीवित रहता है और विकसित होता है। किसी बालक के आन्तरिक ससार को समझने का प्रयत्न करन और उस माग को, जिसम वह अपनी माता के साथ अभेद्य अनाकार दशा म रहने वाले एकत्व से प्रारम्भ करके स्वयं को बाह्य ससार स पृथक करता है, स्थापित करन क लिए, यथाथ म यह स्पष्ट करना महत्वपूर्ण है कि वह क्या है जो माता (अथवा अन्य वयस्क) तथा बालक की सयुक्त सक्रियता म स्थान प्राप्त करता है। सतह पर हम उस सम्पर्क म अनेक साधारण कार्य देखते हैं वयस्क की ओर स य वाचिक ध्वनियाँ और शब्द, चेहरे की अभिव्यक्ति एव भगिमाएँ होती हैं बालक की ओर स य पूर्ववाचिक उच्चारण अगा और शरीर की असमन्वित गतियाँ और मुस्कानें होती हैं। किन्तु यह सक्रियता

जिसे अनुसधानकर्त्ताओ ने प्रत्यक्ष, भावात्मक सम्पक, जो शैशव म एक प्रमुख गति विधि है, बताया है, व्यक्ति के बुनियादी मनोवैज्ञानिक विकास उत्पन्न करती है। इसका परिणाम 'सक्रियताकरण समष्टि' (बालक के जीवन के छठे सप्ताह के समय के लगभग) का आविर्भाव है। यह शब्द 1920 के दशका म व्यक्तिवत्त की एक अवस्था विशेष म बालको की उन क्रियाओ, जो उन्ह आनन्दित करती है, के अनुभव करन के व्यवहार को व्यक्त करने के लिए निकोलाई शैलोवेनोव द्वारा सन्निविष्ट किया गया था। मनोविज्ञानवत्ताओ ने इस बात पर ध्यान दिया है कि बालक जीवन के दूसरे महीन के दौरान सक्रिय होने लगता है और मुस्काना, पाँवो और हाथा की असमन्वित गतिया, और सरल एकाक्षरीय ध्वनियो के माध्यम से वयस्को का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न करता है। यह आश्चयजनक प्रति क्रिया, 'सक्रियताकरण समष्टि' अनुसधानकर्त्ताओ द्वारा व्यक्तित्व-विकास के सामान्य दौर के एक महत्वपूण सूचक के रूप म समझी जाती है। मनोवैज्ञानिक विकास के नकारात्मक प्रभाव के रूप म चिकित्सालयवाद उस आयु के समय स्वय को 'सक्रियताकरण समष्टि' के विलम्बन, अपने दुबल प्रकटीकरण और इसके अतिरिक्त अपनी सम्पूण अनुपस्थिति को अभिव्यक्त करता है। उस चिकित्सालय-वाद को पराभूत करन क लिए, जो सयोगवश, उन बालका मे भी, जो घर पर रहत है, प्रकट हो सकता है यदि माता और पिता असावधान होते हैं, बालक को एक विषय के रूप मे और एक व्यक्ति के रूप मे देखन से सम्बधित सिद्धात इस प्रकार सूत्रबद्ध किया गया, शिशुओ का 'पालन-पोषण' होना चाहिए, न कि केवल 'देख भाल । इन सिद्धाता के अन्तरतम म बालको और उनकी माताआ के बीच का सीधा सम्पक स्थित होता है।

इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि ये अध्ययन तात्विक रूप से असकल्पित चेष्टाशास्त्र से प्रभावित थे और 'सक्रियताकरण समष्टि' को प्रमुखतया बालक की वयस्का के कार्यों के सम्बध मे प्रतिक्रिया के रूप में समझा गया। समसामयिक अनुसधानकर्ताओ, विशेषकर माया लिसिना और सोफिया मेस्चेरियाकोवा— ज़ेमो जिलनाया, ने यह बतात हुए कि सक्रियताकरण समष्टि वस्तुत बालक की ओर स प्रतिक्रिया की अपक्षा काय अधिक है, उस दृष्टिकोण को तात्विक रूप से परिवर्तित कर दिया। माया लिसिना के सवेदी प्रयोगा ने यह प्रदर्शित किया है कि उन मामलो मे, जिनमे वयस्क सम्प्रेषण म आवश्यकता से अधिक सक्रिय हैं और अपनी सतकता और सदिच्छा को चुस्ती से अभिव्यक्त करते हैं, बालक कम चुस्त और अधिक सकेन्द्रित हो जात है। और इसके विपरीत, जब अपनी सतकता मे अधिक परिपूण नही होते बालक अधिक चुस्ती स व्यवहार करते है। सक्षेप मे वयस्कों का काय सम्पक के द्वारा बालका म सक्रियता अभिप्रेरित करना है। अनुभवी मनोविज्ञानवेत्ता और अनुभूतिक्षम माताएँ भली प्रकार जानती है कि उन

सीमाओ का, जिनके आग किसी को अपनी स्वय की गतिविधिया का बन्द कर देना चाहिए और बालका को स्वय को अभिव्यक्त करने और उस कोमल सूत्र को बनाये रखन म, जो मानव सम्पक के एक नैसर्गिक भावात्मक ढग के माध्यम से जोडता है एक बढती हुई भूमिका प्राप्त करने की अनुमति द दना चाहिए, वम बोध होता है। सक्षेप मे, जसे सम्पूण शिक्षा म साधारणत, वसे ही प्रत्यक्ष भावात्मक सपक म भी बच्चे की सक्रियता के बदले म अपनी स्वय की सक्रियता को स्थापित न करना और उसे 'स्वायत्त रूप से' अनुगमन करने की अनुमति देकर आत्म विकास के लिए एक सभावना प्रदान करना महत्वपूण है।

जब किसी बालक का विकास सामाय रूप से अग्रसर होता है तो प्रत्यक्ष भावात्मक सपक, यथा, बालक और ससार के बीच प्रभावशाली व्यक्तिगत सबधो की व्यवस्था, 'सदिच्छा और सतकता के लिए आवश्यकता (माया लिसिना) और 'प्रभावो के लिए आवश्यकता' (लिडिया बोजहोविच) के भीतर एक अत्यन्त महत्व पूण नवीन मनोवैज्ञानिक रूपातरण विकसित होता है। यह बहद रूप से एसे आधार पर होता है कि आगे का व्यक्तित्व विकास स्थान प्राप्त कर लेता है।

सक्षेप मे, शशव म व्यक्तित्व विकास के पहलुओ की बहुलता से वहिर्वेशन करत हुए, हमने उनकी उस सम्पूण एकता को दिखाने का प्रयत्न किया है, जो, सोवियत मनोविज्ञानवेत्ताओ के अनुसार बालको और वयस्को के बीच प्रत्यक्ष भावात्मक सपक के क्षेत्र मे अभिव्यक्त किया जाता है और जिसे 'सक्रियताकरण समष्टि' मे मूतरूप दिया जाता है। इस विषय म, किसी बालक का विकास ठोस होता है। वयस्क उस समय प्रसन्न होते है जसे ही बच्चा स्वय उस समय होता है जब वह अपन स्वय के विकास के स्पन्द (सब कुछ सामान्य रूप मे अग्रसर हो रहा है) का अविरत रूप से बोध करता है और मुस्करा देता है। उसके बिस्तर पर वधमान सख्या म खिलौने और झुनझुने दिखाई देते हैं और बालक उनके प्रति और अधिक ध्यान देन लगता है। अब उसन अपना सिर पकडना सीख लिया है और शायद अन्य भोजन, जो धीरे धीरे उसकी मा के दूध का स्थान लेने लगते हैं, लने का प्रयत्न करता है उसकी गतियाँ वधमान रूप म सक्रिय और विश्वसनीय होती है वह घुटनो के बल चलना प्रारम्भ कर लेता है और खेलने के बाडे की छडो को पकडकर स्वय को अपनी भुजाओ की सहायता से सँभालत हुए खड होने को है शीघ्र ही वह चलने लगेगा। फिर भी यह हो इसमे पहले वह ऐसी किसी बात का अनुभव करगा जो आश्चयजनक और रहस्यमय, नवीन और असाधारण, अर्थात्, मनोवैज्ञानिक विकास का प्रथम सकट, होता है।

सर्वोत्तम जिसे बालक खिलौने के साथ कर सकता है

हगल ने बहुत ही अनुभूतिक्षमतापूवक उल्लेख किया है कि कोई बच्चा अपन खिलौन के साथ जो सबसे अच्छी बात कर सकता है वह है उसे तोडना। जब सदभ से बाहर निकाल दें तो यह विचार कम-से-कम कहन म तो विचित्र मालूम पडता है। किन्तु हम जानते है कि हेगेल ने विनाश की वकालत नही की थी। हमे इसका स्पष्ट करना चाहिए कि इस कथन से उनका तात्पय क्या था, विशेषकर जब कि माता-पिता प्राय बहुत क्रुद्ध हो जात ह जब वे नवीनतम खिलौना को टूटता हुआ देखत हैं।

एक बार फिर हमे प्रारभ मे ही अर्थात, उस समय से जब यह प्रभास सवप्रथम प्रकट होता है, शुरू करना चाहिए। यह प्राय निम्न प्रकार स घटित होता है। अपन प्रथम वष म (छ महीन और एक वष की आयु के बीच) कुछ समय के लिए एक बालक खिलौनों मे रुचि रखता है किन्तु एक सीमा तक ही, अधिक यथाथ रूप म, उस हद तक कि वह इन खिलौना को एक ऐसे वयस्क के हाथो से प्राप्त कर ले जो उसके ध्यान को इसकी ओर आकर्पित करना चाहता है। यह अपक्षाकृत रूप से एक कठिन काय प्रतीत होता है। माया लिसिना और उनके सहयागियो के द्वारा किय गये प्रयोगा मे यह दखा गया कि खिलौन की सहायता से उसके ध्यान को आकर्पित करने की एक वयस्क की इच्छा का उत्तर देने मे काई बालक स्वय पर ही अपना ध्यान एकाग्र कर लेता है—वह एक क्षण के लिए खिलौन की तरफ दखता है और तब प्रयोग का कार्यान्वित करन वाले व्यक्ति की ओर फिर देखने लगगा। प्रथम वष के अन्त के लगभग कुछ परिवतन होता है। स्वय खिलौना (या किसी वयस्क के हाथ म ठीक वसी ही काई वस्तु) उसम एक बढती हुई रुचि उत्पन्न करने लगती है। *वह इसका अध्ययन करता है और उसे पूणरूपण समझना* चाहता है। इस परिवतन को क्या चीज़ स्पष्ट कर सकती है?

सवप्रथम हमे यह मानना चाहिए कि अब बालक ज्यादा समय तक वह नही रहता जो वह अपन प्रथम वष के प्रारभिक महीनो म था। वह वष भावात्मक रूप स परिपूण घटनाओ से भरा हुआ था और वयस्को और बालक के बडे काय के कारण महत्वपूण था, जिसके परिणामस्वरूप अनक नवीन मनोवैज्ञानिक गुणो का आविर्भाव हुआ और सारपूण अनुभव एकत्र किया गया। अब बोलने के साथ-साथ घुटना के बल चलने और खडे हाने के प्रारभिक प्रयास अभी ही स्थान पा चुके है। सक्षेप म, उन स्वायत्त सक्रियताओ के लिए आधार निर्मित हो चुके है जो वयस्का के कार्यों के साथ हमेशा अधिक लम्बे समय तक प्रत्यक्ष रूप स जुडे हुए नही रहते। जबकि इसके पहले, जो कुछ उसके साथ हो रहा था उस बालक निष्क्रिय,

यद्यपि, सदभावपूण रुचि (वह भाजन करवाये जाने और कपडे पहनाय जान क दायर मे था और उससे आगे अब हवाखोरी आदि के लिए ले जाये जान के दायर मे आ जायेगा) मे देखता था, कोई एक वष की आयु का बालक अब वयस्को की गतिविधियो को स्वीकार करने मे और अधिक समय तक वैसी तत्परता नही दिखाता। फिर भी, अतीत की तरह अब उसे कोई भी यह नही पूछता कि वह सर के लिए बाहर जाना, भोजन करना अथवा बिस्तर पर जाना चाहता है कि नही। और बालक विद्रोह करना प्रारम्भ कर देता है—वह माँगो के सामने घुटने नही टेकता, वह हीन हो सकता है, वह चिल्लाता है, और उदाहरण के लिए, वयस्को के उसको भोजन करवाने अथवा बिस्तर पर सुलाने के प्रयत्ना का प्रतिरोध करता है। वस्तुत विद्रोह कहता है प्रिय वयस्को, आप महत्वपूण परिवतनो पर ध्यान देने मे असफल रहे है—मैं अपने स्वय के व्यवहार को हाथ मे लेने म पहले से ही समथ हूँ। अब मै आपसे एसा अधिक निकटता से बँधा हुआ नही हूँ। अब मैं अपन 'स्वय के व्यक्तित्व पर अधिकार रखता हूँ। और सुनिये, मैं यह अच्छी तरह जानना चाहूँगा कि आप अपने हाथो मे क्या पकडे हुए ह—मुझे इसे देखने दीजिये। आप ऐसा नही करेंगे। तब मैं स्वय इसके पास तक पहुँच जाऊगा। और वह उस तक पहुँचने के लिए कोशिश करता है और चिल्लाने लगता है। किसी एक वष की आयु के बालक का वह चरम बिन्दु है जिस पर मनोवैज्ञानिक अनुसधान म अभी तक अत्यल्प अध्ययन हुआ है यद्यपि इसके अस्तित्व के सम्बन्ध म सन्देह होना काफी समय पहले बन्द हो गया था। यह सक्रियता का चरम बिन्दु है, विकास की सामाजिक स्थिति का ऐसा चरम बिन्दु जिसमे सपक का प्रत्यक्ष भावात्मक रूप बालक की नवीन आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे पर्याप्त नही रह जाता। जीवन का एक नया युग—प्रारम्भिक बाल्यकाल का युग—प्रारभ हो जाता है।

अभी 1940 के दशक मे सोवियत मनोवैज्ञानिक साहित्य मानता था कि हस्त-कौशल वाली सक्रियता प्रारम्भिक बाल्यावस्था (एक और तीन वष की अवस्था के बीच) मे अग्रणी भूमिका निभाती थी। हस्त-कौशल वाली सक्रियताओ के आविर्भाव मे बालक के विकास म नवीन सामाजिक स्थिति के द्वारा एक मौलिक भूमिका तब निभायी जाती है जैसे ही वह व्यक्तियो और पदार्थों से घिरे हुए ससार म अपनी स्थिति का समझने लगता है वह क्षेत्र मे चलता है वह स्वायत्तता से काय कर सकता है, अपनी आवश्यकताओ (भोजन छीनने) की पूर्ति कर सकता है वह शाब्दिक सप्रेषण के प्रारम्भिक रूपो के लिए क्षमता का विकास करता है। लिडिया बोजहोविच के अनुसार ये कुछ विशिष्ट अभिलक्षण हैं जो प्रारम्भिक बाल्यावस्था के विकास की सामाजिक स्थिति का शशव के विकास की सामाजिक स्थिति से अन्तर बताते हैं।

इस अवधि मे आग के विकास के काय और उन्हे निश्चय करन के तरीके

एक-दूसरे से विरोधाभासी ढंग से जुड़े हुए हैं। विशेष रूप से, वह बुनियादी कार्य, जिसे बालक पूरा करने का प्रयत्न करता है, आत्म-बोध एवं क्रिया के कर्त्ता के रूप में, अपनी आत्मा के ज्ञान (मैं क्या कर सकता हूँ?) की प्राप्ति है, किन्तु—और यह वही बात है जो विरोधाभास की परिभाषा करती है—बालक उस दार्शनिक के, जो अपने आन्तरिक संसार की निष्क्रियता से 'अवलोकन' करता है, ढंग से नहीं, किन्तु अपनी सक्रियता को बाह्य पदार्थों की ओर लक्ष्य करके इसका रास्ता निकालता है। इस आयु में बालक विशेष गतियों को अनेक बार दुहराता है और जिन परिवर्तनों को प्रभावी बनाने के लिए यह अनुमति देता है उनका अनुसरण करता है (वह किसी वस्तु को हिलाता है, किसी द्वार को खोलता है और बन्द करता है, इत्यादि) इस हस्त-कौशल वाली सक्रियता के द्वारा बालक अनेक कार्यों का रास्ता निकालता है जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण स्वयं का पदार्थों के संसार से पृथक किसी रूप (कार्य के कर्त्ता का निर्माण) में जानकार होना है और उनके साथ विशेष रूप से वस्तुओं और कार्यों के सम्बन्धों के तरीकों को आत्मसात करना है। उस भूमिका को दिखाना भी सम्भव है जो ऐसी, हस्त कौशल वाली, अथवा, अधिक यथार्थ रूप में, पदार्थाभिमुख हस्त कौशल वाली सक्रियता के द्वारा इवान सोकोलिएन्स्की और अलेक्जेण्डर मेशचेरियाकोव के अंधे, बहरे और गूंगे बालकों को शिक्षा देने में किये गये प्रयोगों पर विचार करते हुए निभायी जाती है।

ऐसे बालकों की मनोवैज्ञानिक क्षमताओं का विकास करना वस्तुतः 'प्रकृति द्वारा प्रस्तुत' (अलक्सेई लिओन्तीव) ऐसा अनोखा वैज्ञानिक प्रयोग है जो मानव की मनोवैज्ञानिक क्षमताओं के विकास को साधारणतः नियंत्रित करने वाले प्रमुख सिद्धान्तों का अनुसरण करना और उस प्रक्रिया को प्रत्यक्ष रूप से प्रेक्षणीय बनाना सम्भव बनाता है। यह इसलिए होता है कि एक साधारण बालक के विषय में उन विविध कारकों, जिनके प्रभाव में मनोवैज्ञानिक क्षमताएँ विकसित होती हैं, में पूर्णतया विभेद करना और उनके प्रचालन को समझना और अंकित करना सम्भव नहीं है। बहुत-सी व्यवहारपरक आदतें, भावनाएँ और व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ, यदि यह मान लिया जाय, 'अपने स्वयं के द्वारा' दैनिक जीवन के दौरान विकसित होती हैं। किन्तु उन बालकों के सम्बन्ध में, जो अंधे, बहरे और गूंगे होते हैं, स्थिति सर्वथा भिन्न होती है। यहाँ उच्चतर मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का आविर्भाव 'विशुद्ध परिस्थितियों', अर्थात, मस्तिष्क पर अनियंत्रित मानसजात प्रभावों के सम्पूर्ण अभाव में घटित होता है। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार के अनुसंधान से जो निष्कर्ष कोई निकाल सकता है वह केवल विकलांग बालकों के सम्बन्ध में ही प्रासंगिक नहीं, किन्तु—और यही मुख्य बात है, व्यक्तित्व विकास को नियंत्रित करने वाले सामान्य सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डालना सम्भव बनाता है।

अपग्राहृत अधिक विशिष्टता से इस प्रकार से अनुसंधान ने निम्नलिखित को स्थापित करना सम्भव कर दिया यह दिखायी देता है कि उस, जो प्रारम्भिक अवस्था की किसी गम्भीर बीमारी—सुनने और देखने और फलत वाणी का क्षय—के परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिक विकास म अलघनीय अवरोध प्रतीत होता है पराभूत करने का एकमात्र माग, सही रूप म, उसी म अन्तर्विष्ट है जो हम वतमान सदभ—यथा, बालक के अपने इद गिद के संसार की वस्तुओ म साथ काय, म आरोपित करता है। अधे, बहरे और गूगे बालको के मनोवैज्ञानिक विकास पर वाणी उपचार द्वारा काय प्रारम्भ करने के अनेक प्रयत्न असफल हुए हैं। अनुसधानकर्ता ऐसे बालको के विकास म महत्त्वपूण परिणाम प्राप्त करने म केवल इसके उपरान्त ही सक्षम हुए जब इवान सोकोलिएन्स्की ने अधे, बहरे और गूंगे बालको के मनोविज्ञान का विकसित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने इन्हे अपनी देखभाल करने की प्रारम्भिक आदतो—चम्मच से स्वय भोजन करना, प्रसाधन प्रशिक्षण, स्वय पोशाक पहनना और उतारना, आदि—को प्रोत्साहित किया। अलेक्जेण्डर मेशचेरियाकोव, इवान साकोलिएन्स्की के एक विद्यार्थी, के अध्ययनो मे यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया गया कि बालको का मनोवैज्ञानिक विकास वस्तुओ के ससार म उनम सम्बधित कार्यों म निपुणता प्राप्त करने और उनकी सामाजिक भूमिका और महत्त्व को पूणतया समझकर काय करना सीखने की प्रक्रिया के माध्यम से घटित होता है। किसी ऐसे बच्चे मे, जो अधा, बहरा और गूगा है, वस्तुओ के साथ काय करने की ऐसी योग्यता का, जो साधारण हस्त कौशल से लेकर किसी वस्तु को एक यत्र के रूप म बनाने की विशेषज्ञता प्राप्त करने तक विस्तृत है, विकास करके अनुसधानकर्ता वास्तविक ससार से मानव के सम्बन्ध का निर्माण करने मे सक्षम है।

इसके अतिरिक्त, कोई उन बालको, जो अधे, बहरे और गूगे है और साधारण बालको के बीच अनेक समानताएँ पा सकता है। यह वस्तु (उदाहरणाथ, चम्मच) के साथ घनिष्ठता की स्थापना से प्रारम्भ होता है, वस्तु का या तो शाब्दिक या रूपकात्मक अथ (यह प्रतीत किया जाता है) म 'परीक्षण किया जाता है। बालक वस्तु म स्वय रुचि नही भी दिखा सकता और उस फेंक भी सकता है, क्योकि वस्तु मूल रूप मे महत्त्वपूण नही होती। केवल उस समय, जब शिक्षक बालक को वस्तु के साथ सयुक्त काय म (उदाहरणाथ, उसे चम्मच से भोजन करना सिखाना) लगाना प्रारम्भ करता है, वस्तु बालक की चेतना म सजीव' बनकर आती है और उसके साथ हस्त-कौशल बढते हुए रूप मे अनवरत हो जाते हैं (उसके ऊपर क्रिया करने के प्रयत्न किये जाते है।) किसी वस्तु म विशेषज्ञता प्राप्त करने की प्रक्रिया इस शब्द के पूरे अथ म, किसी वस्तु के प्रति स्थिर उत्तर के विकास के अथ म ज्ञान प्राप्त करना नही है। जो कुछ शिक्षक उत्पन्न करना चाहता है वह बालक की

ओर से प्रतिक्रिया नही किन्तु क्रिया है और उसकी महत्त्वपूर्ण सक्रियताओ के क्षेत्र मे वस्तु को सम्मिलित करता है। मेशचेरियाकोव, यथेष्ट परिष्कार के साथ उन बालको का, जो अधे, बहरे और गूगे हैं, चम्मच की सहायता मे भोजन करना सिखाने की प्रक्रिया का वर्णन करते है। सर्वप्रथम बालक ऐसी शिक्षा का प्रतिरोध करेगा। वह उस चम्मच को फेंक देने की कोशिश करेगा जो उस समय 'मार्ग मे है' जब वह अपने हाथो से भोजन करने का प्रयत्न करेगा। फिर भी, क्रमश वह, चम्मच को प्रारम्भ से ही शिक्षक के साथ, जो उसकी गतियो को निर्दिष्ट करता है और सुधारता भी है, पकडकर उस चम्मच के साथ कार्य-सचालन करने मे स्वय को नियोजित करता है। निम्नलिखित पहलू महत्त्वपूर्ण है शिक्षक का कार्य शिक्षण प्रक्रिया म उस बिन्दु को पकडना है जिस पर बालक चम्मच के साथ स्वायत्तता से काय करना आरम्भ करता है और अपने हाथ से चम्मच को छोड देता है। किसी अन्य मनोवैज्ञानिक विकास के समान ही, जो बालक अधे, बहरे और गूगे ह उनके विषय म भी, किसी बालक को केवल वस्तुओ के साथ काय करना सिखाना ही नही किन्तु उस काय को, उत्तरवर्ती मे बाह्य हस्तक्षेप के बिना, व्यक्तित्व के आत्म विकास की प्रक्रिया मे सम्मिलित करना भी महत्त्वपूर्ण है। दैनिक जीवन की वस्तुओ के साथ काय करने की सरलतम प्रणालियो मे विशेषज्ञता प्राप्त करके और उनके डिजाइन के अनुसार उनका उपयोग करना सीखकर, एक बालक, जो अधा, बहरा और गूगा है, सस्कृति के वास्तविक ससार म प्रवेश करता है और कालान्तर म उस आधार पर अपेक्षाकृत अधिक सरलता से मानव सस्कृति की सकेत व्यवस्था (भाषा) का बोध ग्रहण करता है और लम्बे समय के बाद मनोवैज्ञानिक विकास के उच्च रूप से उन्नत स्तरो का प्राप्त करने की योग्यता पा लेता है।

कोई अलेक्जेण्डर मेशचेरियाकोव की श्रेष्ठ कृति[1] म इस समूचे अनुसधान से सम्बन्धित अग्रिम विस्तार को पा सकता है, फिर भी हम उन अनुसधानो, जो सामान्य बालको के मनोवैज्ञानिक विकास के व्यक्ति-वृत्त को समझने के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, का उल्लेख करने के पश्चात इस विषय को छोड देंगे। मुख्य प्रसग का सम्बन्ध मानव के व्यक्तित्व विकास मे वस्तु सम्बन्धी हस्त कौशल के मौलिक महत्व से है। एक और तीन वर्ष की आयु के बीच बालक मानव सस्कृति के वास्तविक ससार को आत्मसात् करने की परम महत्वपूर्ण एव उत्तरदायित्वपूर्ण सक्रियता मे अन्तर्लीन होता है। बालक के पालन पोषण की कठिन अवधि मे, जब कोई छोटा बालक अकस्मात् अपने माता पिता और परिवार के आम सदस्यो के

---

1 ए० आइ० मेशचेरियाकोव, स्लेपाग्लुखोनेमिये देती (चिल्ड्रन हू आर ब्लाइंड, डफ एण्ड डम्ब), मास्को, पेडेगोगिका पब्लिशर्स, 1974

लिए कष्टदायक बन जाता है और उसके इर्द गिर्द जो वस्तुएँ होती है उन्हें बड़ा भारी हानि पहुँचाता है (दीवार के कागज का फाड़ना, गिलास और तश्तरियों के सहित मेजपोश को मेज से खींचना, विद्युत निगमों में अपनी अंगुली डालने का प्रयत्न करना) और जब, जब तक वह स्वयं को भी हानि न पहुँचा ले उसे एक क्षण के लिए दृष्टि से ओझल नहीं रखा जा सकता, तब बालक वास्तव में ऊँची सकारात्मक मनियता उदाहरणार्थ, अपने स्वयं के व्यक्तित्व विकास, मे लगा रहता है। उसमे अन्तर्निहित किसी अनिष्टकारी शक्ति अथवा ध्वंसकता के कारण ऐसा नहीं होता कि वह खिलौनो को तोड देता है, किन्तु एक अपेक्षाकृत अधिक सरल और अधिक महत्वपूर्ण हेतु होता है, उदाहरणार्थ, वह ऐसे प्रश्नो के उत्तर ढूढता है, जैसे यह किस प्रकार की वस्तु है, इसका कार्य क्या है, यह कैसे बनायी जाती है, इससे क्या किया जा सकता है, यह क्या कहलाती है? और एक टूटी हुई गुड़िया उस संज्ञानात्मक सक्रियता के अतिरिक्त कुछ नहीं होती, क्योंकि इसको तोड देने और उसके भीतर का रूई को खोज लेने के बाद बालक उदास और प्रसन्न दोनों होता है वह उदास होता है क्योंकि उस गुड़िया को तोड़ देने का दु ख होता है किन्तु वह अपनी इस खोज से प्रसन्न होता है कि इसमे रूई का भराव समाया हुआ है। इस अवधि मे बालक वास्तविक ससार से सम्बन्धित ज्ञान के विशाल आयतन पर अधिकार कर लेता है—वह फर्नीचर, रसोईघर के बर्तनो और कपड़ो के कार्यों को पहचान लेता है। आज बालक टेलीफोनो, टेलीविजन सेटो और मोटरवाहनो जैसे जटिल उपकरणो को वस्तु विषयसूची मे 'अपने स्वयं की वस्तुओ के रूप मे सम्मिलित करते है। संक्षेप मे वे मानव जीवन के वास्तविक ससार की खोज करते हैं और एक ही समय सकेतों के ससार पर अधिकार करने का जटिल और उत्तर दायित्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ हो जाता है। यह भाषा और वाणी के आत्मसात्करण से आरम्भ होता है—ये मानव चिन्तन के अत्यन्त सशक्त सयन्त्र है। और वस्तुनिष्ठ ससार से मानव सम्बन्धो के ससार मे भेदन करने के प्रारम्भिक प्रयास पहले ही से किये जा रहे हैं।

ये प्रयास तीसरे वर्ष के अन्त तक विशेष रूप से चिरस्थायी बन जाते हैं जब, अपने वस्तु-वातावरण को आत्मसात् करके बालक सम्बन्धो के ससार में एक वर्धमान रुचि प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर देता है। वह मनमौजी बन जाता है, 'वयस्को के साथ प्रयोग'—उदाहरणार्थ, यह देखना कि यदि अपने माता पिता के निर्देशो की अवहेलना कर भी जाय तो क्या होगा। मनोवैज्ञानिक विकास के ऐसे नवीन चरम बिन्दु का आरम्भ हो जाता है जो बालक की उसकी आयु की प्रमुख सक्रियता के रूप मे वस्तु-हस्तकौशल की पूर्ण विशेषता को विहित करता है—यह उसको सन्तुष्ट होने को बन्द कर देता है। ऐसा उस चरम बिन्दु के माध्यम मे होता है कि जिससे वह सक्रियता के नये स्वरूप की ओर गतिमान होता है।

तब तीन वष की आयु के बालक का चरम बिन्दु क्या है?

एक विनीत शान्त बालक हमारी इन्ही आखो के सामने एक छोटे अधिनायक के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। वह सभी बातो—कपडे पहनना, शिलाखण्डो मे मीनार बनाना—स्वय ही करने का प्रयत्न करता है और सर्वोपरि, वह स्वय ही निश्चय करता है कि किसी खास समय पर वह क्या करेगा। बालक अपनी स्वतन्त्रता पर जोर देता है और सहायता के विस्तृत स्वरूपो को नामजूर कर देता है, यद्यपि बहुत-सी बातो मे उसे अभी तक इसकी आवश्यकता है और इस समय भी जो कुछ वह चाहता है उसे करने मे समथ नही है। यह चरमबिन्दु 'मेरे स्वय के द्वारा' शब्दो म सलग्न है और हमे सूचित करता है कि बालक ने अपने वस्तु-वातावरण पर काबू पा लिया है कि अब वह अपने आपको प्रभावशाली ढग से इसके अनुकूल बनाता है और यह कि अब उसे सक्रियता के अधिक व्यापक क्षेत्र की आवश्यकता है—क्योकि वस्तुओ का हस्तकौशल अपनी सकारात्मक अन्त शक्ति को समाप्त कर चुका है। सक्रियता के प्रधान रूप को बदलने की आवश्यकता उत्पन्न हो गयी है और उसे ठीक समय पर करना भी है।

लिडिया बोज़होविच उस सम्बन्ध म कहती ह कि दूसरे वष के अन्त तक इस चरमबिन्दु को सरलता से पार कर लेता है, किन्तु तीन वष की आयु के बाद वह नकारात्मकता और हठीलेपन के द्वारा व्यक्त कठिन रूपो को अपना लेता है और इससे व्यवहार के वाछित मानदण्डो से विकृत सम्बन्ध और वयस्को से भी विकृत सम्बन्ध उत्पन्न होते ह। वे लिखती ह, "हमने (लगभग चार वष के) ऐसे बालक को देखा है, जो एक कविता को निम्नलिखित ढग से पढता था, 'लहरो पर जो लहरें नही थी और जा नीली नही थी और महासागर की लहरें नही थी, तारे जो तारे नही थे और जो किसी आकाश मे नही चमकते थे जो आकाश नही है' हम उसी उम्र के एक अन्य बालक से भी मिले जो चित्र बनाना चाहता था किन्तु जब वयस्क उसके इरादे का समथन करने लगे तो चिल्लाने लगा और उसने माँग की 'मुझे चित्र बनाने को मत कहो', और केवल अपनी इच्छा पूरी होने के बाद ही वह खुशी से चित्र बनाने लगा।'

साधारणतया तीन वष का चरमबिन्दु बिना जटिलताओ के ही अपक्षीण होता है क्योकि इसका एक महत्वपूण सक्रियता-स्वरूप, उदाहरणाथ पाट अदा करना, जो बालक को आकृष्ट करता है और अगले तीन वर्षों के दौरान उसके विकास को नियन्त्रित करता है, की ओर सक्रमण के जरिये समाधान किया जाता है।

बालक के जीवन मे खेलो की भूमिका

व्यक्ति-वस्त मे प्रमुख सक्रियता के स्वरूपो के पूववर्ती विषय की हैसियत से खेल मानव-जीवन मे एक निश्चित सावभौम महत्व से सम्पन्न है। प्रत्यक्ष भावात्मक सप्रेषण भी, जिसन किसी समय शिशु के मनोवज्ञानिक विकास को नियत्रित किया था, व्यक्तित्व विकास की उत्तरवर्ती अवस्थाओ मे अनेक व्यक्तिगत गुणो (तदनु भूति के लिए क्षमता, प्रेम करने और प्रेम किये जाने की क्षमता, सयुक्त भावात्मक अनुभव के लिए क्षमता, आदि) पुन प्रकट होता है। इसी प्रकार, वस्तु-हस्तकौशल वाली वे गतिविधियाँ जो एक और तीन वष के बीच की आयु के बालक के विकास को नियत्रित करती है, कालान्तर मे मानव गतिविधियो के बडे जटिल रूपो और वस्तु-वातावरण म काय करन तथा व्यक्ति के शरीर पर नियत्रण करने की अनोखी और उच्च रूप मे विकसित योग्यताओ मे प्रतिबिम्बित होगा। उस सम्बन्ध म यह हो सकता है कि खेल खेलना सक्रियता का सबसे अधिक उदीयमान प्रकार है। विशेषकर, सश्लेषणात्मक कलाओ (थियेटर, सिनेमा) का समूचा क्षेत्र अभिनय पर आधारित है और उन सामाजिक क्रियाओ, जिनको मनुष्य सम्पन्न करता है, का सम्बन्ध विशिष्ट अभिनय-अभिलक्षणो (पिता, निर्देशक आदि के 'अभिनय') इसी प्रकार, मनोवज्ञानिक सुधारो और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य (मनोचिकित्सा, 'मनो अभिनय') भी अभिनय पर निर्मित होत है। सक्षेप मे, खेल सम्पूण मानव-जीवन मे महत्वपूण भूमिका निभाते है। किन्तु विद्यालय पूव के बालक (तीन और छ सात वष की आयु के बीच) यह एक प्रधान सक्रियता के रूप मे और मनोवज्ञानिक विकास के बुनियादी रूप और साधन की तरह काय करता है।

अलक्सेई लिओन्तीव बताते है कि खेल विद्यालय-पूव के बालको के लिए एक प्रमुख सक्रियता बन जात है क्योकि वस्तुनिष्ठ ससार, जिससे बालक अवगत होते है, उस समय वधमान रूप से विस्तृत हो रहा होता है। यह केवल उन्ही वस्तुओ, जो बालक के प्रत्यक्ष वातावरण का निर्माण करती है और जिनके साथ वह स्वय काय करने म सक्षम होता है, कोई नही किन्तु उन वस्तुओ का भी, जिनके साथ वयस्क काय करते है किन्तु जो बालको के लिए भौतिक रूप से अनभिगम्य बने रहत है सम्मिलित करना प्रारभ करता है। सक्षेप म, खेल, प्रारभिक बाल्यकाल म विद्यालय-पूव की आयु की ओर होन वाले सक्रमण की अवधि म उन मानव विषयो के विस्तार के कारण, जिनम अब बालक को विशषज्ञता प्राप्त करनी है और जिनम वह आग के मनोवैज्ञानिक विकास के दौरान अवगत होता है नये

अर्थ का अभिलेखन करत है ।[1]

वहा वस्तुगत वातावरण, बालक के द्वारा अधिकृत किये जाने पर, अधिक जटिल हो जाता ह । हम यह पुन स्मरण करें कि उसने अभी से वस्तुओ के साथ काय करने की निश्चित प्रणालियो मे 'विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है—बहुत सी चीजें अब उसके लिए रहस्य बनकर नही रह गयी हैं उसके चम्मच, कपडे, बतन, एव अधिक जटिल उपकरण, जैसे टलीफोन और टलीविजन सैट जिन्हे उपयोग म लाने योग्य वह हो गया है, यद्यपि, वह उनकी काय-प्रणाली को नही समझता, इसमे सम्मिलित हैं । किन्तु उदाहरणाथ, वह उस मोटरवाहन के साथ, जिसे वह देखता है, जिसमे वह बठता है और सवार होता है, किन्तु, जिस वह चला नही सकता, उस डांड जिसे नियत्रण म लाने के लिए वह पर्याप्त मजबूत नही है, उस दुकान जहा से उसके माता पिता उसके लिए खिलौने खरीदत है (वे उसकी ओर मे खरीदत है), *सक्षेप मे, मानव विषयो और सम्बधो के उस विशाल विस्तार,* जिसम वह पहले ही से लगा हुआ है और जिसका वह अवलोकन करता है, किन्तु उसमे भाग लेने मे असमथ है, के साथ वह क्या कर सकता है ? इसके अतिरिक्त, वह दु ख के साथ इस बात पर भी ध्यान देता है कि कोइ भी उसे इन विषयो और सम्बधो का उपयोग करने की शिक्षा देने का विचार नही करता (सबसे अधिक पीडित माता पिता भी एक तीन वष की आयु के बालक को मोटरवाहन चलाना सिखाने की कल्पना नही करेंगे ।) और हम पुन स्मरण करें कि, फिर भी, बालक स्वतत्र रूप से (मेरे स्वय के द्वारा) काय करने का प्रयत्न करता है ।

इस सदभ म यह भी है कि वह उस स्थान पर खेलो के द्वारा बचा दिया जाता है जहा 'मैं चाहता हू' और, 'मैं कर सकता हूँ' के बीच की आभासीय अलघनीय सीमा अदृश्य हो जाती है । खेल मे बालक सभी बातो को कर सकता है और यथाथ जीवन मे वे उसकी पहुँच के बाहर होती हैं वह एक कार (एक बस, एक ट्रेन, एक हवाई जहाज) को चला सकता है, एक नाव को खे सकता है—किन्तु केवल नाव ही क्यो वह एक समुद्री जहाज भी चला सकता है (बालक के कमर स पिता के अध्ययन कक्ष तक और वापिस) खेल बालक क मनोवज्ञानिक विकास म आधारभूत कार्यों को पूरा करते हैं और उस विकास को 'निकटतम विकास का क्षेत्र निर्मित करके उस विकास को आगे बढाते हैं (लेव विगोत्स्की) जिसके भीतर बालक जसे-जैस अपनी योग्यताओ का विकास करना और अन्त म अपने व्यक्तित्व का विकास करना अथात उसके आतम विकास को प्रभावशील बनाना जारी

---

1 ए० एन० लिओतीव, इजब्रेनयी साइखोलॉजीचेस्कियी सोचीननिया (सिलेक्टेड साइकोलाजिकल वक्स) इन ट वॉल्यूम्स, वाल्यूम I, मास्को पडेगागीका पब्लिशस, 1983, पृ० 304

रखता है, गतिमान रह सकता था।

क्योंकि वह अपने खेलो के विषय को चुनने म स्वतन्त्र होता है अत बालक एक वस्तु-वातावरण स दूसरो मे चला जाता है। कुछ ही मिनटो म एक कुर्सी बस चालक की सीट के बदले दुकान का ताक, एक कागज का टुकड़ा, जो एक क्षण पहले किसी मोटे मन्दडिये के लिए औषधि 'मँगवाना' सभव बनाने वाला चिकित्सकीय नुस्खा एक ऐसे धन के रूप म परिवर्तित हो जाता है जिसस बालक अपनी गुडिया आदि के लिए निश्चित अनेक प्रकार के खाद्य-पदार्थों के लिए दुकान म 'भुगतान करत है। खलो मे 'प्रत्यक वस्तु कोई भी वस्तु बन सकती है, कोई चम्मच टेलीफोन रिसीवर बन सकता है, कोई टेलीफोन रिसीवर 'ध्रुवीय अन्वेषण के लिए रेडियो स्टेशन बन सकता है कोई मुलायम सोफा उत्तरी ध्रुव बन सकता है, और कोई कम्बल एक 'उडने वाला गलीचा' बन सकता है। वास्तविक पदार्थों को उनके चिह्नो के द्वारा स्थानापन्न करने की योग्यता (वातावरण के अन्य पदार्थों का उपयोग करके) प्रतीकात्मक स्थानापन्नो के लिए योग्यता बालक म एक ऐसा अत्यन्त महत्वपूर्ण गुण विकसित कर देती है जो भविष्य म (सर्वोपरि विद्यालय म) भली प्रकार उसके काम आता है। कुछ समय के लिए बालक सर्वशक्तिमान, व्यवहारत मानव-जीवन के वस्तु क्षेत्र पर अपने अधिकार मे अप्रतिबद्ध हो जाता है जैसे ही वह एक मेज की तरफ देखता है उसके लिए यह कहना ही काफी है 'यह एक अतरिक्षीय अड्डा है, और मिनटो मे ही उपग्रह इसके अवतरण-मचों स उडने लगते हैं।

विद्यालय पूर्व के बालक एक महत्वपूर्ण गुण से सम्पन्न होते है, जसे, वे अभिनय पर केन्द्रित होना जारी रखत हैं। खेलो के लिए विभिन्न विषयो का आविष्कार करने मे (दुकान, 'अस्पताल', 'मम्मी') एक बालक सरलता से एक भूमिका से दूसरी (मम्मी की भूमिका स बेटी की भूमिका, विक्रेता स ग्राहक, रोगी से डाक्टर) भूमिका मे, केवल पारस्परिक सम्बन्धो के वस्तु-सापेक्ष सम्बन्धो का ही नही किन्तु किसी निश्चित वस्तु-क्षेत्र के विषय म वयस्क व्यक्तियो के सम्बन्धो के स्वरूप को भी आत्मसात् कर लेने पर ही, स्थानान्तरित होता है। इस कारण यह माता ही होती है जो पुत्री का भरण-पोषण करती है और इसके विपरीत नहीं होता, विक्रेता वस्तुएँ बेचता है जबकि ग्राहक उन्हे खरीदता है—इसक विपरीत कभी नही होता। और बालक खेल के नियमो का कठोरता स पालन करते हैं, क्योंकि, यद्यपि, यह खेल होता है फिर भी यह बहुत ही गभीर मामला, इतना ही अधिक जसे भोजन का पकाना अथवा यथार्थ खरीदारी का मामला, होता है। जो भूमिकाएँ कोई बच्चा एक दिन की अवधि मे निभाता है, वे अनेक हो सकती हैं, वह किसी ध्रुवीय अन्वेषण का सदस्य हो सकता है आइस क्रीम बेच सकता है, एक टैक्सी ड्राइवर, एक द्वारपाल, एक विमान, एक सैनिक, एक वायुयान-चालक—कुछ भी जो वह

चाहता है, अथवा, अधिक सही रूप में, कुछ भी जिस पर उसके साथी सहमत हों, हो सकता है।

सक्षेप मे, खेल अतव्यक्तिगत सम्बधो के समग्र समुच्चय का ज्ञान प्राप्त करने मे एक नया और साहसी कदम, और व्यावसायिक अनुकूलन मे सबसे अधिक सामान्य स्तर और इसके साथ ही किसी के स्वय के आत्म का ज्ञान प्राप्त करने मे एक महत्वपूण चरण है। किसी बालक के लिए खेल उसके व्यक्तित्व की सबसे अधिक अप्रत्याशित विशेषताएँ उद्घाटित कर देत है। एसा प्रतीत होगा कि किसी खेल को खेलन म, उदाहरणाथ, वह कोई भी बात कर सकता है जिसे वह चाहता है, जो प्रवत्ति रखता है वह उसकी वास्तविक योग्यताओ के विकास पर महत्वपूण प्रभाव डालती है। हम निम्नलिखित उदाहरण पर विचार करें। यह सुप्रसिद्ध है कि बालक अपन आपकी देखभाल करने मे, उदाहरणाथ, वे वयस्को की सहायता के बिना प्रसाधन करने मे समथ नही हो सकत, प्रारम्भिक काम-काज पूरा करने मे असमथ होत हैं। किसी खेल म, फिर भी, प्राय अपने माता पिता को बडे आश्चय मे डालते हुए, कोई बालक फुर्ती से अपना प्रसाधन कर सकता है। अथवा किसी अन्य उदाहरण पर भी विचार करिये। यह सुविख्यात है कि छोटे बालक इसे कठिन पाते है कि शान्त बैठ सके और न वो धमकियाँ तथा न ही प्रलोभन भी एक थोडे समय के लिए भी शात बनाये रखने के हेतु बन सकें। मनावैज्ञानिक अनुसधान न विश्वासोत्पादकता के साथ प्रदर्शित कर दिया है कि खेल के सदभ मे कोई बालक (यदि वह उसकी भूमिका है) 'अपन ठिकाने पर' घटा तक रह सकता है। जब किसी खेल मे लगा हुआ होता है तो कोई बालक स्वायत्त सक्रियताओ और आत्मनियमन की वह योग्यता प्राप्त कर लेता है जिसका महत्व आगे के मनोवैज्ञानिक विकास मे स्पष्ट होता है। यह महत्वपूण है कि अपन प्रथम वष मे विद्यालय बालक, विद्यालय-पूव के बालको के असदश, चाहे महानतम कठिनाई के साथ, फिर भी पूरे कक्षा के कालाश तक शान्त बठ सकत है, यद्यपि व उत्तरवर्ती की अपक्षा मनोवैज्ञानिक रूप से अधिक विकसित होत ह। कारण साधारणत यही होता है कि वे उस स्थिति म नही होत जिसमे वे खेल खेल रह हात है किन्तु विद्यालय बालक की वास्तविक भूमिका म लग हात हैं और तदनुसार उस विशिष्ट 'अनुकूलनता' (स्टैनी स्लावस्की के अभिनय विद्यालय की शब्दावली म) जो उन्ह विद्यालय जीवन के दृश्य लेख के अनुसार भूमिका निभान म सहायता देती है।

सक्षेप मे, किसी बालक के मनोवैज्ञानिक विकास म खेलो के महत्व का आवश्यकता से अधिक अनुमान लगाना कठिन है। खेल बालक की स्मरण शक्ति, बोध, इच्छा शक्ति, चिन्तन और कल्पना का विकास करत हैं। मानव व वास्तविक ससार और उसके सामाजिक सम्बधो के ससार को परम्परागत खेल के रूप म आत्मसात् करने पर बालक के लिए अपने स्वय की मनोवैज्ञानिक क्रियाओ का

विकास करने में महत्वपूर्ण प्रगति को प्राप्त करना सम्भव है। वह प्रतीकात्मक स्थानापन्ना और व्यवहार के स्वायत्त रूपों पर निर्भर रहने की योग्यता का विकास करता है। वह बड़ा हो गया है, शक्ति अर्जित की है और शारीरिक दृष्टि से विकसित हो चुका है। उसे विशेष रूप से इस तथ्य का ज्ञान हो गया है कि सामाजिक अस्तित्व के सभी समान रूप से आवश्यक रूपों में से उसके निकट भविष्य में उसकी प्रथम सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण और सामाजिक रूप से मूल्यवान सक्रियता का स्वरूप एक विद्यालय के छात्र के रूप में उसकी विशिष्ट भूमिका ही उसके लिए सुरक्षित है। सामान्य मनोवैज्ञानिक विकास की प्रगति के सम्बन्ध में बालक, जो 6 7 वर्ष की आयु के हैं, जीवन में एक नवीन और अधिक 'वयस्क' की स्थिति को धारण करने के लिए एक स्पष्टतः विशिष्ट प्रयास अभिव्यक्त करते हैं और उस नई क्रिया को पूरा करते है जो केवल उन्हीं के लिए नहीं किन्तु उनके वातावरण के व्यक्तियों के लिए भी महत्वपूर्ण होती है। यह वही प्रयास है जो बालक को उसके स्वयं के जीवन के निर्माण के साथ उस संघर्ष में लाता है जिसने पूर्ववर्ती अवस्था में उसकी गतिविधियों के प्रमुख अर्थ का निर्माण किया था। खेलों से उसका सन्तुष्ट होना समाप्त हो जाता है। इस संघर्ष का समाधान करते समय बालक विकास की उस चरम अवस्था मे प्रविष्ट हो जाता है जिसकी मनोवैज्ञानिक साहित्य में (7 वर्ष की आयु वालों का चरम बिंदु के रूप में व्याख्या की गयी है) उस चरम बिन्दु जो किसी बालक के व्यवहार में मनमौजीपन नकारात्मकतावाद और अवज्ञा के रूप में प्रकट होता है का बुनियादी अर्थ बालक के जीवन के ढंग-ढांचे से आगे बढ़ने की नवीन रूप से आविर्भूत आवश्यकता की पूर्ति करने, किसी बालक के लिए सामाजिक जीवन मे अभिगम्य नवीन स्थिति को प्राप्त करने और सक्रियता के गम्भीर, सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्वरूप को कार्यान्वित करने का एक प्रयत्न है। अनुसंधान की उपलब्धियां प्रदर्शित करती है कि 6 7 वर्ष की आयु में अक्षरशः सभी बालक विद्यालय को जाना बहुत अधिक पसन्द करते है और किंडरगार्टन जीवन की सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करते है और विद्यालय-बालकों के विभिन्न लक्षणों (पुस्तकों के बस्ते पोशाक) से अत्यधिक संलग्न हो जाते है। इस चरम बिन्दु को निश्चय करने का एक ही मार्ग है और वह है विद्यालय जीवन में संक्रमण के माध्यम से। फिर भी यह महत्वपूर्ण है कि यह संक्रमण बालक की ओर से एक वास्तविक आवश्यकता को अभिव्यक्त करता है। यह देखा गया है कि वे बालक जिन्होंने खेल खेलने के पक्ष का पूरा नहीं किया है, विद्यालय शिक्षा के प्रति उदासीन रहते हैं और इसका प्रतिरोध करते है और उन्हें इस चरम बिन्दु प्रभास का अधिक गहरे रूप में अनुभव होता है। फिर भी 6 7 वर्ष की आयु तक बहुत से बालक विद्यालय-वातावरण मे सीखने के लिए तैयार रहते हैं। खेलों को नवीन क्रिया शिक्षा के सम्मुख आत्मसमर्पण करना चाहिए।

बालक सीखने के लिए ही सीखता है

अठारहवी शताब्दी से पहले, रूस मे नया वष एक सितम्बर से प्रारम्भ होता था जैसा कि बाइजेण्टियम मे प्रचलित था जहा से जूलियन क्लेण्डर और ईसाइयत रूस मे आये। 1708 से पीटर महान् की राजाज्ञा के अनुसरण म प्रत्येक वष एक जनवरी से आरम्भ होन लगा जैसा आज है। हमार सामजिक जीवन के केवल एक ही क्षेत्र मे एक सितम्बर ने नय वप के प्रारम्भ होन के रूप मे, विद्यालय के नव-वप के रूप में अपना महत्व बनाये रखा।

दीघकाल से स्थापित परम्परा के अनुसार, सितम्बर के प्रथम दिन सोवियत सघ म शहरा और गाँवो की गलिया चुस्त विद्यालय-वर्दियाँ पहने हुए फूल ले जाते हुए और स्कूल की पहली घटी के उत्सवो मे भाग लेने के लिए भागते हुए बच्चा से भरी हुई होती हैं। उनमे सबमे छोटे, पहले ग्रेड मे प्रवेश लेने वाले, विशेप रूप से ध्यान दने योग्य होते है। यह केवल इसीलिए नही होता, क्योंकि बडे बच्चो के असदश, वे अपने माता-पिता के साथ लग रहते है और केवल इस कारण नही कि उनके पास एसे गुलदस्ते और पुस्तका के बस्त है जो कभी-कभी उनके खुद के आकार के बराबर हा जात है किन्तु उनकी उस उत्सुकता और उत्तेजना के कारण कि वे प्रथम बार विद्यालय जा रह हैं।

विद्यालय म शिक्षा का प्रारम्भ बालक के जीवन के समूचे ढाचे के परिवतन से सयुक्त हाता है। यह व्यक्तित्व विकास के लिए मौलिक रूप से नवीन सामाजिक स्थिति को प्रस्तुत करता है।

प्रथम, बालक एक सामाजिक रूप से महत्वपूण सक्रियता जिसे वह सीखता है—को कार्यान्वित करना प्रारम्भ करता है। और उस सक्रियता के महत्व का मूल्याकन उसके इद गिद के व्यक्तियो के द्वारा तदनुरूप ढग से किया जाता है जबकि किसी बालक के माता-पिता उसी क्षण उसके खेल मे बाधा दे सकत थे यदि वे यह महसूस करते कि यह भोजन करने का समय है अथवा बालक पहले ही से जरूरत स ज्यादा खेल चुका है, ऐसी गतिविधि, जैसे घर के नियत काय करने के सम्बन्ध मे वयस्को का रुख आदर का रुख होता है। शिक्षा-गतिविधि स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त सामाजिक महत्व से सम्पन्न होती है और तदनुसार बालक को वस्तुत वयस्को और समकक्षा से सम्बन्धित नवीन स्थिति मे रख देती है, इससे उनका स्वय का, स्वय से सम्बन्धित, मूल्याकन परिवर्तित हो जाता है तथा परिवार मे पारस्परिक सम्बन्धा का विशेप रीति से पुनर्निर्माण होता है। डेनिल एल्कोनिन कहत हैं कि यह यथाथ रूप मे इस कारण होता है कि शिक्षा-गतिविधियाँ अपनी अन्तवस्तु के सम्बन्ध मे (वे मानव जाति के द्वारा सचित सस्कृति और विज्ञान के

कोषो को आत्मसात् करने से सम्बन्धित है) सामाजिक, अपने अर्थ (यह सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है और सामाजिक दृष्टि से ही इसका मूल्यांकन किया जाता है) के सम्बन्ध में सामाजिक और अपने क्रियाक्रम (यह सामाजिक दृष्टि से सूत्रबद्ध मानदण्डों के अनुसार क्रियान्वित किया जाता है) के सम्बन्ध में भी सामाजिक है, यह विद्यालय के प्रथम वर्षों में, अर्थात्, उस अवधि में जिसमें यह मूल रूप में मूल रूप लेती हैं, अग्रणी भूमिका निभाती है। संक्षेप में, विद्यालय-जीवन में संक्रमण प्रमुख रूप से एक नवीन प्रधान सक्रियता की ओर स्थानान्तरण के द्वारा प्रकट होता है।

द्वितीय विद्यालय-जीवन ऐसे अनेक नियमों का व्यवस्थित एवं अनिवार्य परिपालन आवश्यक बनाता है, जो प्रत्येक पर लागू होते हैं और जो विद्यालय में बालकों के व्यवहार पर नियन्त्रण रखते हैं। अध्यापकों के साथ बालकों के सम्बन्ध बालकों के अपने माता पिता किंडरगार्टन पर्यवेक्षकों के साथ व्यक्तिगत एवं घनिष्ठ सम्बन्ध से अत्यधिक भिन्न होते हैं। बालकों और उनके अध्यापकों के बीच के सम्बन्ध उनकी संयुक्त विभाजित सक्रियताओं के विशिष्ट स्वरूप के और विद्यालय जीवन के संगठनात्मक सिद्धान्तों के द्वारा कठोरतापूर्वक अधीन कर दिये जाते हैं। इन नियमों की अधीनता यह अपेक्षा रखती है कि बालक अपने स्वयं के व्यवहार का नियमन करने योग्य हो सके और यह उसकी उत्पादक सक्रियताओं से सम्बन्धित महत्वपूर्ण आवश्यकताओं और उन्हें चेतनापूर्वक स्थापित लक्ष्यों से सम्बद्ध करने की योग्यता की परिभाषा करती है।

विद्यालय शिक्षा के सम्बन्ध में हेगल ने बताया कि

"बालकों की विचित्रताओं को परिवार के घेरे में ही सहा जा सकता है, किंतु उसी क्षण से, जब वे विद्यालय में प्रवेश करते हैं, एक ऐसा जीवन प्रारम्भ हो जाता है जो एक सामान्य अनुक्रम के अनुकूल होता है और उस नियम के अनुसार होता है जो सबके लिए एक-सा होता है, उस बिन्दु पर इसकी सनकों को दूर करने का उत्साह लाया जाना चाहिए, सामान्य को जानने और पाने की इच्छा करने और वर्तमान सामान्य शिक्षा को आत्मसात् करने की प्रवृत्ति भी पैदा की जानी चाहिए। यह आत्मा का ऐसा रूपान्तरण है जो शिक्षा कहलाता है। जितना अधिक कोई व्यक्ति शिक्षित होता है उतने ही कम वे तत्व, जो केवल उसी अकेले के लिए व्यक्तिगत होते हैं और इसीलिए जो सांयोगिक होते हैं उसके व्यवहार में स्पष्ट होते हैं।"[1]

अन्त में विद्यालय में व्यवस्थित शिक्षा, विज्ञानों के मूलतत्वों चिंतन के वैज्ञानिक ढंगों, और विज्ञान के विशिष्ट तर्क, जो दैनंदिन अवधारणाओं के उस

---

1 जी० डब्लू० एफ० हेगेल, सिस्टम डेर फिलासाफी, पृ० 88

योग से, जो किसी सात वर्ष के बालक के द्वारा विकसित की जा चुकी है, भिन्नता लिये हुए है, मे विशेपज्ञता प्राप्त करने के काय से जुडी हुई है। ये वज्ञानिक अवधारणाएँ, जिन्ह कोई बालक विद्यालय मे आत्मसात करता है, सर्वोपरि दैनन्दिन अवधारणाओ से इस बात मे भिन्न हैं कि वे ससार के वस्तुपरक सामाजिक स्थिति के रूप मे देखे गये वज्ञानिक चित्र को प्रस्तुत करती है। मुख्य रूप से उसकी चेतना पर आधारित और एक विशुद्ध प्रयोगाश्रित ढग से विचारधारा म अकित पहले के प्रत्यक्ष ज्ञान—गुणो के निश्चित समूह से युक्त किसी पदाथ के रूप मे—अब वैज्ञानिक विश्लेपण के अधीन किया जाना चाहिए, अर्थात्, वस्तुपरक बोध के सन्दभ मे रखा जाना चाहिए। हगेल ने उल्लेख किया कि

"इससे पूव प्राचीनकाल मे बालका को इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान के क्षेत्र मे ज्यादा लम्बे समय तक रहन की अनुमति नही थी। किन्तु आधुनिक काल की प्रवृत्ति भी बोध के क्षेत्र पर स्वय को एक सवथा विभिन्न ढग से उदित करती है और अपने स्वय के ससार म प्राचीन प्रवृत्ति की अपेक्षा अति अधिक गहराई से प्रवेश करती है। इसी कारण हमारे युग मे अतीन्द्रिय ससार यथासमय किसी बालक की अवधारणाओ के समीप हो जाता है। विद्यालय इसमे परिवार की अपेक्षा अत्यधिक सहयोग प्रदान करता है। उत्तरवर्ती के भीतर बालक का उसकी प्रत्यक्ष अद्वितीयता के कारण मूल्याकन किया जाता है, उसस, इस बात पर विचार किये विना ही, कि उसका व्यवहार अच्छा है या बुरा, प्रेम किया जाता है। इसके विपरीत, विद्यालय म बालक की सहजता अपना महत्व खो देती है, वहाँ उसे इस सीमा तक मान्यता दी जाती है कि वह एक विशिष्ट मूल्य से सपन्न है, कि वह किसी बात म आगे बढता है, वहाँ उससे केवल प्रेम ही नही किया जाता किन्तु सामान्य मानदण्डो के अनुसार उसकी आलोचना की जाती है और उसे निर्देश दिये जाते हैं, उसे कठोर नियमो की अनुरूपता मे और शिक्षा के विशिष्ट विपयो की सहायता से शिक्षा दी जाती है और साधारणतया उस विशिष्ट व्यवस्था के अधीन किया जाता है जा उस सबको। मना करती है, जो केवल स्वय मे इसलिए हानिरहित है क्योकि कोई किसी को इसे करने की अनुमति नही दे सकता। इस प्रकार विद्यालय पारिवारिक जीवन से नागरिक समाज मे निश्चित सक्रमण प्रस्तुत करता है।"[1]

हम विशेप रूप से ससार के प्रत्यक्ष सवेदी बोध स अतीन्द्रिय बोध, अर्थात्, ऐसा बोध जो अमूत अवधारणाओ की शब्दावली मे अभिव्यक्त किया जाता है, की ओर के सक्रमण के महत्व पर ध्यान दें। शिक्षा की गतिविधियो मे बालक अध्यापक

1 वही, पृ० 103

के निर्देशन मे वैज्ञानिक अवधारणाओ के साथ काय करता है और उन्हे आत्मसात कर लेता है। ऐसी गतिविधियाँ विज्ञान के क्षेत्र मे परिवतन उत्पन्न नहीं करता, क्योकि बालक वज्ञानिक ज्ञान के क्षेत्र का विस्तार नहीं करता, किन्तु उसकी योग्यताओ, विशेषकर वज्ञानिक अवधारणाओ के क्षेत्र मे सामान्यीकृत कार्यों म लग जाने की उसकी क्षमता के विकास म योगदान करके, बालक के व्यक्तित्व के क्षेत्र म परिवतन पदा करती हैं। ऐसी शिक्षा सम्बन्धी गतिविधियो के सदभ मे जो प्रारभिक विद्यालय के बालको के समग्र जीवन के विशिष्ट स्वरूप की परिभाषा करता है, वे यथाथ के सम्बन्ध मे सैद्धान्तिक दृष्टि के बुनियादी तत्वो, मानव सक्रियता के सैद्धान्तिक रूपो के अनुकूल स्वय को बनाने और अमूत अवधारणाओ के विषय मे काय करने की योग्यता को प्राप्त और विकसित करते है। यह प्रासगिक आयु वग की प्रधान नवीन मनोवैज्ञानिक सरचना है।

हमने व्यक्तित्व-सक्रियताओ और उसकी मनोवैज्ञानिक बनावट म अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूण उन परिवतनो, जो विद्यालय शिक्षा के प्रारभ के सम्बन्ध मे घटित होते है, को सूचीबद्ध किया है। निस्सदेह हमारा प्रतिपादन इस प्रकार के विकास के एक निश्चित आदश रूपभेद का विवरण देता है। साधारणतया विद्यालय शिक्षा की मूत स्थितिया मे ऐसी बहुविध समस्याएँ उत्पन्न होती है, जिनकी हम यहाँ जान-बूझकर उपेक्षा करते हैं। उनमे अध्यापको और समकक्षा के साथ स्थिर पारस्परिक सम्बन्धो की स्थापना मे कठिनाइयाँ, अनुशासन की माँगो और अवाछनिक उपलब्धियो के मूल्याकन की विशिष्ट व्यवस्था अथवा सीखने म रुचि के अभाव को समायोजित करने से सम्बन्धित समस्याएँ सम्मिलित हैं। अपने वतमान अध्ययन म हम व्यक्तित्व विकास म प्रारम्भिक विद्यालय के स्थान की सबसे अधिक सामान्य ढग से परिभाषा करना चाहते हैं और तदनुसार, विद्यालय जीवन की प्रकृति का विस्तार स विश्लेषण करने की अपेक्षा हम एक बार फिर अपने मुख्य विषय, यथा, व्यक्ति विकास के बुनियादी माग के स्वरूप की ओर मुडेंगे।

प्रारम्भिक विद्यालय-आयु (सात म ग्यारह वष) मानव के व्यक्तीयन मे एक विशिष्ट अवस्था को प्रस्तुत करती है। विद्यालय-पूव आयु के बालको का अमूर्तिमान ससार ज्ञान पर आधारित होता है, प्रारभिक विद्यालय-आयु के बालक का ससार 'अवधारणाओ की ओर ऊपर चढने' की उस प्रक्रिया के प्रारभ को प्रस्तुत करता है, जो बालक के व्यक्तीयन मे अगला कदम है और उसके चिन्तनशील प्राणी के रूप मे आविर्भाव, एक चिन्तनशील व्यक्ति की एक ऐसी आत्मनिष्ठा की ओर अग्रसरता जो एक वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक विश्व-दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती है, को प्रकट करता है। यह शिक्षा के प्रधान अथ—इन्द्रियजन्य बोध म अमूत चिन्तन की ओर सक्रमण—को भी परिभाषा करता है। अमूर्तिकरणो की सरचना, जो मानव-बोध का सवम अधिक शक्तिशाली उपकरण है की प्रक्रिया पर अधिकार

कर लने पर बालक वज्ञानिक ज्ञान के बडे भडार का आत्मसात करने, ससार के सम्बन्ध म अपनी अवधारणा का विस्तार करने और इस प्रकार स्वय को पदार्थों और सम्बन्धो के ससार मे भविष्य के कार्यों के लिए सैद्धान्तिक रूप से तयार करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। फिर भी वैज्ञानिक सक्रियता के तरीका पर अधिकार करना क्यो इतना महत्वपूण है, इसका दूसरा कारण यह है कि आगे की, व्यक्तिवत्त के रूप से और अधिक अग्रसर विकास-अवस्थाओ म, जब अन्य आवश्यकताएँ और रुचिया उसकी गतिविधिया पर हावी हो जाएँगी, बालक के वतमान ज्ञान म और अधिक वृद्धि करने के लिए सीखने की योग्यता की आवश्यकता पडेगी। इस अथ मे सीखना मानव सक्रियता (जैसे खेल, काम और सामाजिक सम्पक) का एक सावभौम रूप है।

अब बालक ने अध्ययन करना सीख लिया है। वह पहले ही मे विद्यालय म 3 4 वप बिता चुका है और विद्यालय जीवन किसी नवीन वस्तु के रूप म समझा जाने वाला न रहा है। विद्यालय का कोई नवीन विषय अब और अधिक समय तक किसी नवीनता के रूप मे प्रतीत नही होता किन्तु केवल दिनचर्या का विषय है। बालक विद्यालय के लिए अभ्यस्त हो गया है और अध्यापको और समकक्षो के साथ उसके सम्बन्ध स्थापित हो चुके हैं। मानव ज्ञान से सम्बन्धित मूल्यवान विरासतो को आत्मसात करने का उसका काय गहन रूप से आगे बढ रहा है। हमारे आदश प्रतिमान मे प्रत्यक वस्तु सामान्यतया अग्रसर होती प्रतीत होती है। फिर भी हम जानत है कि यह तूफान से पहले की शान्ति है। क्याकि बाल्यावस्था समाप्त हो रही है और व्यक्तित्व के विकास मे एक सक्रमणकाल—अपनी विशिष्ट कठिनाइयो के साथ किशोरावस्था का काल—देखा जा सकता है। बाल्यावस्था के पश्चात् व्यक्तित्व विकास कैसे अग्रसर होता है? हम इस पर अगले अध्याय म विचार करेंगे।

" हम सब किशोरावस्था के विशाल क्षेत्र को जानते हैं। कालान्तर मे यह कोई विशेप वात नही कि कितने अतिरिक्त दशक अतीत मे जा चुके हैं, वे उस विमानशाला को भर नही सकते जिसमे वे सस्मरणो के रूप मे पृथकता से और समूहो मे, दिन के समय और रात मे अतिरिक्त इंधन की जरूरत वाले वायुयानो के समान उडते है। दूसरे शब्दो मे, हमारे जीवन के ये वर्प एक ऐसे भाग का निर्माण करते हैं जो सम्पूर्ण से अधिक वडा हो जाता है, और फॉस्ट, जिसने उनका दो वार अनुभव किया, उस किसी वस्तु के माध्यम से जीवित रहा जो पूणतया अचिन्तनीय है और उसकी किसी गणितीय विरोधाभास से तुलना की जा सकती है।"

—वोरिस पेस्टरनाक

अध्याय 4

वाल्यावस्था के पश्चात्

किशार का ससार
क्या किशोरावस्था सदा एक 'कठिन' अवस्था थी ?
सुकुमार बालक की सक्रमण-अवस्था
सकल्पो अथवा उद्देश्यो की दुबलता
स्वैर-कल्पना की प्रशसा मे
अपने जीवन-पथ पर चलना प्रारभ करने वाले युवक का प्रथम कतव्य
व्यवसाय का चुनाव किसी के जीवन-पथ को चुनना है

किशोर का ससार

किशोर के लिए रूसी शब्द (पोदरोस्तोक) का व्लादिमिर दहल के प्रसिद्ध कोष के अनुसार शाब्दिक अर्थ है 'विकास की प्रक्रिया म कोई बालक'। किन्तु क्या यही सब समाप्त है ? सभवत नही क्योकि कोई केवल विकास पर आरोप्य कठिनाइयो की शब्दावली म उन विरोधाभासा और समस्याओ, जो बाल्यावस्था के अनुवर्ती व्यक्तित्व विकास को प्रकट करते हैं और जो वयस्का के साथ-साथ स्वय किशोरो म भी अत्यधिक चिता और उद्विग्नता उत्पन्न करते हैं, का स्पष्ट नहीं कर सकता।

यह सूत्र 'और अधिक दीघकाल तक बालक नही—अभी वयस्क भी नही' स्पष्ट रूप से किशोर जीवन के सक्रमणकालीन स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। क्योकि किशोरावस्था व्यक्तित्व की वह दशा है जिसम व्यक्ति बाल्यावस्था का आनन्दपूर्ण आयु से अभी ही मे सम्बन्ध विच्छेद कर चुका है, किन्तु स्वय को अभी वयस्क जीवन मे नही पा सका है, अभी, तदनुरूप, जीवन के ढग और सक्रियता के रूप स अभिलक्षित परिपक्व व्यक्तित्व नहीं बन पाया है। किसी किशोर का जीवन किसी ऐसी वस्तु का प्रवेश-द्वार है जो सदा के लिए अदृश्य हो रही है (बाल्यकाल) और जो प्रत्याशित भविष्य (वयस्कता) है। यही कारण है कि किशोर का मस्तिष्क अस्त व्यस्त रहता है, क्योकि वह ससार म और साथ ही स्वय के ससार म अपनी स्थिति को प्रमुखत अवधारणा, अपनी सजीव सक्रियताओ की परिधि के बाहर स्थित उसके अस्तित्व के लिए एक आदश के रूप म अनुभव करता है। उदाहरणाथ, मानो यह ऐसा ही है, वह उसे देखने म असफल रहता है जो ऐसा स्पष्ट है कि यथाथ म वह आनन्दित है क्याकि वह सम्पूर्ण एव शक्तिशाली जीवन जीता है, उसका शरीर विशाल जीवनी शक्ति की स्थिति म है और उसका उत्साह ऊँचे कार्यों मे लग जाने योग्य है—जस वीरोचित काय, किसी ध्येय के लिए नि स्वाथ सेवा और दूसरे के लिए आत्म-बलिदान।

किशोरावस्था उन मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्तियो के द्वारा अकित होती है जिनके कारण इसकी कठिन', 'चरम बिन्दु की अवस्था' और 'सक्रमण की अवस्था के रूप मे व्याख्या की जाती है। इसके विशिष्ट अभिलक्षण सुविख्यात है और मनोवैज्ञानिक अध्ययनो म उनकी व्याख्या की गयी है किशोर मनमौजी हो जाते हैं,

सक्षेप मे, यह तथ्य कि हम कुछ को 'कठिन' कहकर अभिव्यक्त करत है, किसी बात को स्पष्ट नही करता। अत किशोरावस्था की ''कठिनाइया' के अपेक्षाकृत अधिक यथाथ स्वरूप पर विचार करना उपयोगी होगा।

हम विश्वास करते है कि उस प्रश्न के अमूत विचार से नही के बराबर उपलब्धि होगी। अक्षरश सभी युगो मे वयस्का ने नयी पीढी के विरुद्ध आरोपो के विशिष्ट आक्रमणो की बौछार की है और युवा लोगो मे विपुल सख्या मे दोपो को ढूढ निकाला है किन्तु यह प्रमुख रूप से वद्धो की उस नयी पीढी के सम्मुख बडबडाहट थी जिसका दोष यह था कि वह वद्धो से समानता नही रखती थी। हम किशोरावस्था की एक 'कठिन' अवस्था के रूप मे व्याख्या करने की परिणामिक प्रवत्ति को उस प्रकार के पूवाग्रह, जो दनदिन जीवन के मनोविज्ञान मे प्रचुरता करता है, के रूप मे देखने म प्रवत्त हैं। किन्तु केवल 20वी शताब्दी म ही बुजुआ वनानिको द्वारा निर्मित अनेक वैज्ञानिक सिद्धातो पर हम कस विचार करें? इन सिद्धान्तो म उन कठिनाइयो, जो किशोरावस्था को श्रेणीबद्ध करते हैं, के स्वरूप की अपेक्षाकृत विशिष्ट ढग से परिभाषा की गयी है।

इनमे मे कुछ दृष्टिकोणा पर विचार करें।

एक के अनुमार, किशोर केवल बबर हाता है, इसका कारण उसकी असीम कल्पना, उसका उतावलापन, उसकी सजीवता, धूतता, उसका भुलक्कडपन, उसकी असगति, उसका विस्फोटक स्वभाव और सावधानियो का अभाव है। दूसर के अनुसार, किशोर अधविश्वासो की ओर अपने झुकाव, मतिभ्रम के बिन्दु तक के भ्रम, घमड और अपन सम्मान के सम्बध मे अति सवेदनशीलता, उन शब्दो का अनन्त प्रवाह जो किसी विक्षिप्त व्यक्ति के प्रलापो स मेल खाते हैं, अननुप्रेरित कार्यों, बडबडाहट, स्वाँग भरने और छेडन की ओर प्रवत्ति की दृष्टि से पागल होता है। इस बात पर जोर दिया गया है कि किशोर अपने क्रोध के आवेश, धोखे, क्रूरता, अति मिथ्याभिमान और अहवाद, मदात्यय की ओर झुकाव और नैतिक पतन की दष्टि से प्रच्छन्न अपराधी होना है। अत म सिगमण्ड फ्रायड के मत के अनुसार भी किशोर सव-मैथुनिक प्राणी, लगभग उन्मत्त दिखाई देता है।

सक्षेप म यह धुधला चित्र जो प्रचलित बुजुआ विचारधारा का इस प्रकार का अभिलक्षण हाता है, एक ऐमा चित्र जो गहरे सामाजिक निराशावाद और मानव की क्रियात्मक एव रचनात्मक शक्ति मे विश्वास के अभाव के कारण बिगाड दिया गया है और मानव को एक बबर, पागल, अपराधी और मैथुनिक विक्षिप्त क रूप म चित्रित करता है। यह केवल पाश्चात्य विज्ञान म ही नही किन्तु उसकी कला म भी है कि हम मानव प्राणियो की उस गहरी दुष्ट प्रकृति की पुष्टि करने के अनक प्रयत्न मिलते हैं जिसकी जडें बाल्यावस्था, किशोरावस्था एव युवा

वयस्कता म उत्पन्न होती है। हम कुछ उदाहरणों का उल्लेख करें जिनकी कलात्मक वरीयताएँ अत्यधिक भिन्न होती हैं किन्तु जो वाल्यावस्था की अन्तर्निहित भ्रष्टता पर बल देने म सामान्य दृष्टिकोण अभिव्यक्त करती हैं विलियम गोल्डिंग की लॉर्ड ऑव दी फ्लाईज, र ब्रैडबरी की बल्ट एण्ड जीरो अवर और डब्ल्यू० ब्लैटी की दी एग्जोरसिस्ट। सबसे अधिक प्रगतिशील लेखकों जैसे अर्नेस्ट हैमिंग्वे, विलियम फॉकनर और टॉमस वूल्फ के साथ-साथ विलियम गोल्डिंग और रे ब्रैडबरी की कृतियों म किशोरावस्था के सम्बन्ध म निराशावादी विचार वस्तुत उस वतमान बुर्जुआ समाज, जिसम वे रहते हैं और अपराध, भ्रष्टाचार और नैतिक पतन से छलनी किये हुए आज के समाज के बालकों और किशोरों के दु खद भाग्य, का प्रतिबिम्ब हैं।

कोई इस तथ्य की उपेक्षा नही कर सकता कि किशोरों के जीवन म अनेक ऐसे विरोधाभास अन्तर्विष्ट होते है जिनकी अभिव्यक्ति, प्रथम दृष्टि मे, किशोरावस्था मे सम्बन्धित अनेक विभिन्न दृष्टिकोणों, जिनम वे भी सम्मिलित हैं जिनका हमने ऊपर उल्लेख किया है, के लिए आधार प्रस्तुत करती है। यह वस्तुत सत्य है कि कोई किसी किशोर की मनोवैज्ञानिक संरचना म ऊपर बताये गये दृष्टिकोणों को अभिपुष्ट करने के लिए बहुत कुछ देख सकता है एक विक्षुब्ध कल्पना बर्बरता की एक विशिष्टता, अननुप्रेरित कार्यों की ओर प्रवृत्ति विवेक के अभाव, अवज्ञा अपराधिक प्रेरणाओं और लैंगिक परिपक्वता के समीप जाना स्व-मैथुनिकता के रूप म देखी जा सकती है। किन्तु एक प्रश्न उठता है क्या किशोरावस्था की वैयक्तिक अभिव्यक्तियों को अप्रतिबद्ध करना और उन पर असंगति के बिन्दु तक आवश्यकता से अधिक बल देना, इस प्रकार एक मानदण्ड को रोगविज्ञान के रूप मे रूपान्तरित करना युक्तियुक्त है? क्योंकि किसी आदर्श की ओर संघपरत किसी दिव्य' प्राणी का सर्वथा विपरीत चित्र 'अंकित करना भी सम्भव है, वह ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो अपने मनोवेगो म संवेदनशील, भावुक और दोषपूर्ण (क्योंकि ये विशेषताएँ किशोरावस्था के वैसे ही अभिलक्षण हैं जो पहले बताये गये अभिलक्षण है) है। किन्तु एक अमूर्त के बदले दूसरा क्या रखा जाय? क्योंकि 'देवता' और 'असुर' दोनों ही मानव जीवन मे समान रूप से असुविधाजनक है— वे अत्यधिक एक-पक्षीय, एक-अत्यागीय और इतने साधारण होते है कि मानव-व्यक्तित्व की सम्पूर्ण जटिलताओं को अभिलक्षित करने मे सक्षम नही होते। इसी कारण हम पहले बताये गये मार्ग—सांस्कृतिक ऐतिहासिक विश्लेषण के मार्ग—का अनुसरण करेंगे, और किशोर की कठिनाइयों के सारतत्व और उनकी चालू अभिव्यक्तियों को समझने के प्रयत्न म सोवियत संघ म किशोरों के विकास को नियन्त्रित करने वाली सामाजिक स्थिति से सम्बन्धित वास्तविक परिवर्तनों पर विचार करेंगे।

निस्सन्देह शिक्षा के क्षेत्र म सोवियत सरकार के सम्मुख आने वाला सबसे प्रथम काय जनता की उस निरक्षरता को दूर हटाना था जो रूस के जारशाही शासन म विरासत म मिली थी। उस समय जनता के विभिन्न आयु-वर्गों (किशोर सम्मिलित) की शिक्षा केवल पढने लिखने और अकगणित सिखाने स ही सम्बन्धित थी।

लेनिन ने अक्षरज्ञान की शिक्षा को जनता के विशाल राजनीतिक जीवन म भाग लेने की आवश्यकता के साथ जोड दिया। "एक निरक्षर व्यक्ति राजनीति से बाहर खडा रह जाता है, सबसे पहले उसे अपनी ए बी सी को सीखना होगा।"[1]

यह काय उस प्रारभिक शिक्षा द्वारा पूरा किया गया जिसका उद्देश्य बुनियादी साक्षरता प्रदान करना और इस प्रकार अपेक्षाकृत कुशल प्रकार के श्रम और इसकी सामाजिक राजनीतिक जीवन म सचेतन अन्तर्लीनता म जनता की भागीदारी के लिए सामाजिक-मनोवैज्ञानिक पूर्वापेक्षाओ का विकास करना था। सक्षेप म, यह साक्षर एव सुसस्कृत सोवियत श्रमिको के विकास के लिए एक कायक्रम था।

1920 और 1930 के दशको मे किशोर अधिकाश म किशोर श्रमिक थे। उस समय बाल्यावस्था से वयस्कता की ओर सक्रमण आज की अपेक्षा अधिक पहले स्थान ले लेता था। समाज म किशोर की स्थिति इस तथ्य से निर्धारित की जाती थी कि तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियो मे वे देश के 'श्रम सचयो की अपेक्षा श्रम-साधनो' का एक भाग बनाते थे। इसके अनुसार उस समय किशोरो का मनोविज्ञान श्रमिक लोगो का मनोविज्ञान होता था।

1920 और 1930 के दशको म मनोविज्ञानवेत्ताओ द्वारा यह बात भली प्रकार समझ ली गयी। जिस मुख्य बिन्दु का उन्होने अवलोकन किया वह बुर्जुआ किशोर और श्रमिक किशोर के बीच का अन्तर था। लेव विगोत्स्की ने लिखा कि सक्रमणकालीन अवस्था (किशोरावस्था) स सम्बन्धित निरीक्षणो और तथ्यात्मक आँकडो की वह अत्यधिक बहुसख्या जिसने उस आयु स सम्बन्ध रखने वाले परपरागत सिद्धान्त के लिए एक आधार के रूप मे काम किया, समाज के उच्चतर वर्गों के किशोरो के अध्ययनो स पूरी तरह सम्बन्धित थी किशोर श्रमिको से सम्बन्ध रखने वाले अध्ययन नगण्य थे और किसानो के सम्बन्ध म कोई नही था। एडुअड स्प्राजर जसे पाश्चात्य मनोविज्ञान के प्रमुख प्रतिनिधियो ने भी यह मान लिया कि सभी किशोरो के सम्बन्ध मे किसी सामान्य शिक्षा का विकास करना असभव है और मनोविज्ञानवेत्ता विशिष्ट देशो म बुर्जुआ किशोरो के अध्ययनो तक ही अपने

---

1 वी० आई० लेनिन, 'दी न्यू इकॉनामिक पालिसी एण्ड दी टास्क्स आव दी पालिटिकल एजूकेशन डिपाटमण्ट्स', कलेक्टेड वक्स वाल्यूम 33, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को, 1973, पृ० 78

कार्य को सीमित करन लगे।

1920 और 1930 के दशकों मे सोवियत मनोविज्ञानवेत्ताओ द्वारा कार्यान्वित अध्ययनो ने स्थापित किया कि बुर्जुआ और श्रमिक किशोरो के विकास का वही स्वरूप बडी भिन्नता लिये हुए होता है। श्रमिक किशोरो का विभेदीकरण लक्षण यह था कि उन्ह जीवित रहने के लिए काम करना पडता था। उनके लिए यह एक मौलिक महत्वपूण आवश्यकता थी अथवा वस्तुत महत्वपूण आवश्यकताओ का, जिन्ह प्राथमिकता प्रदान की गयी थी, एक सम्पूण पुज था। अपने अस्तित्व के लिए सभरण, भोजन के लिए काम करने की आवश्यकता ऐसी प्रमुख आवश्यकता थी जिस सक्रमण काल के दौरान यथाथ रूप मे मानना पडा। यही कारण है कि किशोर श्रमिक, प्राय सास्कृतिक परिपक्वता के सक्षिप्त माग से गुजरत और उनके यौवन के वप प्राय दबे हुए, कुचले हुए और निस्तेज, अथवा, जसा पॉवेल ब्लॉन्स्की द्वारा बताया गया, वे प्राय किशोरावस्था, सास्कृतिक विकास की सर्वोच्च अवधि, से सवथा वचित हो जाते थे। किशोरावस्था मानवता की अवधि है, यह अत्यधिक परिवर्तित होती है, अस्थिर और चचल होती है।

सक्षेप म, 1920 और 1930 के दशको म कोई सोवियत सघ की आबादी की सम्पूण जनता के लिए किशोरावस्था की परिभाषा करने की आवश्यकता के सम्बन्ध मे केवल सोच ही सकता था। यह प्रक्रिया शिक्षा के आगे के विकास से सलग्न थी और 1930 के दशक के अन्तिम भाग म प्रारम्भ हुई। यह 1950 के दशक के अन्तिम भाग म, 1958 म एक सामान्य आठ वर्षीय शिक्षा (अपूण माध्यमिक) की स्थापना के माध्यम से, सम्पूण की गयी। उस समय तक सामाजिक शिक्षा की प्रणाली—विद्यालय पूव (7 वप की आयु तक) और विद्यालय-आधारित (15 वष की आयु तक)—व्यापक सामाजिक पमाने पर स्थापित की गयी थी। विशेप रूप से इसका अथ यह था कि सोवियत सघ मे किशोरावस्था की आयु विद्यालय की अवधि से सयुक्त थी।

अब एक किशोर का जीवन शिक्षा प्राप्त करने और विज्ञान के मूलतत्वो का ज्ञान प्राप्त करने म व्यतीत होता था। प्रमग यह है कि सोवियत सघ मे वतमान किशोरावस्था का इतिहास प्रारभ होता है।

किशोरावस्था की आयु के विद्यालय की आयु के रूप म आविर्भाव और व्यापक अनुमोदन ने सामाजिक सम्बन्धो की व्यवस्था के भीतर किशोरो की स्थिति को मूल रूप से परिवर्तित कर दिया है। अब से आग किशोर विद्यार्थी हैं। तदनुसार, उस आयु म व्यक्तित्व विकास की विषय-वस्तु से सम्बन्धित सामाजिक आवश्यकताएँ परिवर्तित हो गयी है। विकसित समाजवादी समाज म सामाजिक शिक्षा की प्रणाली किशोरो मे व्यक्तित्व के उन गुणो (आवश्यकताओ और प्रेरकताओ) का जो उनके लिए सामाजिक उत्पादन और नागरिक जीवन मे सक्रियता

से नियोजित होना सभव बनाते हैं, विकास करने की आवश्यकता पर आधारित है। इस प्रकार के बडे-बडे गुणा म सम्मिलित है (1) काम करने की आवश्यकता, काम करने की योग्यता और काम करने की एसी आदतें जो किसी प्रकार की सामाजिक दष्टि स महत्वपूण गतिविधि म तत्परता से नियोजित होना, कोई व्यवसाय प्राप्त करना, विवेकशीलता से सगठित होना, और, जब आवश्यक हो, अपनी काम करने की परिस्थितिया और उपकरणा का सृजनात्मक रूप से सुधार करना सभव बनाती हैं, (2) विभिन्न समुदायो मे उन्नत नैतिक और सामाजिक आदर्शों के आधार पर सामाजिक सप्रेषण के बुनियादी स्वरूपा और साधना का उपयोग करने की योग्यता, (3) एक वैज्ञानिक, कलात्मक, नैतिक तथा अधिक दृष्टिकोण, जो वैज्ञानिक विश्व-दृष्टिकोण का आधार होते है को उत्पन्न करने की योग्यता।

फिर भी किसी का इन कार्यों के क्रियान्वयन को किसी एसी 'स्वचालित' वस्तु के समान नही समझना चाहिए जिसे केवल प्रासगिक 'शिक्षाशास्त्रीय तकनीको और उपकरणो' की आवश्यकता है। उस ढग को समझना भी आवश्यक है जिसमे ये चालू काय, जो किशोरो के सम्मख आते है, आज के युवक के वास्तविक मनोवज्ञानिक अभिलक्षणा से सम्बधित हैं। हमारा यह दष्टिकोण है कि आज के किशोरो की बहुत-सी कठिनाइयाँ उस जटिल सामाजिक स्थिति का परिणाम है जिसम उनका विकास होता है।

आज, शिक्षाशास्त्रीय मनोविज्ञान के क्षेत्र म सोवियत मनोविज्ञानवत्ताओ के अध्ययनो (वसिली डवीडोव और डेनिल एल्कोनिन के अध्ययन) के परिणाम स्वरूप यह स्पष्ट हो गया है कि किसी व्यक्ति की सामाजिक चेतना (वैज्ञानिक, कलात्मक, नतिक, विधिक एव अन्य) के आधार पहले ही से विद्यालय-वर्षो के प्रारभिक काल मे ही, विकसित हो सकते है और होने चाहिए। वसिली डेवीडोव और उनके सहयोगियो के प्रयोगात्मक अध्ययन प्रकट करते है कि प्रारभिक विद्यालय की शिक्षा गतिविधियो की विषय वस्तु मे एसे परिवतन छोटे बालको मे मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओ की स्वायत्तता के विकास, अपने स्वय के व्यवहार सम्बधित कार्यों और विचारो की योजना बनाने की योग्यताओ, सक्षेप म, उन क्षमताओ, जो परम्परागत रूप से किशोरावस्था से जुडी हुई थी, म योगदान करते हैं। किसी को यह भी जोड देना चाहिए कि हमारे आज के प्रारभिक विद्यालय अभी इस काय को पूरा करने म सक्षम नही हैं यद्यपि प्रारभिक शिक्षा के सुधार इस कमी को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। यदि कोई इन प्रस्थापनाओ को स्वीकार कर लेता है जो न तो अतार्किक हैं और न ही प्रयोगात्मक अनुसधानो के द्वारा असमर्थित है, तो निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होता है उन सामाजिक परिस्थितियो मे जहाँ शिक्षा के बुनियादी रूप पहले ही से प्रारभिक विद्यालयो पर

केन्द्रीभूत किये जाते है, तब किशोरो की प्रधान गतिविधि क्या होती है ?

किशोरो की प्रधान गतिविधि मे परिवतन (जिन्ह केवल अकादमिक कार्यों के रूप मे ही परिवर्तित नही किया जा सकता) अभी 1960 के दशक म उल्लिखित किये गये। विशेप रूप से, तातियाना ड्रैगूनोवा और डेनिल एल्कोनिन ने एक विशिष्ट अध्ययन मे स्थापित किया कि किशोरा के बीच म घनिष्ठ व्यक्तिगत सम्बन्धो के विकास से सम्बन्धित एक विशिष्ट सक्रियता इस अवस्था मे प्रकट होती है और विकास करती है। इस सक्रियता की *अन्तर्व्यक्तिगत सम्पक* के रूप म व्याख्या की गयी है। इस सक्रियता की अभिलक्षणात्मक विशेपता यह है कि अपनी विपय-वस्तु के रूप मे यह किशोरो के बीच के सम्बन्धो मे उन सम्बन्धा, जो वयस्को के बीच म वतमान होते हैं, का दुहराने वाल विशिष्ट रूप को प्रस्तुत करती है। *उस सामाजिक सम्पक के दौरान तदनुरूप मानदण्डो के व्यापक* अन्वेषण और अवाप्ति के साथ ही एक 'जांच' और 'परीक्षण घटित होता है। एल्कोनिन के अनुसार जीवन और व्यक्तियो के सम्बन्धो के प्रति दृष्टिकोणो के साथ ही व्यक्ति के स्वय के भविष्य से सम्बन्ध रखने वाले दष्टिकोण इस प्रकार के अन्तर्व्यक्तिगत सम्पक के अन्तगत विकसित होत है जसे जीवन के व्यक्तिगत बना लिये गये अथ का विकास होता है। परिणामस्वरूप आत्म-जागरूकता 'अतमुखीकृत सामाजिक चेतना' (विगोत्स्की) के रूप में विकसित होती है। ड्रैगूनोवा का विश्वास है कि किशोरावस्था की केन्द्रीय नवीन रचना अपने आपको एक वयस्क के रूप मे मानत हुए दूसरो के द्वारा वयस्क समझे जाने के प्रयत्न सहित वयस्कता का वह बोध है जो वयस्कता के विभिन्न पहलुओ और किशोरावस्था की अन्य घटना क्रियाओं (हम इस विपय की ओर बाद मे लौटेंगे) के अनुकरण मे अभिव्यक्त होता है।

सक्षेप मे, अध्ययनो ने दिखा दिया है कि किशारावस्था को शिक्षा की गतिविधियो की समस्याओ के रूप मे परिणत नही किया जा सकता किन्तु यह वस्तुत वह अवधि है जिसमे सामाजिक सम्पक के मानदण्डो और तरीको का विकास होता है। डेविड फ्लैड्स्टीन ने इन विचारो म एक महत्वपूण बिन्दु यह जोडा है, यथा, *किशोर की प्रधान गतिविधि सामाजिक रूप से उपयोगी गतिविधि की व्यवस्था* (श्रम, कलात्मक, सामाजिक-सगठनात्मक, खेलकूद, शिक्षा आदि) के अन्तगत सामाजिक सम्पक है। वे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि किशोरावस्था म व्यक्तित्व-विकास के लिए मुख्य शत सामाजिक रूप से उपयोगी गतिविधि के एक रूप का दूसर रूपा म *सक्रमण है। इस प्रकार का दृष्टिकोण शिक्षा और प्रशिक्षण की* प्रक्रिया का उन तरीको से निर्माण करना सभव बनाता है जा व्यक्तित्व विकास के लिए सभावनाओ के दृष्टिकोण से अधिकतम प्रभावशाली है, अर्थात्, यह विद्यालय के बालको मे अपन कार्यों के सजग नियमन के उद्देश्यपूण निर्माण, और दूसरे

व्यक्तियो की भावनाओ, रुचियो और इच्छाओ का ध्यान रखने और अपने स्वय के व्यवहार म स्वय को उनके अनुकूल बनाने की योग्यता म योगदान करता है। दुर्भाग्य से, इसे मानना होगा कि विद्यालय जीवन की वतमान व्यवस्था अभी किशोरावस्था की इस प्रकार की प्रमुख गतिविधि सदा प्रदान नही करती और यही वयस्को और किशोरो म बीच 'कठिनाइयो और सघर्षों का बडा कारण है। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप स देखा जा सकता है कि किशोरो को 'केवल' शिक्षा के लिए ही नियत कर देना और कनिष्ठ विद्यार्थियो के मामले म होने वाले आज्ञा पालन, एव अनुशासन की अपेक्षा रखना अनिवाय रूप से असफल होगा, क्योंकि वे आज की किशोरावस्था और उसके विशिष्ट मनोवैज्ञानिक सगठन के विशेष अभिलक्षणो पर विचार नहीं करते।

सुकुमार बालक की सक्रमण-अवस्था

रूस के सबस महान कवि अलेक्जेण्डर पुश्किन न, एक शरत् काल म बोल्डिनो मे बडी सजनात्मक अत प्रेरणा के क्षण म, स्पष्टतया अपनी किशोरावस्था की स्मृतियों के प्रभाव के अधीन, लिसियम के उन वर्षों की स्मृतियो के प्रभाव अधीन जब वे स्वय इतने मनमौजी और नटखट थे जसा एक 15 वष का सुकुमार बालक होता है, '15 वष की आयु का परिच्छ' लिखी यहाँ उसकी प्रारभिक पक्तियाँ हैं

"मैं पद्रह का हो जाऊँगा, और जल्दी ही—आदमी,
इसका विचार ही मुझे आनन्द देता है।
किन्तु अब तक भी कोई मुझे तुच्छ समझने की हिम्मत नही करता,
कोई मेरी ओर घणा स नही ताक सकता
मेरे साथ तिरस्कारपूण अथवा हल्का व्यवहार नही कर सकता,
मैं गुलाबी गालो वाला, मुस्कराता हुआ बालक नही हूँ
अभी से मेरी मूछें उग आयी है,
मेरी मुखाकृति भाले वाले की मुखाकृति हैं—यह घमड स भरी है,
मेरी आवाज़ रूखी और तेज भी है,
और लडाई के लिए मैं सदव तयार हूँ।'[1]

18वी शताब्दी के साहित्य मे ल...
विकास के एक विशिष्ट महत्व, उदाहर...
लडके का आदमी की ओर सक्रमण, क...

1 इरिना अलेक्जनोवा द्वारा ...

होती हुई कामवासना से अभिलक्षित एक विशिष्ट काल की स्थिति, एक ऐसे काल की जब किसी वयस्क मनुष्य के मनोविज्ञान की प्रथम विशेषताएँ किशोर लडको के मोटे बिना दाढी के गालो और बाह्य रूप से स्त्रण चेहरो के पीछे दिखाई देने लगती है।

आज किशोर इस प्रसिद्ध साहित्यिक आकृति मे नही के बराबर मेल खाते है, आशिक रूप स इसलिए कि वे अब पहले की अपेक्षा अधिक जल्दी परिपक्व होते है (त्वरण) जबकि उनका बाह्य स्वरूप खेल-कूद और शिक्षा के द्वारा अधिक पुरुषोचित और कम कोमल और स्त्रण बनाया जाता है।

शरीरशास्त्र के रूप से आज किशोर लडका और लडकिया की उनके मैथुनिक लिंग के सम्बन्ध की दृष्टि स अपेक्षाकृत भलीभाँति परिभाषा की गयी है, और, उदाहरण के लिए, आधुनिक साहित्य म अब हमे प्रारम्भिक 17वी शताब्दी के बरोक उपन्यासा की विषय वस्तु जहाँ पुरुष की वेशभूषा का स्त्री की वेशभूषा मे परिवतन और इसका उलटा भी अनेक मनोरजन करने वाले साहस कर्मों का महत्वपूण भाग था और अधिक प्राप्त नही होती। फिर भी, किशोर-मनोविज्ञान की निश्चित विशेषता, जो सुकुमार बालक के सक्रमण की अवस्था के प्रतीक के रूप म बनायी गयी है, आज भी बाल्यावस्था से वयस्कता की आर सक्रमण के एक महत्वपूण प्रवेश-द्वार को प्रस्तुत करना जारी रखती है। अत हम इसकी परीक्षा करेंगे।

अपेक्षाकृत प्राचीन काल मे लगिक परिपक्वता बाल्यावस्था के अन्त और किशार के वयस्क-जीवन की आर सक्रमण काल को व्यक्त करती थी। प्राचीन लोग लगिक परिपक्वता के आरम्भ को, किसी वयस्कता तक पहुँचने वाले व्यक्ति को सनिक सेवा, पारिवारिक जीवन, और सामाजिक सस्थाओ मे श्रमिक नियोजन के भार के योग्य मानने के लिए, पर्याप्त आधार के रूप मे देखते थे। किशोर को कुछ दीक्षा कमकाण्डो म उपस्थित किया जाता था जिनके बाद वह तुरन्त अपने सामाजिक एव नागरिक कतव्यो को निभाना आरम्भ कर सकता था। आज स्थिति भिन्न है। जबकि लैगिक परिपक्वता का प्रारम्भ अपेक्षाकृत सुस्पष्ट है (विशेषकर विशुद्ध बाह्य अभिलक्षणो और दैहिक परिवतनो की स्थिति मे, तदनुरूप अगो से सम्बन्धित शारीरिक परिवतनो और अभिलक्षणो के उल्लेख की आवश्यकता नही), यह किशोर के और युवा वयस्क के व्यक्तित्व विकास मे स्पष्टतया निश्चित रूप प्राप्त नही करती। लगिक परिपक्वता का प्रारम्भ लडकियो और लडको के लिए तात्विक रूप म विभिन्न समयो पर होता है और इसके अतिरिक्त किसी निश्चित लिंग म महत्वपूण रूपान्तरण प्रकट होते हैं। किशोर पहले की तरह ही विद्यार्थी बना रहता है और अधिक मात्रा मे अपने परिवार पर निर्भर होता है और नागरिक अधिकारो मे सम्पन्न नही होता। उसकी पारिवारिक जीवन का सचालन करने

की विशुद्ध शारीरिक तत्परता और बालक के रूप म उसकी वास्तविक स्थिति म बीच एक गैर-सम्बन्ध विकसित हो जाता है। इसके अतिरिक्त, शारीरिक विकास अभी अवयव सस्थान की सम्पूण आगिक परिपक्वता (विकास जारी रहता है), और, तदनुसार, केवल सामाजिक दष्टि से ही नहो किन्तु शारीरिक दष्टि से भी लैंगिक सक्रियता और बच्चो को उत्पन्न करने की सिफारिश नहीं की जा सकती।

लेव विगोत्स्की ने इस स्थिति को किशोरावस्था का सबस अधिक महत्वपूण अन्तविरोध समझा और उसे रेखाचित्र के द्वारा ऐसे त्रिभुज के रूप मे प्रस्तुत किया जिसके शीष लैंगिक परिपक्वता के प्रारम्भ, सम्पूण आगिक विकास और सामाजिक प्रौढता को प्रतिबिम्बित करत हैं। उनका गैर-सहसम्बन्ध यथासमय उस विशेष बिन्दु की परिभाषा करता है जहाँ विकासशील व्यक्तित्व स्वय को खोजता है। जबकि अपेक्षाकृत पहले के ऐतिहासिक युगा म लगिक परिपक्वता का प्रारम्भ किसी व्यक्ति के उदय और विकास के अवसान को चिह्नित करता था, आज यह मनुष्य के विकास का ऐसा माध्यम बिन्दु है जो अनेक विषयो मे सम्पूण आगिक परिपक्वता और सामाजिक, नागरिक और नैतिक परिपक्वता का पूववर्ती है

यही किशोरावस्था की अनेक समस्याओ, विशुद्ध शिक्षाशास्त्रीय (तारुण्य की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे शैक्षिक प्रक्रिया का निर्माण और लिंगो के बीच म पार स्परिक दढ आकषण के द्वारा चिह्नित परिस्थितियो के अधीन उसकी समाप्ति का अनुसरण) और मनोवज्ञानिक दोनो, का स्रोत है, क्योकि विशुद्ध आगिक कारण (यद्यपि व प्रत्यक्ष रूप से निर्धारित नही करते) महत्वपूण मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व परिवतनो म परिणत होते है। सोवियत मनोवज्ञानिक साहित्य म किशोरावस्था के य मनोवज्ञानिक परिवतन वयस्कता के बोध के रूप मे अभिव्यक्त किय गये हैं।[1] यह किशोरावस्था मे विशिष्ट सामाजिक विकास स्थिति को अभिव्यक्त करने वाला नवीन मनोवज्ञानिक रूपान्तरण है। किशोरो की विशिष्ट सामाजिक गतिविधियो म वयस्को के ससार के व्यवहार और उनके सम्बन्धो के मानदण्डो मूल्यो और ढगो का प्रत्यक्ष बोध और आत्मसात्करण अन्तर्विष्ट है। फिर भी, यह माग किशोर व्यक्तित्व के कुछ विशिष्ट लक्षणो से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयो म रहित नहीं है।

सकल्पो अथवा उद्देश्यो की दुर्बलता

अपनी क्रिटीक आव प्योर रीजन के अन्तिम अनुच्छेदो मे से एक म इमानुअल काण्ट ने उन तीन प्रसिद्ध प्रश्नो को सूत्रबद्ध किया जिनकी परिधि म उसर विचार म,

1 ए० वी० पेत्रोव्स्की (एड०) एज ग्रुप एण्ड पैडेगोगीकल साइकालॉजी मास्को, प्रोग्रेस पब्लिशस, 1984

मानव के सभी आध्यात्मिक आकर्षण आ जाते है, मै क्या जान सकता हूँ ? मुझे क्या करना चाहिए ? मैं किस बात की आशा करने का साहस कर सकता हूँ ? आज लिखने वाले और वर्तमान मे स्वीकृत वैज्ञानिक शब्दावली पर निर्भर रहने वाले मनोविज्ञानवेत्ता इस बात पर ध्यान देना नही चूकेंगे कि काण्ट ने मानव गतिविधियो की प्रेरणा की समस्या को मानव के आध्यात्मिक आकर्षणो के विकास मे एक केन्द्रीय समस्या समझा।

किसी अर्थ मे यह गभीर रूप से सत्य है, और आज का मनोविज्ञान व्यक्तित्व विकास मे प्रेरणाओ की समस्या को अग्रणी भूमिका आवटित करता है कोई किशोर विशिष्ट गतिविधियाँ क्यो सम्पन्न करता है ? वह किस सीमा तक उन प्रेरणाओ के सम्बन्ध मे जागरूक है जिन्होने उसे किसी कार्य को करने के लिए मार्ग दिखाया ? क्या वह अपने सम्बन्ध मे किसी विशेष उद्देश्य की परिभाषा करने और अपने इरादो को क्रियान्वित करने के योग्य है ? किशोरो के लिए कौन से प्रयत्न और रुचियाँ सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं ? ये और अन्य अनेक प्रश्न व्यवहार की प्रेरकता के क्षेत्र से सम्बन्धित हैं।

कोई भी मानव के प्रेरणा सम्बन्धी क्षेत्र के विकास के कई मार्गों मे विभेद कर सकता है (1) वर्तमान प्रेरणाओ का विकास और नवीन प्रेरणाओ का आविर्भाव, (2) विभिन्न प्रेरणाओ के बीच रचनातन्त्रात्मक सम्बन्धों मे ऐसे परिवर्तन जो स्थिर प्रेरकता सम्बन्धी क्रम परम्परा की स्थापना पर केन्द्रित होते हैं जैसे ही कुछ प्रेरणाएँ प्रधान हो जाती है और दूसरी पृष्ठभूमि मे चली जाती हैं, व्यक्ति के द्वारा अनुसरित विशिष्ट दिशाओ का आविर्भाव, (3) प्रेरणा-सम्बन्धी क्षेत्र (मनोवेग और आवश्यकताएँ) और बौद्धिक क्षेत्र के बीच के सम्बन्धो मे परिवर्तन। प्रेरणाओ के स्तर पर यह इस तथ्य मे प्रकट किया गया है कि बालक के विकास के दौरान उसकी आवश्यकताएँ अप्रत्यक्ष बन जाती हैं, 'प्रतिक्रियात्मक' व्यवहार से उस व्यवहार की ओर सक्रमण होता है जो लक्ष्य और इरादो की सजग परिभाषा अर्थात, सजग और स्वायत्त व्यवहार के द्वारा अप्रत्यक्ष कर दी जाती है।

इस अन्तिम बिन्दु पर बल देना युक्तिसगत है, क्योकि विशिष्ट रूप वाली मानव प्रेरणाओ के स्पष्ट अभिलक्षणो को समझने मे अभिज्ञता से परिभाषित उद्देश्यो के अनुसार मानव के व्यवहार को समझना अन्तर्निहित है।

मनुष्य के व्यक्ति-वृत्त मे विकास की लक्ष्य परिभाषा के विषय मे सबसे अधिक सामान्य शब्दावली मे बोलते हुए, इसे किसी अभिज्ञता से परिभाषित उद्देश्य के अनुरूप कार्य सम्पन्न करने की अक्षमता से वयस्को द्वारा परिभाषित उद्देश्यो की प्राप्ति और अन्त मे मनुष्य के द्वारा अपने स्वय के उद्देश्यो की परिभाषा की ओर सक्रमण के रूप मे अभिव्यक्त किया जा सकता है।

स्वायत्त-कार्य के लिए, अभिज्ञता मे परिभाषित उद्देश्यो के लिए सामान्य

बालका मे पहले ही विद्यालय पूव की अवस्था म आविभूत हो जाती है। और वयस्क, साधारणतया, बच्चा के लिए इस प्रकार की गतिविधिया को खाजन का प्रयत्न करत है जो स्वय सबस अच्छे रूप म स्वायत्त कार्यों के लिए उपयुक्त होती है। उदाहरण के लिए, एक बालक स्वय कपडे पहन 'नही सकता' जब वयस्का द्वारा उसे कहा जाता है, किन्तु 'पोशाक पहनने का खेल' खेलते हुए इस काय को सरलता से कर लेता है और आनन्द से करता है।

विद्यालय मे अनुशासन की वतमानता और उन नियमो का कठोरता स पालन करना, जो विद्यार्थिया के व्यवहार के साथ-साथ शिक्षा के नियत कार्यों के नियमित स्वरूप को नियन्त्रित करत है, बालको को ऐसी स्थिति मे रख देता है जो अत्यधिक कठिन होती है और सही रूप म स्वायत्त व्यवहार और नियत कार्यों का अभिज्ञता से सम्पन्न करने की योग्यता के लिए बडी अपेक्षा रखती है। विद्यालय म प्रत्यक्ष प्रेरणा की प्रतिक्रिया दिखाने वाले काय सवथा अनुपयुक्त हो सकत है।

प्रारम्भिक कक्षाआ के विद्यालय बालको का प्रमुखत अध्यापको और माता पिताआ के द्वारा निर्धारित अपने कार्यों के आवटनो और उद्देश्यो को मानना चाहिए। और बालक को वयस्को के आवटनो को नियान्वित करने और निर्धारित उद्देश्या को प्राप्त करने योग्य होना चाहिए। विद्यालय मे अपने प्रथम वष मे प्रवेश लेने वाले सभी बालक इसके लिए प्रस्तुत होते नही प्रमाणित होत। प्राय ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जहा कोई बालक एक उद्देश्य को क्रियान्वित करने की आवश्यकता का सामना करता है जबकि वह स्वय किसी और ही वस्तु को करना चाहता है और इसके अतिरिक्त, वह अपनी प्रत्यक्ष प्रेरणा को रोकने मे असमथ रहता है। इसके अनुसार प्रारम्भिक विद्यालय वर्षों म प्रेरणात्मक विकास का बुनियादी अभिलक्षण एक निर्धारित उद्देश्य के अनुसार काय करने की योग्यता का विकास और अन्य अप्रत्यक्ष इच्छाओ को इसके वशवर्ती करना है।

वस्तुत —और इस बात पर बल देना चाहिए—इसका सम्बन्ध इच्छा नियन्त्रित व्यवहार के उस विकास से है जो मनोवज्ञानिक रूप से विभिन्न दिशाआ म चलने वाली प्रेरणात्मक प्रवत्तिया के बीच के सघष की स्थितियो मे किये गये व्यवहार के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है, जहा एक प्रवत्ति अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान (एक अभिज्ञतापूवक अपनाया गया उद्देश्य) समझी जाती है, दूसरी भावात्मक रूप से अपेक्षाकृत अधिक आकषक समझी जाती है, और जहाँ पूववर्ती उत्तरवर्ती को पराभूत कर देती है। निम्नलिखित इच्छा नियन्त्रित व्यवहार के लिए आवश्यक स्थिति का अनोखा उदाहरण है एक बालक को एक गणितीय समस्या सुलझानी है और वह उस निश्चित क्षण म उस काय को अपने लिए महत्वपूण और प्रधान समझता है किन्तु फिर भी वह टेलीविजन पर एक मनोरजक फिल्म या हाकी मैच देखना चाहता है।

परम्परागत रूप से इच्छा नियंत्रित व्यवहार की समस्या किशोरावस्था से जुड़ी हुई है। यह आंशिक रूप मे न्यायोचित है। किन्तु इस बात पर बल देना महत्वपूर्ण है कि किशोरो के मामले मे यह, वस्तुत, किसी के पहले ही से अपनाये गये निर्णय को क्रियान्वित करने वाले कार्यों की अपेक्षा उस लक्ष्य की स्वायत्त परिभाषा की समस्या है जो अग्रभूमि मे खिसक जाता है। विगोत्सकी ने बताया कि यह इच्छा की दुर्बलता नहीं है जिसने किशोरावस्था की अनेक कठिनाइयो को स्पष्ट किया किन्तु वास्तव में उद्देश्यो की दुर्बलता थी।

हम इस पर अधिक निकटता से विचार करें। निस्सन्देह, किसी निश्चित अर्थ मे व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया को इच्छा के विकास के रूप मे देखा जा सकता है। फिर भी, व्यक्तित्व की अभिव्यक्तिया पर उस समय प्रमुख बल दिया जाता है। इसी कारण अन्य नवीन मनोवैज्ञानिक रूपान्तरणो के समान ही मनुष्य मे उसके मनोवैज्ञानिक विकास के दौरान इच्छा का विकास होता है और वह अनेक अवस्थाओ मे से गुजरती है। यह सत्य है कि कोई किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विषय में इच्छा को अभिव्यक्त करने की योग्यता पर ध्यान दिये बिना कुछ नहीं बता सकता। फिर भी, इसका विपरीत भी सत्य है कोई व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे बताये बिना इच्छा नियंत्रित व्यवहार की ओर सकेत नहीं कर सकता। परिणाम स्वरूप, जब हम किशोरो मे अपर्याप्त इच्छा के सम्बन्ध मे कहते हैं तो कारण और परिणाम के अस्त व्यस्त हो जाने का खतरा रहता है।

यथार्थ मे, यही वह बिन्दु है जिसका विगोत्स्की द्वारा उल्लेख किया गया था क्या यह इच्छा की दुर्बलता नहीं है जिसे हम किशोरो मे केवल प्रासंगिक लक्ष्यो की दुर्बलता के रूप मे देखते है ?

हम इस पर विचार करें।

इससे पूर्व, मनोविज्ञान मे जीवोत्पत्ति-सम्बन्धी और सामाजिक उत्पत्ति सम्बन्धी प्रवृत्तिया के सैद्धान्तिक आदर्शों पर विचार करते हुए हमने पहले ही उल्लेख किया कि इन दोनो दृष्टिकोणो ने या तो आनुवंशिक या वातावरण सम्बन्धी कारको के प्रभावो के अधीन व्यक्तित्व को परिवर्तन की निष्क्रिय वस्तु की भूमिका प्रदान की। उस विवेचन को निम्नलिखित प्रसंग मे जारी रखना चाहिए। दोनो प्रवेश मार्ग मानव चेतना और व्यवहार को स्पष्ट करने का केवल एक ही मार्ग, यथा, कारणात्मक सम्बन्धो की स्थापना, को मानते हैं।

फिर भी, वह प्रस्थापना, जो प्राकृतिक विज्ञानो के सामान्य प्रणाली विज्ञान मे उद्भूत होती है, इस तथ्य पर विचार नहीं करती कि कारणात्मक सम्बन्धो मे मानव विकास का केवल एक पक्ष ही आवृत्त होता है। एक समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका लक्ष्य परिभाषा के लिए क्षमता के द्वारा मानव-व्यवहार के विकास मे निभाई जाती है। इसी कारण मानव की गतिविधियो की अतीत पर वास्तविक

निभरता (कारणात्मक निर्धारण) का उल्लेख करते समय या दूसरे पक्ष, यथा, भविष्य में उनके सम्बन्ध (लक्ष्य निर्धारण) की अवहेलना नहीं कर सकता। इस कारण यह भविष्य की एक आदर्श मूर्ति और लक्ष्य क्या होना चाहिए इसके चित्र के रूप में वर्तमान को निर्धारित करता है और व्यक्ति के कार्यों और उसकी दशा को नियंत्रित करता है।

उस सम्बन्ध में, लियान्तीव ने अपनी कृतियों में से एक में एक लार कहावत उदधृत की है जो उन्होंने यूराल में सुनी थी : जब कोई घोड़ा एक कठिन पथ पर चलते हुए लड़खड़ाने लगे तो किसी को उस चाबुक से हाँकने की बजाय उसका सिर और अधिक ऊँचा उठा देना चाहिए ताकि वह और अधिक सामने देख सके। इसके सदृश्य ही अनेक किशोरों की कठिनाइयाँ या, शायद, उनके दृष्टिकोण के सीमित क्षेत्र पर आरोपित किया जा सकता है।

दीर्घकालीन उद्देश्यों की योजना की भूमिका से सम्बन्ध रखने वाले सोवियत शिक्षाशास्त्री एण्टन मेकारेंको की विचारधारा को स्मरण करना युक्तियुक्त है। मेकारेंको के विचार में किसी व्यक्ति का भरणपोषण करना वैसा ही था जैसा उसके भीतर एक दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य का संवर्धन करना।

'वह व्यक्ति जो अपने व्यवहार को तात्कालिक परिप्रेक्ष्य की स्थितियों में निर्धारित करता है, मनुष्यों में सबसे कमजोर है। यदि वह केवल अपनी ही प्रत्याशाओं में सन्तुष्ट है चाहे उत्तरपूर्वी दूर ही हो वह मजबूत दिखाई दे सकता है, किन्तु इससे हम में सौन्दर्य और व्यक्तित्व के यथार्थ मूल्य का बोध नहीं उत्पन्न होता। समुदाय जितना अधिक विशाल होगा और जिसका परिप्रेक्ष्य ही उसके सदस्यों का परिप्रेक्ष्य भी होगा, व्यक्ति उतना ही अधिक सुन्दर और नेक होगा।'

मेकारेंको ने किशोरों की दैनिक व्यावहारिक गतिविधियों को, अल्पकालीन मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य को जोड़ने में आदर्शों के साथ संयुक्त करने के लिए एक आधार के रूप में देखा।

इस प्रकार कोई मानव-व्यक्तित्व के विकास में लक्ष्य-परिभाषा की अग्रणी भूमिका के सम्बन्ध में कह सकता है। इसी कारण सही रूप में यह स्थापित करना महत्वपूर्ण है कि किशोरावस्था में गतिविधियों में उद्देश्यों का प्रश्न विशेष रूप से क्यों महत्वपूर्ण हो जाता है।

इसका कारण, सर्वोपरि व्यक्ति की बाल्यावस्था से किशोरावस्था की ओर उसके संक्रमण के दौरान उसकी महत्वपूर्ण गतिविधियों के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों में स्थित है। बाल्यावस्था में व्यक्ति संसार के साथ निरन्तर बढ़ते हुए सम्बन्धों की व्यवस्था में जीवित रहता है। जबकि विद्यालय पूर्व के दिनों में उसके सामाजिक सम्बन्धों का बुनियादी क्षेत्र परिवार तथा वयस्कों और समकक्षों के एक

छोट वग द्वारा प्रश्न किया जाता है, विद्यालय म सामाजिक सम्बन्धा का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो जाता है। फिर भी, मूल रूप से ये परिवतन प्रमुख रूप से मात्रात्मक स्वरूप के होते ह। दूसरी ओर, गुणात्मक परिवतन किशोरावस्था की ओर सक्रमण के दौरान घटित होते हैं। उस सामाजिक सम्पक का बढता हुआ क्षेत्र व्यक्तित्व विकास मे उसकी भूमिका के परिवतन के द्वारा, यथा, इस तथ्य के द्वारा कि इसे व्यक्ति के सारतत्व के क्रम विकास के रूप मे देखा जा सकता है, हाथ मे लिया जा सकता है। हम इसे अधिक स्पष्टता से अभिव्यक्त करें।

किशोरावस्था मे सम्बन्धा के समीपी दायरे के भीतर के सम्बन्धो का स्वायत्त मूल्य खो जाता है। किन्तु यह केवल उनके स्वायत्त मूल्य पर ही लागू होता है। इसका अथ यह है कि निकटतम वयस्को (माता पिता, अध्यापक) और समकक्षो की प्रत्याशाएँ केवल उसी समय तक साथक बनी रहती हैं जब तक वे सामाजिक प्रेरणाओ के अधिक विस्तृत क्षेत्र मे सम्मिलित होती हैं, अर्थात, जब तक ये प्रत्याशाएँ सामाजिक विकास की आवश्यकताओ से उत्पन्न होती ह।[1]

इस पर, एक सोवियत शिक्षक, वैसिली सुखोम्लीन्स्की के द्वारा उस समय ध्यान दिया गया जब उन्होंने किशोरो की 'मनोवैज्ञानिक विद्रोहात्मकता और शिक्षा सम्बन्धी प्रयत्नो के प्रति उनकी अनुकूलता के अभाव के स्वरूप पर विचार किया।

> "किशार अच्छे हान का प्रयत्न करते है, वे एक आदश की ओर आगे बढते है और फिर भी वे शिक्षित किया जाना पसन्द नही करते और विचारो के 'नगेपन' और उन प्रवत्तियो के लिए, जो कभी-कभी विद्यालयो की शिक्षा के वस्तुत अनथकारी लक्षण के रूप मे परिवर्तित हो जाती ह, घोर अरुचि रखते हैं।'[2]

जबकि प्रारम्भिक कक्षाओ मे अध्यापका के अधिकार और उनकी माँगो पर सामान्यतया कोई प्रश्न नही उठाये जाते, किशोर अपने अध्यापको के शब्दो और उनकी माँगो दोनो का, यदि यह भी मान लिया जाय, अपनी स्वय की 'प्रति-अभियाचनाओ' से स्वागत करते हैं। जबकि किशोरो के जीवन का, उनके विद्यालयो और परिवारो के सन्दभ मे, जो उसकी शिक्षा के महत्त्वपूण क्षेत्रा मे, कक्षा समुदायो मे और अपने परिवारो मे उनके सम्बन्धो म, घटित होना जारी

---

1 देखिये, ए० एन० लिओन्तीव, देयेतलनोस्ट, सोज़ानिये, लिचनोस्ट (एक्टीविटी, जवेयरनस, पसनैलिटी), मास्को, पोलिटिजडेट पब्लिशस, 1975, पृ० 213

2 देखिये, वी० ए० सुखोम्लीनस्की, रोज़डेमी ग्राझडेनिना (दी बथ ऑव ए सिटीजन), मास्को, मोलोडाया ग्वारदिया पब्लिशस, 1971, पृ० 47-48

रहता है, तो भी व सक्रियता वे उन स्वरूपा के लिए प्रयास करत ह जो विद्यालय और परिवार क ढाव म आगे बढन लगन हैं। दूसरे शब्दो मे, किशारा का आसपास के ससार के साथ सम्बन्धो का अनुक्रम परिवर्तित हो जाना है, व अपने परिवार और विद्यालयो से जुडे हुए सम्बन्धो के आशिक रूप मे बाधक बनने वाल तत्त्वा को हटाने और सामाजिक गतिविधिया के अधिक विशाल क्षेत्र म प्रवेश करन का प्रयत्न करत हैं।

अब हम स्वय को किशोरावस्था की प्रमुख विशेषता और उसके आधारभूत अन्तर्विरोध के अभिलक्षण को बताने म लगा रहे हैं। वस्तुत हमने पहले ही इसके स्वरूप को बता दिया है। किशोर अब उन अन्तर्व्यक्तिगत सम्बन्धा वे ससार स अधिक समय तक सन्तुष्ट नही रहत जो उनके प्रत्यक्ष वातावरण के द्वारा परिभाषित होता है। बालको के असदृश, वे उस ससार का और अधिक समय तक सद्भावपूर्ण नही समझत और सामाजिक सम्बन्धा के अधिक व्यापक सन्दर्भ मे अपना स्थान प्राप्त करने का प्रयत्न करत ह। किन्तु, क्योकि उनके जीवन प्रमुख रूप से विद्यालय-अभिमुख बने रहत हैं और क्योकि वास्तविक तथ्य म इस प्रकार की सामाजिक गतिविधियो से वे अभी तक वर्जित हाते ह किशार गतिविधियो के अपनी प्रवृत्तिया और प्रमुख रूप स अपनी कल्पना म अपने जीवन को रूपान्तरित करने के प्रयास को अभिव्यक्त करत है। इस प्रकार की स्थिति को सामाजिक जीवन मे किशोरो के 'अन्तर्विष्ट बहिष्कार' के रूप म व्यक्त किया जा सकता है।

इस विचार का स्पष्ट करने के लिए हम व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक विकास मे कल्पना (स्वप्नचित्र) की भूमिका पर सक्षेप म विचार करना है।[1]

स्वैर-कल्पना की प्रशसा मे

उनकी फिलासाफिकल नोटबुक्स म समाविष्ट अरस्तू और हेगेल की कृतियो के सम्बन्ध म वी० आई० लेनिन की टिप्पणियो मे हम एक प्रस्थापना मिलता है जो हमारे स्वय के विषय के लिए महत्वपूर्ण है। विशेष रूप से लेनिन लिखत हैं कि

1 मनोविज्ञान म स्वप्नचित्र और उत्पादक कल्पना के बीच म विभेद किया जाता है, क्योकि जब वैज्ञानिक शब्दावली मे उनका प्रयोग किया जाता है उनकी विषय-वस्तु कुछ-कुछ भिन्न होती है। फिर भी, हमारे स्वय क प्रयोजन के लिए य अन्तर अधिक प्रामाणिक नही हैं। तदनुसार हम इन अवधारणाओ का पर्यायवाची शब्दा क रूप म प्रयोग करेंगे, उदाहरण के लिए दर्शनशास्त्र म जसा प्रचलन है।

"सरलतम सामान्यीकरण म, सबसे अधिक प्रारम्भिक सामान्य विचार (सामान्यतया 'मेज') मे भी स्वर-कल्पना का अश होता ह ।"[1] इन टिप्पणियो मे वे अन्यत्र कहते हैं कि "यह गुण अत्यन्त मूल्यवान है, यह सोचना गलत है कि केवल कवियो की ही कल्पना की आवश्यकता होती है । यह मूखतापूण पूर्वाग्रह है ! गणित मे भी इसकी आवश्यकता होती है । कल्पना के बिना अवकलन गणित और समाकलन गणित का अन्वेषण करना असम्भव होता । कल्पना एक बहुत ही मूल्यवान गुण है ।"[2]

हम ऐसे हजारा मामले जानते है जो कला, वैज्ञानिक अनुसधान और सजनात्मक गतिविधि के किसी रूप मे स्वैर-कल्पना की आवश्यकता प्रदर्शित करते है । उन मनोवैज्ञानिक अध्ययनो से यह भी पुष्ट होता है जो स्वय का कल्पना के विषय से विशेष रूप से लगा देत है । क्रिएटिव इमेजिनेशन शीषक एक अध्ययन मे एक फासीसी मनाविनानवत्ता थ्योडयूल रिबोट न उल्लेख किया कि बडा या छोटा, कोई अनुसधान मूल रूप मे कल्पना के रूप म—किसी के मन मे नयी कृतियो अथवा नये सम्बन्धो की सहायता से विकसित शब्द वियास के रूप म, उत्पन्न होता है और केवल उस समय ही शक्ति प्राप्त करता है और वास्तव म क्रियान्वित किया जा सकता है ।

रिबोट आगे उल्लेख करते है कि सभी मनुष्य कल्पना शक्ति से सम्पन्न होते हैं जबकि उनमे से अधिकाश व्यावहारिक जीवन की नीरसता मे क्रमश उलझते जाते है, अपनी आशाआ को दफना देते है, प्रेम को काल्पनिक समझते हैं, इत्यादि । फिर भी वह केवल प्रतिगमन करते ह किन्तु विनाश नही, क्याकि किसी मनुष्य की सजनात्मक कल्पना पूणतया नष्ट नही होती, यह केवल स्वय को कम निरन्तरता से अभिव्यक्त करती है ।

बिना स्वैर-कल्पना के काम की प्रक्रिया की कल्पना करना मूल रूप से असम्भव है जब तक कि इसे कठोर मानकीकरण के पूणतया अधीन न कर दिया जाये । इस कारण किसी काम को हाथ मे लेत समय हमे इसके परिणाम की कल्पना करनी चाहिए । नहीं तो किसी का यह कल्पना करनी पडेगी कि हम यह जाने बिना ही कि हम क्या प्राप्त करना चाहत है चीजो को करते है । यद्यपि यह जोडा जाना

---

1 वी॰ आई॰ लेनिन, 'कान्सपक्टस आव एरिस्टोटल्स बुक मेटाफिजिक्स, कलक्टेड वक्स, जिल्द 38, पृ॰ 370

2 वी॰ आई॰ लेनिन, 'इलेवथ काग्रेस आव दी आर॰ सी॰ पी॰ (बी), माच 27, अप्रैल 2, 1922, क्लोजिंग स्पीच ऑन दी पॉलिटिकल रिपोट ऑव दी सैन्ट्रल कमेटी ऑव दी आर॰ सी॰ पी॰ (बी), माच 28, 'कलेक्टड वक्स , जिल्द 33, पृ॰ 318

कठिनाइयाँ आंशिक रूप म इस तथ्य के कारण ह कि उनके आदश क्रियान्वयन की ओर निर्दिष्ट वास्तविक गतिविधिया के साथ सामजस्य से रहित आकाक्षाओ के क्षेत्र मे ही पूणतया बन रहते ह। और फिर भी आदश व्यक्तित्व विकास के लिए केवल तभी प्रासगिक ह जब यथाथ मे तदनुरूप होने मे असफल होकर वे इसको परिवर्तित करने के लिए निर्धारित गतिविधियो का पूर्वानुमान करते हैं। उसमे आदश को समथन देने और इस पर बल देन के साधन और माग खोजने की योग्यता की आवश्यकता होती है। यह सही रूप म जीवन की परिस्थितिया दबावो और उन्ह परिवर्तित करने के प्रयास के बीच के 'अन्तर्विरोध से उत्पन्न तनाव' ही है जिसे 'अन्तर्विष्ट बहिष्कार' के प्रभाम म मूत रूप दिया गया है। यह यौवनपूण अतिवाद ही है कि जिसस किशोर 'ससार को बदलने' का प्रयत्न करते हैं।

कार्ल मार्क्स ने अपनी कृतियो मे अकित किया और अपने स्वय के जीवन के माध्यम से चित्रित किया कि किसी आदश का अपनाना किसी अवधारणा, जिसकी प्राप्ति मे उन व्यावहारिक गतिविधिया की आवश्यकता होती है जो परिस्थितियो को बदल देती ह, के पीछे भविष्य के यथाथ को देखने की योग्यता के साथ जुड़ा हुआ है। किसी व्यक्ति को आदश की प्राप्ति की ओर की प्रगति को सघष के यथाथवादी दौर के रूप म देखना चाहिए। किन्तु कोई आदश के प्रति अग्रसरता की अवधारणा केवल उस विकसित कल्पना के आधार पर जो भविष्य के अस्पष्ट और धुधले चित्र म आवश्यक विवरण भरकर उसे 'यथाथ के रूप म देखना सभव बनाती है, कर सकता है। कल्पना के लिए क्षमता किसी आकृति म आसपास के ससार की उन विशिष्टताओ और अभिलक्षणा को मूत रूप देना सभव बनाती है जो वस्तुआ और मानव सम्बन्धो के एक सामाजिक रूप मे सूत्रबद्ध और सास्कृतिक एव ऐतिहासिक दृष्टि से विशिष्ट दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते है।

यह वही है जो मानव जीवन मे कल्पना के विशाल महत्व को स्पष्ट करता है। और क्या किशोर मे कल्पना का विकास नही होना चाहिए, अथवा दुबलता से विकसित किया जाना चाहिए और 'समाप्त' ही कर दिया जाना चाहिए वह आदर्शों की सामाजिक विषय-वस्तु से कसे अवगत हो सकता है और उनकी प्राप्ति की ओर ले जाने वाले माग को कम देख सकता है?

कल्पना और स्वर-कल्पना के बिना व्यक्तित्व का सम्पूर्ण व्यापक विकास सभव नही है। इसमे यह परिणाम निकलता है कि बालका और किशोरा मे इन योग्यताओ के विकास का काय शिक्षाविदा के लिए है।

लिओनार्दो दा विंसी ने विभिन्न धब्बा दीवारो की दरारा और बादला मे मनुष्यो, भूदृश्या और युद्धा के साथ समानताएँ के लिए उनका अध्ययन करके स्वर-कल्पना के विकास को प्रोत्साहित किया। तब से लेकर अब तक कल्पना का विकास करने के लिए अनक प्रक्रियाएँ निर्दिष्ट की जा चुकी हैं।

मानव चेतना और सक्रियता का एक ऐसा भी रूप है जिसमे कल्पना की सामर्थ्य एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह कला का वह क्षेत्र है जो, सोवियत दार्शनिक इवाल्ड इलियेन्कोव के शब्दो मे, कल्पना और स्वैर-कल्पना की विकसित, व्यावसायिक रूप से सम्पूर्ण शक्ति का परिणाम है।

मनोविज्ञानवेत्ताओ ने उल्लेख किया है कि सर्वांश मे प्राय कोई आदर्श पृथक पृथक घटको से उत्पन्न नही होता किन्तु एक सम्पूर्ण आकृति के रूप म एक ही बार मे प्रकट हो जाता है। उन मामलो म भी जब कोई उस आकृति के 'घटको' को प्रत्यक्ष देख सकता है, इतना होने पर भी यह उनके साधारण योग से उद्भूत नही होती। फिर भी शिक्षा के व्यवहार मे आदर्शों की रचना का एक 'घटक-अभिमुख' दृष्टिकोण का प्रचलन जारी रहता है। अनेक शिक्षक आदर्शों को एक ऐसी 'सग्रथित आकृति' के रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं जो सर्वोत्तम विशिष्टताओ और अभिलक्षणो के निश्चित समुच्चय को एक साथ ले आती है।

दुर्भाग्य से यह अधिक उत्पादक नही है क्योकि अपने सारतत्व मे कोई आकृति एक समग्र प्रभास है। जैसे ही हम किसी कलाकृति का बोध प्राप्त करते हैं हम उसके नायको के कार्यों और व्यवहार को अभिलक्षणो की शब्दावली मे (जो प्राय अभी तक विद्यालयो म व्यवहार मे है) नही समझते। इसके बदले मे हम इसके नायको के दुखो और सुखो मे भागीदार होते है और केवल कालान्तर मे ही हम अपने विचारो मे जो कुछ पढा जा चुका है उसकी ओर लौटते है, और यदि यह भी मान लिया जाय, तो अगला कदम इसका विभिन्न दृष्टिकोणो मे विच्छेदन, परीक्षण एव विश्लेषण करके उठाते है। तब, उस आधार पर, हम प्राय फिर आकृति के समग्र प्रत्यक्ष बोध की ओर, उसे उन महत्वपूर्ण विवरणो, जो हमारे विश्लेषण के द्वारा प्रदान किये जा चुके है, के साथ जोडते हुए वापिस लौटते है।

एक निश्चित अर्थ मे कला के लिए क्षमता, किसी व्यक्ति की किसी के भागों को देखने से पहले उसके जीवन्त, समग्र सम्पूर्ण को देखने की विकसित योग्यता है। जैसे ही किसी कलाकार की स्वैर-कल्पना यथार्थ के तत्व के भीतर स्वतन्त्रता से चलती है, वह उसे इस प्रकार से बदल सकती है जो जीवन के अभी अस्पष्ट प्रभासो को प्रत्यक्ष बना सकते है। हेगल के शब्दो मे, कला यथार्थ के सम्बन्ध मे हमारे दृष्टिकोण को परिवर्तित कर देती है और मानव नियति और व्यक्ति की आत्मा की गतियो, व्यक्तित्व विकास मे सबसे अधिक नाजुक विचलन की गभीरतम प्रवृत्तियो को प्रकट करती है।

कला नैतिकता की ऐसी शिक्षा को प्रस्तुत करना सभव बनाती है जो आवश्यकता म अधिक शिक्षात्मक अथवा सैद्धान्तिक रूप से आडबरपूर्ण' नही है (विसरियन ब्लिन्स्की)। कला की शक्ति विभिन्न जीवन स्थितियो म आदर्श चरित्रो की आकृतियो को प्रस्तुत करने की उसकी क्षमता के साथ ही निरपवाद रूप से

उच्च सत्यो और आदर्शों को स्थापित करने मे निहित है। कला हम इन कायरत आदश चरित्रा को ही नही दिखाती किन्तु यह उन घटनाओ के उस क्रम को भी प्रदर्शित करती है जिसके जरिये किसी नायक का विकास होता है और, आत्म-प्रशिक्षण को प्रोत्साहित करके अपने स्वय की जीवन गति का विकास करने के लिए प्रयत्न करने वाले किशोरा के लिए निर्देश माग के रूप मे काम आते है। किन्तु इन सबसे ऊपर, व्यक्तियो को उनकी स्वय की सरचनाओ का विकास करने के लिए साहसिकता से 'सन्नमित' करके कला वे जिस विशेष ढग से उसे देखना चाहते हैं उस ढग से उनके जीवन की 'कल्पना' की अन्त प्रेरणा प्रदान करती है। इन सभी कारणो मे कला स्वर-कल्पना और आकाक्षाओ की प्रधान पाठशाला है।

निस्सन्देह कला ही एकमात्र माध्यम है जिसके भीतर कल्पना का विकास अग्रसर होता है (यद्यपि यह सबसे अधिक मौलिक एव सबसे अधिक प्रभावशाली माध्यम भी है।) किन्तु कल्पना को विकसित करने के लिए छोट बच्चा के द्वारा खेले गये खेलो से लेकर किशोरो की स्वतत्र सजनात्मकता के सभी रूपो तक विस्तृत अन्य साधन, कलात्मक, तकनीकी और साहित्यिक, भी है। अन्त मे, मानव सम्प्रेषण भी स्वर-कल्पना के विकास के लिए स्थायी रूप से काय करने वाली पाठशाला बन सकता है, शत यह है कि ऐसे सन्दर्भों मे व्यक्ति केवल स्वय को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न ही नही करते किन्तु अपने प्रतिपक्षियो की 'आत्मा मे' जो स्थित है उसे समझने और देखने का भी प्रयास करते है।

हम जमन मनोविज्ञानवेत्ता काल ग्रूस के शब्दा को स्मरण करे जिन्होने उस शिक्षाशास्त्रीय काय, जो उत्पादक कल्पना के विकास म हमारे सामने होता है, म स्वय को लगा दिया

"जब कोई शिक्षाशास्त्री सजनात्मक स्वर कल्पना के लिए मूल्यवान क्षमता का सही रूप से विकास करना चाहता है तो उसके सम्मुख एक कठिन काय, यथा, किसी जगली और भयभीत नस्लदार जानवर को पालतू बनाना और उसे अच्छो की सेवा के अनुकूल बनाना, होना है।"[1]

जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है किशोरो के उद्देश्य कुछ बातो म विशिष्ट होत है। प्रथम, ये प्रमुख रूप से स्वायत्ततापूवक परिभाषित उद्देश्य होते है। द्वितीय, उत्पादक कल्पना के माध्यम से किशोरो को सामाजिक सम्बधो के अधिक विस्तृत सन्दभ म नियोजित करने म सहायता देत हुए व बुनियादी तौर पर आदश-अभिमुख हाते है।

किशोरा मे लक्ष्य परिभाषा के ये विशिष्ट अभिलक्षण उस अवस्था मे व्यक्तित्व विकास के लिए एक गभीर अथ से सम्पन्न होत है। आदश होन के

1 काल ग्रूस, दास सीलनलीवेन देम किन्डेस, बर्लिन, 1923, एस० 154

कारण वे उनके व्यवहार के लिए यथार्थवादी रूप से कार्यशील प्रेरणाओं की भूमिका पूर्णतया नहीं निभा सकते। किन्तु यह महत्वपूर्ण है कि चेतना में आविर्भूत होकर आदर्श उद्देश्य अग्रिम व्यक्तित्व विकास का विशिष्ट दिशा देकर अर्थ की परिभाषा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

किशोर वयस्कों के बीच में सामाजिक अन्तर्क्रियाओं के विशाल क्षेत्र में प्रवेश करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु वे इसे प्रमुखतः उन अवधारणाओं और कल्पना में पाते हैं जिनकी सहायता से वे अपने को संसार से जोड़ते हैं और उसका मूल्यांकन करते हैं। इस सम्बन्ध में आदर्श एक बुनियादी भूमिका निभाते हैं। उनकी विषय वस्तु किशोरों को सक्रिय शक्ति की भावना से भर देती है, वे स्वयं को संसार का पुनर्निर्माण करने और इसे करने को जीवन-लक्ष्य बनाने में समर्थ होने की कल्पना करते हैं। अधिकांश बातों में वे यह नहीं देखते और कभी-कभी देख भी नहीं सकते कि उनके आदर्शों की विषय-वस्तु पहले से ही संसार को ज्ञात हो चुकी है और पहले से ही किसी विकास और पूर्ति को प्राप्त कर चुकी है। इसी कारण वे कल्पना करते हैं कि संसार उनके आदर्शों और व्यक्तित्व को मान्यता नहीं देता। इस प्रकार संसार के साथ सामंजस्य की जिस भावना का उन्होंने बालक के रूप में अनुभव किया था वह नष्ट हो जाती है। वे अब बालक नहीं रहे—क्योंकि वे सामाजिक उद्देश्यों को निश्चित करते हैं (प्रायः अतिवादी और काल्पनिक), फिर भी वे अभी वयस्क नहीं हैं—क्योंकि वे अभी इन उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकते। जिस बिन्दु पर वे अपने आदर्शों को क्रियान्वित करने का प्रयत्न करते हैं वे वयस्क बन जाते हैं।

हम इस पर किसी के भविष्य के व्यवसाय को चुनने की समस्या के सम्बन्ध में अधिक ध्यान से विचार करें।

अपने जीवन-पथ पर चलना प्रारंभ करने वाले युवक का प्रथम कर्तव्य

उस जल विभाजक जो बाल्यावस्था को यौवन से विभाजित करता है और स्वयं वयस्क जीवन से वयस्कावस्था की ओर की प्रतिस्पर्द्धा को खोजने का प्रयत्न करने में हम किसी के भविष्य के व्यवसाय को चुनने की समस्या की ओर मुड़ते हैं। उस समस्या को प्रतिपादित करने और हल करने में युवा व्यक्ति का विकासशील व्यक्तित्व प्रथम बार सामाजिक रूप में महत्वपूर्ण और गंभीर व्यक्तिगत रुचि तक पहुँचने की आवश्यकता का सामना करता है।

'यह रुचि शेष सृष्टि पर मनुष्य का महान् विशेषाधिकार है, किन्तु, फिर भी यह एक ऐसा कार्य है जो उसके सारे जीवन को नष्ट कर सकता है उसकी

सभी योजनाओ को विफल कर सकता है और उसे अभागा बना सकता है। इसलिए इस रुचि पर गभीर विचार निश्चय ही उस युवक का प्रथम कर्तव्य है जो अपनी जीविका प्रारभ कर रहा है और अपने सबसे महत्वपूर्ण कार्यों को अवसर पर नही छोडना चाहता।'[1]

ये शब्द "रिफलैक्शन्स ऑव ए यग मन आन दी चौइस ऑव ए प्रोफेशन' शीर्षक एव माध्यमिक विद्यालय निबन्ध म युवा काल मार्क्स के हैं।

किसी व्यक्ति का व्यवसाय आधुनिक मानव के जीवन मे सबसे महत्वपूर्ण कारको मे से एक है चाहे वह सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक न भी हो। हम कई अवसरो पर फिर इस प्रश्न पर वापिस लौटेंगे। यहा हम मध्य एव अन्तिम किशोरावस्था मे व्यक्तित्व विकास पर उसके प्रभाव की स्थितिया म किसी व्यक्ति के व्यवसाय के चुनाव की समस्या पर विचार करेंगे।

सवप्रथम हमे स्पष्ट करना होगा कि हम व्यवसाय के चुनाव को किशोरा वस्था के दो पहलुओ से क्या जोडते है। परपरागत रूप से यह विचार स्थापित किया गया कि यह चुनाव अन्तिम किशोरावस्था मे किया जाता है किन्तु आज के विद्यालय छात्रो के विकास को नियन्त्रित करने वाली सामाजिक स्थिति हाल के वर्षों मे बदल गयी है, जिससे हम दो मनोवैज्ञानिक निदानात्मक सर्वेक्षणो से प्राप्त आँकडा की सहायता से स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। इनमे से पहला 1950 के दशक के अन्त मे और 1960 के दशक के प्रारभ मे और दूसरा 1970 के दशक के अन्त मे क्रियान्वित किया गया।

बचपन की अवस्था म व्यक्तित्व निर्माण के सम्बन्ध मे एक अध्ययन मे लिडिया बोझहोविच ने 1960 के दशक के प्रारम्भ म सोवियत सघ मे बडी उम्र के विद्यालय शिष्या के विकास को नियत्रित करने वाली सामाजिक स्थिति का विश्लेषण किया। उनके विचार मे उस स्थिति मे सबसे महत्वपूर्ण कारक यह तथ्य था कि बडी उम्र के विद्यालय-शिष्य स्वतत्र जीवन मे प्रवेश करने को थे और अपने जीवन पथ का मानचित्र बनाने और जीवन म अपना स्थान प्राप्त करने की समस्या का सामना करते है। तदनुसार, व्यक्ति के व्यवसाय का चुनाव जीवन की स्थितियो 'भावात्मक केन्द्र' बन जाता है।

अपने सिद्धान्त को चित्रित करने मे बोझहोविच ने एक सोवियत मनोविज्ञान वेत्ता निकोलाई क्रिलोव के अध्ययन का आधार बनाया जिन्होंने छोटी आयु के और बडी आयु के किशोरो की उस अवधि के दौरान जिसने देश मे (1958 मे) अनिवार्य आठ-वर्षीय शिक्षा के अपनाये जाने का अनुसरण किया, की प्रवत्तियो के अनेक

---

1 कार्ल मार्क्स, 'रिफ्लक्शन्स आव ए यग मन ऑन दी चाइस आव ए प्रोफेशन इन कार्ल मार्क्स फ्रेडरिक एगेल्स, कलेक्टेड वर्क्स, जिल्द I, पृ० 3

विशिष्ट अभिलक्षणा को अंकित किया। हम इन आंकडा की ओर मुडें।

एक ओर आठ-वर्षीय शिक्षा क स्नातका और दूसरी ओर दस या ग्यारह वर्षीय शिक्षा के स्नातकों के बीच उनकी निकट भविष्य और विशेष रूप स उनके भविष्य के व्यवसाय की योजनाओ के सम्बन्ध म त्रिलोव के अध्ययन म सारभूत भिन्नताएँ प्रकट हुइ।

किसी व्यवसाय का चुनाव करने म 10 11 वर्ष की शिक्षा के बाद उपाधि ग्रहण करन वाल विद्यार्थियो ने इसे आत्म निर्धारण का एक विशुद्ध काय समझा और उस विशिष्ट व्यावसायिक गतिविधि, जिसे उन्होंने आमने-सामने देखा, की वास्तविक सम्भावनाओ के साथ साथ अपनी स्वय की उन सम्भावनाओं और कठिनाइयो पर जो उनक सामन आयेंगी, विचार किया।

आठ वर्षीय विद्यालया के स्नातको न एक सवथा भिन्न रीति मे अपना चुनाव किया। (हम यह स्मरण करें कि उस समय शिक्षा के आठ वष अनिवाय थे और तदनुसार 8वी कक्षा उपाधि प्राप्त करन वाली कक्षा थी।) उस अवस्था के विद्यार्थियो की अत्यधिक बहुसख्या (लगभग दो तिहाइ) ने अपनी सामान्य शिक्षा के जारी रहन को इस प्रकार किसी ढग स उनके व्यवसाय के चुनाव को स्थगित करने के रूप म आमने सामने देखा।

उन आठ वर्षीय शिक्षा स्नातको न भी, जिन्होंने किसी व्यवसाय को चुनन की समस्या का समाधान किया, वास्तव म, जैसा बाद म स्पष्ट हुआ, विशुद्ध चुनाव नही किया किन्तु किसी व्यवसाय को अधिकाश म आकस्मिक ढग मे चुना। उन्ही विद्यार्थियो के सम्बन्ध मे, एक वष बाद नौवें दरजे के अन्त मे, किये गय सर्वेक्षण ने यह प्रदर्शित किया कि उस समय तक उनमे स अधिकाश अपने निणयो की पुनरावत्ति कर चुके थे। आठवें दरजे वाले अपन भविष्य के व्यवसाय के सम्बन्ध मे किसी निश्चित निणय के अभाव के कारण सामान्यतया अधिक चिन्तित नही होते थे। व सब यही विचार व्यक्त करत थे कि इसके विषय म ऊँचे ग्रेडो मे सोचने के लिए समय होगा। उनम से अनेक उच्चतर शिक्षा ग्रहण करने की अपनी इच्छा व्यक्त करत थे किन्तु अधिकाश मामला मे यह नही जानते थे कि किस सस्था विशेष मे वे प्राथना पत्र दें।

निस्सदेह सभी आठ वर्षीय स्नातक माध्यमिक विद्यालय मे अपने अध्ययन को चालू रखन का इरादा नही रखत थे। उनम मे कुछ काम करने और इसके साथ साथ युवा श्रमिको के लिए खोले गये विद्यालया, विशिष्ट माध्यमिक अथवा व्यावसायिक विद्यालयो म अध्ययन करने अथवा अभी तो केवल काम प्रारम्भ करन की योजना बनात थ। त्रिलोव इन निणयो की प्रेरणाओ का विस्तार म विश्लेषण करत हैं। वे साधारणतया या तो किसी उच्चतर शिक्षा-सस्थान म प्रवश लेने के लिए ऐच्छिक माग को खोजने (आवश्यक कार्य विवरण प्राप्त करना जो उनके

नामाकन को सुविधाजनक बना सके), अर्थात, वस्तुत किसी के भविष्य के व्यवसाय से सम्बन्धित अतिम निणय के समय को स्थगित करने, की इच्छा, अपने परिवारो की पर्याप्त मात्रा मे सहायता करने की आवश्यकता, अथवा उन अत्यधिक कठिनाइयो के, जिनका उन्हे अनुभव होता यदि वे विद्यालय म बने रहते, अभिज्ञान के द्वारा स्पष्ट की जा सकती थी।

जिन विद्यार्थियो का सर्वेक्षण किया गया था उनम से चौरानवे प्रतिशत ने सामान्य, तकनीकी अथवा व्यावसायिक विद्यालयो मे पढना जारी रखने अथवा पृथक पृथक पाठ्यक्रम लने के इरादे प्रकट किये।

इसके अनुसार हम देखते है कि 1950 के दशक के अन्त मे और 1960 के दशक के प्रारम्भ म सोवियत सघ मे युवको के विकास को नियत्रित करने वाली सामाजिक स्थिति ऐसी थी कि भविष्य के व्यवसाय को चुनने की समस्या केवल दसवें और ग्यारहवें दरजे (16 17 वष की आयु वाले) युवा व्यक्तियो के लिए ही यथाथ मे प्रासगिक एव अत्यन्त महत्वपूण होकर प्रकट हुई, यद्यपि सभी विद्यार्थिया को उनके वरिष्ठ विद्यालय वर्षों की पूरी अवधि म इसका सामना करना पड़ा। आठवें दरजे मे ऐसे अनेक 'निपुण' प्रस्ताव चुने गय जो किसी के भविष्य के व्यवसाय को चुनने के वास्तविक काय के पूववर्ती थे। जब आठवें दरजे के अनन्तर युवक अपनी शिक्षा को आगे बढाने की योजना के बिना ही काम पर जाने को पसन्द करता था तो एसे मामले विकास की सामान्य सामाजिक स्थिति की अपक्षा कठिन पारिवारिक स्थितियो पर आरोपित किये गय।

अब हम दूसरे अध्ययन के अनुसन्धानो पर विचार करें।

सोवियत मनोविज्ञानवेत्ता नटालिया तात्सतिख ने किशोरा और वरिष्ठ ग्रेड के सदस्यो को कुल 18 अपूण वाक्यो को पूरा करने को कहा, जैसे 'मुझे प्रसन्नता होगी', 'मै का प्रयास कर रहा हूँ', 'मैं चाहता हूँ', 'मेरा तात्कालिक उद्देश्य ' 'भविष्य मे मै योजना बनाता हूँ' यह सरल ढग (बेल्जियम के मनोविज्ञानवेत्ता जोसेफ न्यूट्टिन द्वारा निश्चित ढग का एक रूप भेद) ने 1980 के दशक के प्रारम्भ म छठे से दसवें दरजे तक के विद्यार्थिया की योजनाओ, प्रयासो और इरादा पर मनोरजक जानकारी प्रस्तुत की। अध्ययन के अनुसधान भविष्य के प्रति झुकावा मे अवस्था के अन्तरो का एक रंगीन एव मिश्रित चित्र प्रस्तुत करते हैं।

भविष्य के व्यवसाय के चुनाव स सम्बन्धित उत्तर कम-से-कम विद्यार्थिया के आयु-सापेक्ष अभिलक्षणो से सम्बन्धित परम्परागत अवधारणाओ की शब्दावली म अप्रत्याशित थे। कोई यह आशा कर सकता था कि ऊँचे दरजा म, विशेष रूप से दसवें दरजे म, यह होना कि किसी के भविष्य के व्यवसाय से सम्बन्धित विचार सबसे अधिक सख्या मे दिये जाते। फिर भी वस्तुत य छठे और सातवें दर्जे थ जिन्होने

इस विषय पर सबसे अधिक संख्या में विचार प्रस्तुत किये और, इसके अतिरिक्त, इन विचारों का सम्बन्ध नितान्त विशेष रूप से उस व्यवसाय से था जो पहले ही चुना जा चुका था। उच्चतर दरजों के विद्यार्थियों ने अपने भविष्य के व्यवसाय के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत कम बार संकेत दिया। किन्तु यह असम्भावित है कि यह इस बात को सूचित करता है कि वे यह नहीं जानते थे कि वे क्या होना चाहते हैं। वस्तुतः कोई यह अनुमान कर सकता है कि यह चुनाव और पहले (नौवें-दसवें दरजे में) किया जा चुका था।

कालान्तर में इस अनुमान की वादविवाद के दौरान पुष्टि कर दी गयी। लगभग सभी आठवें दरजे के विद्यार्थियों ने भविष्य के व्यवसाय का केवल नाम ही नहीं लिया, किन्तु वे तदनुरूप तयारी की व्यवस्था, विशेषकर आगे के अध्ययन के लिए कार्यक्रम के सम्बन्ध में, का पर्याप्त विस्तार से विवरण देने योग्य भी थे।

1960 के दशक के प्रारम्भ में, जबकि क्रिलोव के अनुसंधानों के अनुसार, आठवें दरजे ने 'वयस्क मामलों' की विशेष रूप से तनावपूर्ण सीमा को चिह्नित नहीं किया और आठवें दरजे वालों ने अपने व्यवसाय को निर्धारित करने की समस्या को समबुद्धि के साथ नहीं देखा (यदि यह कहा जाय तो अभी समय है'), बीस वर्ष बाद स्थिति परिवर्तित हो गयी थी। एक ओर, भावुकता से प्रभावित स्वरूप, 'भावात्मक महत्व' है जिसमें भविष्य के व्यवसाय के चुनाव से संलग्न कोई वस्तु आठवें दरजे वालों के लिए अन्तर्निहित है। फिर भी, यह तथ्य है कि उनमें से बहुत से पहले से ही जानते हैं कि वे क्या बनना चाहते हैं। दोनों संकेत करते हैं कि आज सोवियत संघ में सही चुनाव दसवें दरजे में नहीं किन्तु सातवें और आठवें दरजे में किया जाता है।

संक्षेप में, निकोलाई क्रिलोव और नटालिया तॉल्सतिख के द्वारा क्रियान्वित अध्ययनों की तुलना दिखाती है कि वहाँ किसी के भविष्य के व्यवसाय के चुनाव के समय को प्रारम्भिक किशोरावस्था की ओर खिसकने की प्रवृत्ति है।

यह बताना प्रत्यक्ष रूप से जल्दबाजी है कि किशोरों के विकास को नियंत्रित करने वाली सामाजिक स्थिति में व्यवसाय के अपेक्षाकृत शीघ्र चुनाव की ओर एक विचलन घटित हो गया है। यह केवल एक परिकल्पना है और जिन अनुसंधानों का उल्लेख किया गया है वे इसे चित्रित कर सकते हैं किन्तु प्रमाणित नहीं कर सकते।

व्यवसाय का चुनाव किसी के जीवन-पथ को चुनना है

भविष्य के व्यवसाय का चुनाव किशोरों के मनोवैज्ञानिक अभिलक्षणों से किस ढंग से सम्बद्ध है? ये अभिलक्षण ऐसे होते हैं कि यह प्रश्न 'मैं क्या बनूंगा?' किशोरों

के द्वारा प्रमुख रूप से आकाक्षाओ, आदश प्रतिस्पर्द्धाओ, और इच्छाओ के स्तर पर सूत्रबद्ध और हल किया जाता है और प्रत्यक्ष रूप से तदनुरूप यथाथ (जो मुख्यत विद्यालय अभिमुख बना रहता है) अथवा जीवन के आदश उद्देश्यो को प्राप्त करन के लिए यथार्थवादी उपायो की खोज के साथ जुडा हुआ नही होता।

फिर भी गट के शब्दो मे

" 'जो आदमी कोई बडी वस्तु करेगा उसे स्वय को सीमित करना सीखना होगा', क्योकि यह स्वय को सीमित करने की क्षमता ही है जो एक विशेषज्ञ को प्रमाणित करती है। यह इसी मे ही है कि हम जीवन की बुद्धिमत्ता प्राप्त करते है क्योकि, वह जो, इसके विपरीत, सब कुछ करेगा, वास्तव मे, कुछ भी नही करेगा और असफल होता है।"[1]

सक्षेप मे, अपनी सभावनाओ (किन्तु सभावनाओ के रूप म ही क्योकि सिद्धात रूप म किशोर सब कुछ प्राप्त करने म समथ हैं किन्तु अभी तक किया कुछ नही है) के असीमित स्वरूप के सम्बन्ध की अभिज्ञता का अनुसरण करने पर तुरन्त यह प्रश्न उठता है वह क्या है जिसे कोई चाहता है ? और अधिक यथाथ मे, किस ढग से कोई अपनी योग्यताओ को क्रियान्वित करना पसन्द करेगा और इस प्रयोजन के लिए मानव सक्रियता के किस क्षेत्र को चुनेगा ?

हम इस पहलू पर और अधिक आगे विचार करेंगे, क्योकि यह मौलिक महत्व का है।

मानव सामर्थ्यों की विविधता, बहुत बडी है, और मनोविज्ञानवत्ताओ और शिक्षको की सम्मति म उनम से अधिकाश पर किसी के भी द्वारा वशीभूत की जा सकती हैं। किन्तु यह भी सत्य है कि समय की एक अवधि म कोई व्यक्ति एक ही चीज कर सकता है और केवल एक विशिष्ट गतिविधि को क्रियान्वित कर सकता है, क्योकि मनुष्य का जीवन सीमित है और वह केवल कुछ ही विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न कर सकता है। सोवियत दाशनिक ज्यार्जी गाचेव उल्लेख करते हैं कि आधुनिक समाज म, जो श्रम के विभाजन पर आधारित है और जिसम कोई व्यवसाय सामान्यतया इतना जटिल होता है कि उसमे व्यक्ति की सावधानी की आवश्यकता उसके सारे जीवन भर होती है प्राय कोई व्यक्ति अपने जीवनकाल के दौरान केवल एक ही काय को क्रियान्वित कर सकता है। यही कारण है कि किसी व्यक्ति का सम्बन्ध एक जीवन भर के काय' और इस विचार से होता है कि उसने स्वय को उसके 'समर्पित कर दिया है। सक्षेप म, प्रभावशाली होने के लिए मनुष्य को सामर्थ्यों की असीमितता से पृथक होना चाहिए, क्योकि यथाथ

---

1 विलियम वालेस दी लाजिक आव हगल लन्दन, ऑक्सफोड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1951, पृ० 145

रूप मे वह प्रत्येक चीज को नही किन्तु कुछ विशिष्ट चीजा को करने मे ही समर्थ है। यह ऐसा सन्दभ है कि जिसमे व्यक्ति के भविष्य के वातावरण को चुनने की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

अधिक सामान्य रूप से किसी के व्यवसाय को निर्धारित करने की प्रक्रिया काफी पहले, किशोरावस्था के प्रारम्भ होने से भी पहले, प्रारम्भ हो जाती है। अभी अपने अभिनय खेलो मे, विद्यालय-पूर्व के बालक व्यावसायिक गतिविधि के विभिन्न प्रकारो के अनेक आवश्यक पक्षो का 'अभ्यास कर लेते हैं। यदि कोई इन खेलो को समीप से देखे तो वह सरलता से देख लेगा कि उन्हे खेलते हुए बालक व्यावसायिक गतिविधि के वास्तविक गुणो के सभी प्रकार के प्रतीकात्मक स्थानापन्नो का तत्परता से क्रियान्वित करेंगे (कुर्सी 'काउटर' हो सकती है और कागज के फटे हुए टुकडे दुकान लगाने के खेल मे 'मुद्रा' का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं) किन्तु वे केवल खेल के स्वय के नियमो के ही नही किन्तु उस गतिविधि के भी, जिसका प्रतिनिधित्व किया जा रहा है, अनुसरण म, फिर भी नितान्त आडम्बरी हो सकते है। उदाहरण के लिए, 'दुकान लगाने' का खेल खेलते समय कोई हमेशा 'विक्रेता' और 'क्रेता' माल' और 'मुद्रा' के साथ ही 'माल के बदले मुद्रा का विनिमय' समझ लेता है। जबकि यह साधारणतया केवल आशिक रूप से ही किया जाता है और एक बचकाने तरीके मे, कुछ बातो मे व्यवसाय के सारतत्व को वास्तव मे प्रस्तुत किया जाता है। निस्सन्देह, यथार्थ अर्थ मे, यह अभिनय वस्तुत व्यवसाय अभिमुखता के रूप मे अभिव्यक्त नही किया जा सकता।

ठीक इसी प्रकार उनके भविष्य मे किसी आकर्षक व्यवसाय के सदस्यो के रूप मे स्वर-काल्पनिक स्वप्न भी किसी के व्यवसाय चुनने के काय म सहायता नही करते। यह इस कारण स होता है कि वे किसी के व्यवसाय चुनने के आधार के रूप मे काम आने वाले अत्यन्त आवश्यक कारको (उदाहरणार्थ, सामाजिक आवश्यकता की अभिज्ञता और किसी के झुकावो का वस्तुगत सभावनाओ और योग्यताओ से मुकाबला) से सार-तत्व निकालते है।

किसी के व्यवसाय चुनने मे प्रवेश करने की इन अवस्थाओ की इस समस्या को सुलझाने के प्रस्तावो के रूप म व्याख्या की जानी चाहिए वे तदनुरूप तैयारियो के दृष्टिकोण से भी प्रारम्भिक है।

और फिर भी यह स्पष्ट है कि आज आठवें दरजे वालो को यह निश्चय करना होगा कि उन्ह कहाँ जाना चाहिए। नौवें दरजे म, या किसी व्यावसायिक अथवा तकनीकी विद्यालय म। यह ठीक इसी बिन्दु पर होता है कि किसी को पूछना चाहिए कि किसी व्यवसाय को चुनने म क्या आवेष्टित होता है। वह क्या होता है जिसे किशोर यथार्थ रूप मे चुनता है?

सोवियत मनोविज्ञानवेत्ता आइगोर कोन किशोरावस्था की समस्याओ का

अध्ययन करके यथाथ ही कहते ह कि व्यवसाय का चुनाव, किसी के जीवन के लिए जैसे किसी योजना के समान एक ऐसा प्रभास है जो अपने स्वरूप म एक साथ सामाजिक और नतिक है। वास्तव म, कोई इस प्रश्न पर, कि वह किसको जँचना चाहता ह, इस प्रश्न से, कि कोई किस प्रकार का व्यक्ति होना चाहिए, पृथक विचार नही कर सकता।

पूव उद्धृत निबन्ध मे, युवा काल मार्क्स ने कोई किस प्रकार का व्यक्ति होना चाहिए से सम्बन्धित समस्या को किसी के भविष्य के व्यवसाय को चुनने के लिए प्रमुख आधार के रूप मे देखा। उन्होने लिखा

" किन्तु मुख्य माग दशक, जिसे हमे व्यवसाय के चुनाव मे मार्ग दशन करना चाहिए, है मानव जाति का कल्याण और हमारी अपनी पूणता। यह नही सोचना चाहिए कि ये दोना हित सघषरत हो सकते हैं, कि एक को दूसरे को नष्ट करना ही होगा, इसके विपरीत, मनुष्य की प्रकृति इस प्रकार सघटित होती है कि वह अपनी पूणता केवल अपने सह-व्यक्तियो की पूणता के लिए, भलाई के लिए काम करके ही प्राप्त कर सकता है।"[1]

किसी के व्यवसाय के चुनने का यह नतिक पहलू काम के एक स्वतन्त्र मूल्य और किसी के व्यक्ति के काम के सामाजिक महत्व की समझ के सन्दभ म सबसे अधिक स्पष्टता से अभिव्यक्त किया जाता है। वरिष्ठ स्कूली विद्यार्थियो के सामाजिक अनुकूलन के क्षेत्र के रूप मे काम को युवा पुरुषा और स्त्रिया के बीच श्रम के प्रति विशिष्ट झुकाव के विकास के दृष्टिकोण से समझा जाना चाहिए। इसका अथ यह है कि निश्चित नतिक आदश मे व्यक्ति के भविष्य की अवधारणा ऐसी अवधारणा के रूप मे, जिसमे काम आवेष्टित हो, सम्मिलित होनी चाहिए। उस आदश तक व्यक्ति का आरोह सुनिश्चित रूप से काम की उस गतिविधि के माध्यम मे गुजरता है जो युवा पुरुष के शिक्षा के स्नातकत्व का अनुसरण करती है। किन्तु जब किशोरो के लिए काम के सामाजिक अथ को समझने की आवश्यकता के सम्बन्ध मे बताते हुए हम युवा पुरुषा और स्त्रियो मे इस बात का विश्वास उत्पन्न करने के प्रयत्न पर ध्यान नही देते कि सब प्रकार के श्रम समान होते हैं (क्योकि एसा है नही), न ही इस बात को देखते हैं कि वे भविष्य म क्या कर रह होगे (क्योकि इसका महत्व है) वस्तुत हम ऐसी सजगता का विकास करने की आवश्यकता मन मे महसूस करते है कि काम व्यक्ति की आत्म-पूर्ति और उसके आदर्शों की क्रियान्विति और समाज-सेवा करने के प्रयासो का महत्वपूण स्रोत है।

---

1 कार्ल मार्क्स, 'रिफ्लेक्शन्स ऑव ए यग मैन आन दी चोइस ऑव ए प्रोफेशन', इन कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एगल्स, कलेक्टेड वर्क्स, जिल्द I, पृ० 8

इस प्रकार के सन्दर्भ में हम आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र में शिक्षा स्नातकों के पथ प्रदर्शित होने की व्यापक विवादास्पद आवश्यकता पर भी विचार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रायः आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र में शिक्षा-स्नातकों की सबसे अधिक संभव संख्या को आवंटित करने की आवश्यकता के रूप में इसकी व्याख्या की जाती है। किन्तु ऐसी स्थिति और काम की एक अनिवार्य सेवा के रूप में एक अवधारणा के बीच केवल एक ही कदम होता है। फिर भी, यह अवधारणा सबसे अधिक मौलिक समाजवादी श्रम के सिद्धान्त, अर्थात् यह सचेतन श्रम होना चाहिए का विरोध करती है।

सोवियत संघ में 1984 में अपनाया गया सामान्य विद्यालय शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण का सुधार युवा लोगों को काम के लिए अधिक अच्छे ढंग से तैयार करने और इस रीति से उनकी सामान्य सामाजिक परिपक्वता को सुविधाजनक बनाने और उसका त्वरण करने तथा उस दीर्घकालीन शिशुतावाद जो समाज के लिए हानिकर और स्वयं युवा व्यक्तियों के लिए कष्टदायक है पर काबू पाने के लिए स्पष्टतया प्रयत्न करता है। 'सामान्य माध्यमिक शिक्षा के आगे के सुधार और सामान्य माध्यमिक विद्यालयों के काम की स्थितियों में सुधार से सम्बन्धित' शीर्षक सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति और सोवियत संघ की मन्त्रिपरिषद् के प्रस्ताव में इस बात पर बल दिया गया है कि उनकी सारी शिक्षा के दौरान विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन का सुधार करने और उनकी रुचियों और प्रवृत्तियों को पहचानने की आवश्यकता है।[1] यह केवल आयु सापेक्ष मनोविज्ञान के तदनुरूप अनुसंधानों के आधार पर ही है कि कोई वांछित व्यावसायिक मार्ग-दर्शन की व्यवस्था का विकास कर सकता है।

विद्यालयों में परामर्श देने वाले व्यावसायिक मार्ग दर्शन का कार्य युवा लोगों के लिए सामान्यतया श्रम गतिविधियों और विशेष रूप से (आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र सहित) सामाजिक उत्पादन के मूल क्षेत्रों में सामाजिक महत्त्व के सम्बन्ध में जागरूकता के आधार पर, भविष्य के व्यवसाय के व्यापक स्वतन्त्र चुनाव को सम्भव बनाना है। किन्तु इसका अर्थ यह है कि कोई युवा व्यक्ति सामाजिक रूप से महत्त्वपूर्ण चुनाव केवल तभी कर सकता है जब वह विकसित, सामाजिक और नैतिक आदर्शों से सम्पन्न हो और सचेतनता से देश के सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक विकास के कार्यों के साथ अपनी निजी रुचियों, सम्भावनाओं और

1 आ रिफार्मे आब्शचियोब्रेझो उतलनाई इ प्रोफेशेनलनाई श्काली-स्बोर्निक डाक्यूमण्टोव इ मेटीरियलोव (कन्सर्निंग दी रिफाम आव जनरल एजूकेशन, एण्ड वोकेशनल ट्रेनिंग, कलैक्शन ऑव डाकूमण्टस एण्ड मटीरियल्स) मास्को, 1984, पृ० 70

योग्यताओ का सामजस्य कर सकता हो। व्यावसायिक मार्ग-दर्शन के सारतत्त्व के सम्बन्ध मे ऐसा दृष्टिकोण, सर्वोपरि, उन नागरिको और प्रौढ व्यक्तियो, जो, इस बात का ध्यान किए बिना कि वे क्या बनते है, अपने काय के प्रति एक उत्तरदायी रुख धारण करने को नैतिक रूप से प्रस्तुत होंग, के विकास करने का प्रयत्न करता है।

काम के स्वरूप पर ध्यान न देते हुए इसके लिए व्यावहारिक तत्परता के सम्बन्ध मे बताते समय हम युवा लोगो को अपना व्यवसाय चुनने म अपेक्षाकृत कम विवेचक होने के लिए नही कहेंगे। इसके विपरीत, हमारी सम्मति म युवा व्यक्तियो मे उनके भविष्य के व्यवसाय के सम्बन्ध म प्रत्याशाओ के ऊँचे स्तर को प्रोत्साहित करना आवश्यक है, यद्यपि यह सत्य है कि ऐसी प्रत्याशाएँ सदा 'शुद्ध' व्यवसाय के प्रति होने वाले प्रयास से विभेद्य नही होती। कारण यह है कि काम को किसी युवा व्यक्ति के लिए सर्वोच्च मूल्य बनने के लिए आत्म निश्चय की आवश्यकता को पूरा करना चाहिए। यही कारण है कि जब यह देखा जाता है कि युवा लोग साधारणतया विशिष्ट क्षेत्रो के विशेष प्रकारो से दूर भागते है यह उन महत्त्वपूण कारणो के द्वारा स्पष्ट किया जाना सम्भव है जो तत्काल प्रत्यक्ष न हो। यह हो सकता है कि स्वय व्यवसाय के क्षेत्र म ही प्रत्येक बात व्यवस्थित न हो, कि इसकी काम की परिस्थितियाँ सामाजिक रूप स और तकनीकी रूप से पुरानी पड गयी हो।

यह उल्लेख करना महत्त्वपूण है कि किसी युवा व्यक्ति की काम के लिए व्यावहारिक तत्परता उसे उत्पादन के विशिष्ट क्षेत्रो मे आकर्षित करने के लिए स्वय म ही पर्याप्त नही है। उत्पादन का वह क्षेत्र भी युवा श्रमिक को स्वीकार करने के लिए, उसकी काम के लिए उस प्रतिस्पर्द्धा, जो गुण और प्रभावशीलता के सर्वोच्च मानदण्डो के अनुरूप हो, के लिए प्रतिक्रिया दिखाने के लिए आर्थिक दृष्टि से प्रस्तुत होना चाहिए।

फिर भी, यदि यह केवल श्रम की स्थितियो को सुधारने का प्रश्न होता तो व्यवसाय को चुनने की समस्या अपेक्षाकृत सरल होती। वस्तुत, यह बात नही है। प्राय 'बुरी हालतो' का प्रसग यथाथ म काम करने के लिए अनिच्छा को छिपाने के लिए ही प्रयोग म लाया जाता है। कथा-साहित्य और पत्रकारिता की चालू कृतियो का शिक्षाशास्त्रीय लक्ष्य ऐसे मनोविज्ञान का विरोध करना है जो पूणतया 'उपभोग-अनुकूलित' विवरण के अनुरूप है। इस प्रकार का छद्मवेषी परजीवीवाद खेदजनक और निन्दनीय दोनो है। कारण यह है कि परजीवीवाद न केवल असामाजिक किन्तु व्यक्ति के लिए हानिप्रद भी है। विशेषकर, लिओन्तीव ने विश्वासोत्पादकता के साथ दर्शाया है कि व्यक्तित्व का विकास अकेले उपभोग के सन्दभ म नही हो सकता और इसका विकास उन सजनात्मक गतिविधियो के बल

इस प्रकार के सन्दभ म हम आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र मे शिक्षा स्नातको क पथ प्रदर्शित होने की व्यापक विवादास्पद आवश्यकता पर भी विचार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्राय आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र मे शिक्षा स्नातका की सबसे अधिक सभव सख्या को आबटित करने की आवश्यकता के रूप में इसकी व्याख्या की जाती है। किन्तु ऐसी स्थिति और काम की एक अनिवार्य सेवा के रूप मे एक अवधारणा के बीच केवल एक ही कदम होता है। फिर भी, वह अवधारणा सबसे अधिक मौलिक समाजवादी श्रम के सिद्धान्त, अर्थात, यह सचेतन श्रम होना चाहिए, का विरोध करती है।

सोवियत सघ म 1984 मे अपनाया गया सामान्य विद्यालय शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण का सुधार युवा लोगो को काम के लिए अधिक अच्छे ढग से तैयार करने और इस रीति से उनकी सामान्य सामाजिक परिपक्वता को सुविधा जनक बनाने और उसका त्वरण करने तथा उस दीर्घकालीन शिशुतावान् जो समाज के लिए हानिकर और स्वय युवा व्यक्तियो के लिए कष्टदायक है, पर काबू पाने क लिए स्पष्टतया प्रयत्न करता है। 'सामान्य माध्यमिक शिक्षा के आग के सुधार और सामान्य माध्यमिक विद्यालयो के काम की स्थितियो मे सुधार से सम्बन्धित' शीर्षक सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति और सोवियत सघ की मन्त्रिपरिषद् क प्रस्ताव म इस बात पर बल दिया गया है कि उनकी सारी शिक्षा के दौरान विद्यार्थियो क मनोवैज्ञानिक अध्ययन का सुधार करन और उनकी रुचियो और प्रवृत्तियो को पहचान की आवश्यकता है।[1] यह केवल आयु सापेक्ष मनोविज्ञान के तदनुरूप अनुसधानो के आधार पर ही है कि कोई वाछित व्यावसायिक मार्गदर्शन की व्यवस्था का विकास कर सकता है।

विद्यालयो म परामर्श देने वाले व्यावसायिक मार्ग दर्शन का काय युवा लोगों के लिए सामान्यतया श्रम गतिविधियो, और विशेष रूप से (आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र सहित) सामाजिक उत्पादन के मूल क्षेत्रा म सामाजिक महत्त्व के सम्बन्ध म जागरूकता के आधार पर, भविष्य के व्यवसाय के व्यापक, स्वतत्र चुनाव को सम्भव बनाना है। किन्तु इसका अर्थ यह है कि कोई युवा व्यक्ति सामाजिक रूप मे महत्त्वपूर्ण चुनाव केवल तभी कर सकता है जब वह विकसित, सामाजिक और नैतिक आदर्शों से सम्पन्न हो और सचेतनता से देश के सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक विकास के कार्यों के साथ अपनी निजी रुचियो, सम्भावनाओ और

---

1 ओ रिफोर्मे आब्शचियाब्रेज्ञाव्त्तलनाइ इ प्रोफेशेनलनाई श्कोली-स्बोर्निक डाक्यूमेण्टोव इ मटीरियलोव (कन्सर्निंग दी रिफाम आव जनरल एजूकेशन, एण्ड वाकेशनल ट्रेनिंग, कलक्शन ऑव डाकूमण्टस एण्ड मटीरियल्स) मास्को, 1984, पृ० 70

योग्यताओं का सामंजस्य कर सकता हो। व्यावसायिक मार्ग-दर्शन के सारतत्त्व के सम्बन्ध में ऐसा दृष्टिकोण, सर्वोपरि, उन नागरिकों और प्रौढ़ व्यक्तियों, जो, इस बात का ध्यान किये बिना कि वे क्या बनते हैं, अपने काम के प्रति एक उत्तरदायी रुख धारण करने को नैतिक रूप से प्रस्तुत होंगे, के विकास करने का प्रयत्न करता है।

काम के स्वरूप पर ध्यान न देते हुए इसके लिए व्यावहारिक तत्परता के सम्बन्ध में बताते समय हम युवा लोगों को अपना व्यवसाय चुनने में अपेक्षाकृत कम विवेचक होने के लिए नहीं कहेंगे। इसके विपरीत, हमारी सम्मति में युवा व्यक्तियों में उनके भविष्य के व्यवसाय के सम्बन्ध में प्रत्याशाओं के ऊँचे स्तर को प्रोत्साहित करना आवश्यक है, यद्यपि यह सत्य है कि ऐसी प्रत्याशाएँ सदा 'शुद्ध' व्यवसाय के प्रति होने वाले प्रयास से विभेद्य नहीं होतीं। कारण यह है कि काम को किसी युवा व्यक्ति के लिए सर्वोच्च मूल्य बनने के लिए आत्म निश्चय की आवश्यकता को पूरा करना चाहिए। यही कारण है कि जब यह देखा जाता है कि युवा लोग साधारणतया विशिष्ट क्षेत्रों के विशेष प्रकारों से दूर भागते हैं यह उन महत्त्वपूर्ण कारणों के द्वारा स्पष्ट किया जाना सम्भव है जो तत्काल प्रत्यक्ष न हों। यह हो सकता है कि स्वयं व्यवसाय के क्षेत्र में ही प्रत्येक बात व्यवस्थित न हो, कि इसकी काम की परिस्थितियाँ सामाजिक रूप से और तकनीकी रूप से पुरानी पड़ गयी हों।

यह उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है कि किसी युवा व्यक्ति की काम के लिए व्यावहारिक तत्परता उसे उत्पादन के विशिष्ट क्षेत्रों में आकर्षित करने के लिए स्वयं में ही पर्याप्त नहीं है। उत्पादन का वह क्षेत्र भी युवा श्रमिक को स्वीकार करने के लिए, उसकी काम के लिए उस प्रतिस्पर्द्धा, जो गुण और प्रभावशीलता के सर्वोच्च मानदण्डों के अनुरूप हो, के लिए प्रतिक्रिया दिखाने के लिए आर्थिक दृष्टि से प्रस्तुत होना चाहिए।

फिर भी, यदि यह केवल श्रम की स्थितियों को सुधारने का प्रश्न होता तो व्यवसाय को चुनने की समस्या अपेक्षाकृत सरल होती। वस्तुत, यह बात नहीं है। प्राय 'बुरी हालतों' का प्रसंग यथार्थ में काम करने के लिए अनिच्छा को छिपाने के लिए ही प्रयोग में लाया जाता है। कथा-साहित्य और पत्रकारिता की चालू कृतियों का शिक्षाशास्त्रीय लक्ष्य ऐसे मनोविज्ञान का विरोध करना है जो पूर्णतया 'उपभोग अनुकूलित' विवरण के अनुरूप है। इस प्रकार का छद्मवेषी परजीवीवाद खेदजनक और निन्दनीय दोनों है। कारण यह है कि परजीवीवाद न केवल असामाजिक किन्तु व्यक्ति के लिए हानिप्रद भी है। विशेषकर, लिआन्तीव ने विश्वासोत्पादकता के साथ दर्शाया है कि व्यक्तित्व का विकास अकेले उपभोग के सन्दर्भ में नहीं हो सकता और इसका विकास उन सर्जनात्मक गतिविधियों के बल

का पूर्वानुमान करता है जो सीमाओ को नही जानती।

संक्षेप म, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वर्तमान सोवियत सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था म युवा लोगो म ऐसी व्यक्तित्व विशिष्टताएँ विकसित करने की भूमिका है जो उन्हे ऊँचे सामाजिक और नैतिक आदर्शों के आधार पर और, सर्वोपरि, श्रम को एक सामाजिक मूल्य मानने की प्रवृत्ति के आधार पर अपने व्यावसायिक क्षेत्र को स्वतन्त्रता से चुनने की अनुमति देगी। इससे निम्नलिखित प्रश्न उठता है कि किस प्रकार की शिक्षा—विशिष्ट अथवा व्यापक—इस कार्य को पूर्णतया पूरा करती है? हम इस बात का ध्यान रखें कि इन 'अवज्ञानिक' शब्दो का प्रयोग बिल्कुल जान बूझकर किया गया है क्योंकि माता पिता और अध्यापको दोनो के साथ की मुलाकातो का हमारा अनुभव सूचित करता है कि ये शब्द ही होते है जो हमारे युग की सबसे मुख्य शिक्षाशास्त्रीय समस्याओ म से एक की ओर सकेत करने के लिए उपयोग म लाये जाते है।

'विशिष्ट', 'सकीर्ण' शिक्षा के प्रतिपादको की स्थिति अपेक्षाकृत सरल है और इस एक निश्चित व्यावहारिक तर्कसंगति मानने म इन्कार करना कठिन है। हमारे समाज म एक विशेषज्ञ, अपने काम के प्रकार म निपुण, अपने व्यवसाय म यथार्थ म सक्षम व्यक्ति का प्रमाण बहुत ऊँचा होता है। किन्तु, क्योंकि विद्यालयो का कार्य युवा पीढी को जीवन के लिए तैयार करना है अत यह दिखायी देगा कि इसका अर्थ यह है कि इसकी भूमिका विशेषज्ञो को शिक्षा देना, अर्थात विशेषज्ञतावरण के सकीर्ण क्षेत्र का शिक्षित करना है। यह माता पिता, अध्यापको और स्वय विद्यार्थियो दोनो के *बीच व्यापक रूप मे मान्य एक दृष्टिकोण है। फिर भी, यह महत्वपूर्ण है* कि इस बात मे हमारा सम्बन्ध केवल एक निश्चित मत से ही नही किन्तु व्यवहार के एक ऐसे निश्चित अनुक्रम से भी है जिसे निम्न प्रकार से योजनाबद्ध रूप म स्पष्ट किया जा सकता है। अधिकाश म प्राय मध्यवर्ती दरजा म (किन्तु कभी कभी इससे पहले भी) किशोरो का झुकाव कुछ विषयो, उदाहरणार्थ, प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र म, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान आदि, की ओर प्रतीत होता है। यह पूरी तरह प्राकृतिक और सकारात्मक प्रभास है। किन्तु यह प्राय पृथक विद्या विशेष की ओर *एकांगी चयनात्मक रुख का रूप ग्रहण* कर लेता *है—जिस विषय पर हम विचार कर रहे है, यह मानवतावादी विषयो की रुचि की* प्रमुख हानि होगी। स्वभावत, इस प्रकार के झुकावो पर अध्यापको और माता पिता के द्वारा ध्यान दिया जाता है। इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि यह स्थिति अपवादस्वरूप और अनोखी नही है किन्तु व्यक्तित्व विकास म न्यूनाधिक रूप से सामान्य है। फिर भी, इसके परिणामो म से एक विद्यार्थियो के सकीर्ण शिक्षा के पक्ष मे विशेष रुचि की ओर क्रमिक विचलन है।

कक्षाएँ झुकावो के निबन्धनो के अनुसार विभाजित होनी प्रारम्भ हो जाती

हैं, उदाहरण के लिए, वे जो गणित की ओर आकृष्ट हाल हैं उसका अतिरिक्त साहित्य पढते हैं और उस विषय पर, प्राय अन्य विद्या विशेष की कीमत पर, अपेक्षाकृत अधिक ध्यान देते है।

अध्यापक तुरन्त उन विद्यार्थियो को पहचान लते हैं जो विशेष रूप से अपने विषय मे रुचि रखते हैं और उन्हे भी पहचान लेते हैं जो उस विषय को 'गौण' समझते हैं। जसी आशा की जा सकती थी, यद्यपि मान्य नही, वे पूर्ववर्ती को अधिक समय देत हैं। इसी प्रकार माता पिता भी अपने बच्चो की किसी विशेष विषय मे रुचि को देखकर उन्हे भावी उत्कृष्ट गणितज्ञो, भौतिकशास्त्रियो अथवा शायद भाषाविदो के रूप चित्रित करते हुए ही प्रसन्न होते है। वे प्राय दूसरे विषयो की गिरती हुई उपलब्धियो के विषय म अपेक्षाकृत कम चिन्तित होते है। किसी के बच्चो को किसी चुने हुए विषय की अग्रसरता को देखने की इच्छा किसी उच्चतर शिक्षा सस्थान मे सभावित प्रवेश के लिए उपचेतना अथवा चेतना से युक्त चिन्ता को प्रतिबिम्बित करती है। अन्त म किशोर स्वय भी माता पिता और अध्यापको की ओर स भी चाहे स्पष्ट अथवा मौन प्रोत्साहन से भी अपने हाल मे ही खोजे हुए 'विशेष क्षेत्र' को महत्व देन लगत है। इसक अतिरिक्त लेखक ने विभिन्न दरजो मे ऐसे 'विशेषज्ञता' की निम्नलिखित अभिव्यक्ति का प्रेक्षण किया है 'गणितज्ञ' पूरी कक्षा के जाँच प्रश्नो का उत्तर देते है, 'भाषाविद्' कक्षा की तैयारी के 'वाछित स्तर' को उनकी स्वदेशी अथवा विदेशी भाषा, इत्यादि के लिए सुनिश्चित करते है और परिणाम 'सहकारी समिति' के समान ही कुछ होता है।

हमने विभिन्न लोगा से बार-बार सुना है, 'किन्तु क्या यह वाछनीय नही है।' 'प्रथम, जितना शीघ्र ये विशेषज्ञता प्राप्त करने लगते हैं अपने व्यवसाय को पूर्णतया सीखने के लिए उन्हे उतनी ही अधिक सभावनाएँ और उतना ही अधिक समय मिलेगा, द्वितीय, विशेषज्ञता साधारणतया पारस्परिक सहायता का एक रूप, सयुक्त विभाजित गतिविधि का एक प्रकार है। सक्षेप मे, इस प्रकार की 'शीघ्र विशेषज्ञता' के पक्ष म बहुत से तर्क है। किन्तु क्या वे वस्तुत इतने स्वय स्पष्ट हैं जितना 'सामान्य बोध' सकेत करता दिखायी देता है?

हम इस बिन्दु पर दूसरी दिशा से भी पहुँचें। एक क्षण के लिए हम मान सकत है कि *नतिक स्वरूप क विचार भविष्य के व्यवसाय के चुनाव एक गौण तत्व का* निर्माण करते है (यद्यपि हमने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि वस्तुत यह बात नही है।) शायद लेखक का विचार गलत हो—क्योकि यह भ्रामक रूप से इतना स्पष्ट प्रतीत होता है जितनी शीघ्र विशेषज्ञता प्रारम्भ होगी उतनी ही गहरी किसी की निपुणता होगी। किन्तु यह प्रतीत होगा कि हमे यह मत व्यवसाय के लिए तैयारी से सम्बन्धित, उस विशुद्ध मध्यकालीन अवधारणा, जो बहुत लम्बे समय पहले लुप्त हो चुकी है, से विरासत म मिला है, कारण यह है कि यह इस

तथ्य पर विचार नही करता कि आज का युवा श्रमिक मध्यकालीन नौसिखिये से तात्विक दृष्टि से भिन्न है। इस बात को देखने म, कि 'विशेषज्ञ के रहस्य' एक पीढी से अगली पीढी को सप्रेषित किये जाते थे, हम इस बात पर ध्यान देने मे असफल होते हैं कि आज ये 'रहस्य' स्वय ही बहुत परिवर्तित हैं और कोई व्यक्ति जो आज विशेषज्ञ बन जाता है वह एसा व्यक्ति होता है, जो अपने व्यवसाय के रहस्यो को परिवर्तित करने अर्थात, अपने काय तक सजनात्मक ढग से पहुँचने की योग्यता से सम्पन्न है।

इसमे कोई सन्देह नही कि विद्यालय विशेषज्ञो की तैयारी मे सारभूत भूमिका निभाते हैं। किन्तु क्या इसका अथ यह है कि विद्यार्थियो को एक सकीण विशेषज्ञता की शिक्षा दी जानी चाहिए? कारण यह है कि अन्त म यह विद्यालयो का ही काय है कि वे विद्यार्थियो को विशिष्ट व्यवसाय की शिक्षा की अपेक्षा नाना विध सजनात्मक गतिविधि और जीवन तथा श्रम के लिए तयार करें। ऐसे सन्दभ म शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य द्विपक्षीय समस्या पर केन्द्रित होता है समाज के सक्रिय सदस्यो को नागरिको के रूप मे शिक्षित करना और सस्कृति के सप्रेषण तथा आगे के विकास के लिए प्रावधान करना।

शिक्षा म विशेषज्ञता की आवश्यकताएँ प्राय सामाजिक विकास की आवश्यकताओ से सम्बधित होती हैं। फिर भी यह व्यापक रूप से ज्ञात है कि समाज जितने अधिक विकसित होते है उतनी ही कम तकनीकी दृष्टि से, शिक्षा विशिष्टीकृत होनी चाहिए। ऐसा इस कारण होता है कि तकनीकी रूप से अधिक विकसित समाजो म उत्पादन मे विचलन अपेक्षाकृत अधिक तजी से घटित हाने हैं। तदनुसार, विशेषज्ञता के सकीण रूप भी शीघ्रता से अपना प्रसग खो देते है। सक्षेप म, यदि इस पर आर्थिक विश्लेषण की सरचना के अन्तगत भी विचार किया जाय तो सकीण विशेषज्ञता श्रम की सुरक्षित निधि को शिक्षित करने के लिए प्रभावकारी उपकरण नही है।

पूजी म मशीन उत्पादन की स्थितियो के अधीन 'विशेषज्ञता' की प्रक्रिया का विश्लेषण करत हुए काल मावस ने कहा कि यही वह ढग है जिसमे 'व्यावसायिक बौनापन', अर्थात मनुष्य की सजीव गतिविधियो का स्वय जीवन की सम्पूण बहुमूल्यता से अवरुद्ध किये हुए सामाजिक उत्पादन के सकीण क्षेत्र मे रूपान्तरण का विकास होता है।[1] इसी प्रकार, विराधाक्ति के उत्कृष्ट साहित्यकार बर्नार्ड शा ने कहा कि अनवरत विशेषज्ञता के साथ हम शीघ्र ही ऐसे 'विशेषज्ञ दखेंग जो 'कुछ नही के विषय म सब कुछ जानेंगे।

सावियत समाजशास्त्रवेत्ता व्लादीमिर शुबक्नि 'सकीण और 'विशाल'

1 दखिये, काल मावस पूजी, भाग I, पृ० 340 41, 458

शिक्षा के बीच के अन्तर का 'अयव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं के लिए कुशल विशेपज्ञ तयार करने के काय और सस्कृति को सप्रेपित करने के काय के बीच' के अन्तर्विरोध के रूप म प्रतिपादित करत ह।

एक-पक्षीय, सकीण विशेपज्ञता की स्पष्ट कमियाँ व्यापक, नानाविध शिक्षा के मौलिक महत्व की ओर सकेत करत हैं।

सक्षेप म, केवल कोई व्यापक शिक्षा ही विद्यार्थियो के लिए स्वतन्त्र रूप से उस क्षेत्र, जिसमे वे अपनी योग्यताओ अर्थात भविष्य के व्यवसाय का प्रयोग करेंगे, अपने सामाजिक जीवन और अपने रहने के ढग के क्षेत्र को निर्धारित करना सभव कर सकती है।

उस समस्या का हल करना किशोरावस्था को बाल्यावस्था से जोडने वाले अन्तिम सूत्र को तोड दता है, क्योकि व्यवसाय का चुनाव किसी युवा व्यक्ति का प्रथम कतव्य है। फिर भी, भविष्य के व्यवसाय के चुनाव मे अभिव्यक्त किसी युवा व्यक्ति की जीवन के प्रति सक्रिय प्रवृत्ति के लिए पूर्वापेक्षाएँ किशोरावस्था की सम्पूण अवधि मे होने वाले व्यक्तित्व विकास की सम्पूण सरचना के द्वारा निर्मित होती है। कोई निर्बाध रूप से कह सकता है कि किसी युवा व्यक्ति की जीवन के प्रति सक्रिय प्रवृत्ति किशोरावस्था म उन सामाजिक और नतिक आदर्शों, जो केवल उपयोगितावाद म रूपान्तरित नही किये जा सकते, के विकास के द्वारा प्रभावित होती है। किसी के स्वय के उद्देश्यो की परिभापा करने, वतमान और भविष्य की गतिविधियो को नियन्त्रित करने वाले सक्रिय रूप से महत्वपूण लक्ष्यो (आदर्शों) को निश्चित करने, ससार और स्वय के प्रति विशुद्ध बचकाना दृष्टिकोणो को पराभूत करन की परिभापा करन की योग्यता, और अन्त म परिभापित उद्देश्यो को प्राप्त करने की योग्यता—ये सब किशोरावस्था की अवधि मे व्यक्तित्व विकास के तत्व है।

किशोरो के व्यक्तित्व विकास की आधारभूत रूप-रेखाओ की परिभापा करने और सलग्न कठिनाइयो का उल्लेख करने म हमने उनकी वतमान विपय-वस्तु को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। ये, जसा हम देख चुके है, अपेक्षाकृत जटिल और अन्तर्विरोधी है।

जसा हम बार-बार जोर दे चुके है, किशोरावस्था का विकास कायम रहता है। इसके अनुसार यह मौलिक महत्व का विपय है कि उन कठिनाइयो का निदान किया जाय जिनका हम किशोरो को शिक्षित करने मे सामना करना पडता है। इसका कारण यह है कि इस प्रकार की कठिनाइयो को पराभूत करने मे एक सही निदान हमेशा एक सोपान होता है।

"किसी व्यक्ति को, उसके नवीन अकुर के बिना, जो सकारात्मक और सुन्दर है, बाल्यावस्था को छोडना और जीवन मे प्रवेश नही करना चाहिए, कोई ऐसे नवीन अकुरो के बिना नयी पीढी को उत्पन्न नही कर सकता।"

—फ्योदोर दोस्तोयेव्स्की

अध्याय 5

युवावस्था

यौवन
यौवन यह कब प्रारम्भ होता है ?
त्वरण एव शिशुता व्यक्तित्व के विकास मे अतुल्यकालवाद
स्वग मे और पृथ्वी पर विवाह
पिता और पुत्र आयु और पीढियाँ
मैं सदा युवक रहूँगा

यौवन

हमारी अवस्था प्राय 'यौवन की अवस्था कहलाती है। स्पष्टत ऐसी परिभाषाए सापक्ष होती ह कोई इमे समान रूप से 'बालका की अवस्था अथवा 'वृद्धा की अवस्था' के रूप मे अभिव्यक्त कर सकता है। ऐसी दोनो प्रकार की परिभाषाओ के आधार है। यह बात बिल्कुल समझ मे आने लायक है कि हमारी सभ्यता का भविष्य और उसकी आगे की सभावनाएँ युवका से सयुक्त हो चुकी है। सक्षेप म, युवावस्था की प्रशसा मे काफी कहा जाता है यद्यपि अनेक बडी उम्र क लोग भी है जो युवा लोगो के विचारो और रखो के विषय म बडे आलोचक है। इस प्रकार प्राय यह कहा जाता है कि पहले युवक 'ज्यादा अच्छे' थे और अब वे आदर की कमी, अहकार और अनभिज्ञ आत्म सन्तोष प्रदर्शित करते हैं, वे उस प्रत्यक बात का बुरा बताते है जिसे वे समझ नही सकत या स्वीकार नही कर सकते कि वे सामान्यतया दुराग्रही असतुलित और निदयी भी है। ऐसे लोगो के लिए, निस्सदेह यह उपयोगी होगा कि वे यौवन का स्मरण करे जब व इसी प्रकार के निणया के पात्र थ। इससे उन्ह यह समझने मे सहायता मिलेगी कि आज की युवा पीढी न तो 'अधिक बुरी' और न 'अधिक अच्छी' है किन्तु भिन्न है। यह अधिक बुद्धिमानी होगी कि उनकी बेकाबू निदा न की जाय किन्तु निणय देने से पहले *समझने का प्रयत्न किया जाय।*

युवको स सम्बधित उन विशुद्ध भावात्मक सम्मतिया की चर्चा करन की भी आवश्यकता नही होगी जिन्ह केवल 'पूर्वाग्रह ही समझा जा सकता था यदि वे स्वय युवावस्था के महत्वपूण अभिलक्षण को भी अभिव्यक्त नही करते। इस कारण यह व्यापक रूप से ज्ञात है कि किसी युग के अच्छे के साथ-साथ, बुर आविर्भाव उसके युवा प्रतिनिधियो म सबसे अधिक स्पष्ट रूप मे प्रतिबिम्बित होत हैं। इसके अतिरिक्त, युवा लोग अपने युग के केवल गुणो और अवगुणो के ही प्रतीक नही होन किन्तु सक्रिय रूप से उसकी प्रशसा और इसके अवगुणो की जोरो से निन्दा भी करते हैं। इसस युवा लोगा की चापलूसी और अर्नजित आलोचना दानो उत्पन्न होती है जो क्रमश उनके असली गुणा का उनसे जो दूसरे उन पर आरोपित करत ह अतर करना प्राय कठिन बना दत है। फिर भी, किसी को

यह ध्यान रखना चाहिए कि युवा लोग अपने एतिहासिक युग के दपण होते हैं।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि मनोवैज्ञानिक अध्ययनो की विषय-वस्तु के रूप मे युवा लोग अनक विशिष्टताओ से सम्पन्न होते है। मनोवज्ञानिक प्रक्रियाआ को नियन्त्रित करने वाले सिद्धान्तो से सम्बन्धित मनोवज्ञानिक सर्वेक्षणो के बहुत से अनुसधान साधारणत युवा लोगो से सम्बन्धित अध्ययनो पर आधारित होते हैं। एक आयु वग के रूप म युवा लोगो के विशिष्ट मनोवज्ञानिक लक्षणो के सम्बन्ध के, दुर्भाग्य से यह सत्य है कि आज, इस क्षेत्र मे बालको अथवा वयस्क व्यक्तियो के मनोविज्ञान सम्बन्धी ज्ञान की अपेक्षा, कम ज्ञान है। यह लाक्षणिक भी है कि बाल मनोविज्ञान और वृद्ध-आयु-वग के मनोविज्ञान (वृद्धावस्था-मनोविज्ञान) के असदृश युवा लोगो के मनोविज्ञान के लिए कोई सामान्य शब्द भी अस्तित्व मे नही है। यह सत्य है कि हाल ही मे सोवियत सघ मे युवा-मनोविज्ञानशास्त्र का सामाजिक सस्थान स्थापित किया गया है। सोवियत अनुसधानकर्त्ताओ द्वारा प्रस्तावित शब्द 'युवा मनोविज्ञानशास्त्र' की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द जुवेनिस' (युवक) से हुई है। युवा मनोविज्ञानशास्त्र युवा लोगो के मनोवैज्ञानिक अभिलक्षणो का विज्ञान है और विज्ञान की वह नयी शाखा है जो यौवन और प्रौढता के दौरान अवयवो के विशिष्ट अभिलक्षणो का प्रधानत अध्ययन करती है। तो भी, फिलहाल ये अध्ययन प्रधानत चिकित्सकीय पहलुओ पर प्रकाश डालते है।

आज मनोवैज्ञानिक अध्ययनो के उस क्षेत्र का विस्तार करना और गुण का सुधार करना अत्यन्त महत्वपूण है जो युवावस्था वर्गों, अर्थात् मानव-जीवन के तीसरे और चौथे दशक के लिए विशिष्ट हैं। इस प्रकार के सन्दभ मे मानव-जीवन म मनोवज्ञानिक अथ की परिभाषा करने की समस्या अपने उन सबसे महत्वपूण अभिलक्षणा सहित जो युवावस्था की विशेषताओ को निर्धारित करत ह, महत्वपूण बनी रहती है। यह इस कारण भी महत्वपूण है कि युवावस्था के सम्बन्ध मे अत्यधिक विशाल समझदारी का परिणाम 30वी के अन्त म 'युवा वैज्ञानिक, 40वी के प्रारम्भ मे 'युवा कवि' और अपनी 50वी वषगाठ मनाने वाले 'युवा फिल्म निर्माताओ' के प्रसगो के रूप म होता है। ऐस मामलो मे एक साधारण अवधारणा गम्भीर समस्याएँ प्रस्तुत कर दती है जब वह वास्तविक जीवन स्थितियो पर लागू की जाती है।

यौवन यह कब प्रारम्भ होता है ?

गलतफहमी से बचने के लिए हम यौवन की अवधारणा को एक विशिष्ट आयु-वर्ग के रूप मे स्पष्ट करके प्रारम्भ करें। यौवन तरुणावस्था का अनुसरण नही करता

यौवन

हमारी अवस्था प्राय 'यौवन की अवस्था' कहलाती है। स्पष्टत ऐसी परिभाषाए सापेक्ष होती ह कोई इसे समान रूप से 'बालको की अवस्था' अथवा 'वृद्धो की अवस्था' के रूप म अभिव्यक्त कर सकता है। एसी दोना प्रकार की परिभाषाओ के आधार है। यह बात बिल्कुल ममझ मे आने लायक है कि हमारी सभ्यता का भविष्य और उसकी आगे की सभावनाएँ युवको से सयुक्त हो चुकी है। सक्षेप मे, युवावस्था की प्रशसा में काफी कहा जाता है यद्यपि अनेक बडी उम्र के लोग भी है जो युवा लोगा क विचारो और रखो के विषय म बडे आलोचक है। इस प्रकार प्राय यह कहा जाता है कि पहले युवक 'ज्यादा अच्छे' थे और अब वे आदर की कमी, अहकार और अनभिज्ञ आत्म सन्तोष प्रदर्शित करत हैं, वे उम प्रत्येक बात का बुरा बतात ह जिसे वे समझ नही सकत या स्वीकार नही कर सकते कि वे सामान्यतया दुराग्रही असतुलित और निर्दयी भी है। ऐसे लोगो के लिए, निस्सन्देह यह उपयोगी होगा कि वे यौवन का स्मरण करें जब वे इसी प्रकार के निर्णया के पात्र थे। इससे उन्ह यह समझने मे सहायता मिलेगी कि आज की युवा पीढी न तो 'अधिक बुरी और न अधिक अच्छी' है किन्तु भिन्न है। यह अधिक बुद्धिमानी होगी कि उनकी बेकार् निन्दा न की जाय किन्तु निर्णय देने से पहले समझने का प्रयत्न किया जाय।

युवको स सम्बन्धित उन विशुद्ध भावात्मक सम्मतियो की चर्चा करन की भी आवश्यकता नही होगी जिन्हे केवल 'पूर्वाग्रह' ही समझा जा सकता था यदि वे स्वय युवावस्था के महत्वपूर्ण अभिलक्षण को भी अभिव्यक्त नही करत। इस कारण यह व्यापक रूप स ज्ञात है कि किसी युग के अच्छे के साथ-साथ, बुरे आविर्भाव उसके युवा प्रतिनिधियो म सबसे अधिक स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होत हैं। इसके अतिरिक्त युवा लोग अपन युग के केवल गुणो और अवगुणो के ही प्रतीक नही होत किन्तु सक्रिय रूप से उसकी प्रशसा और इसके अवगुणो की जोरो से निन्दा भी करत है। इससे युवा लोगा की चापलूसी और अनर्जित आलोचना दोनो उत्पन्न होती हैं जो क्रमश उनके असली गुणा का उमसे जो दूसरे उन पर आरोपित करत ह अन्तर करना प्राय कठिन बना देत है। फिर भी, किसी को

यह ध्यान रखना चाहिए कि युवा लोग अपने एतिहासिक युग के दपण होते हैं।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि मनोवैज्ञानिक अध्ययनो की विषय-वस्तु के रूप म युवा लोग अनेक विशिष्टताओ से सम्पन्न होत ह। मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओ को नियन्त्रित करने वाले सिद्धान्तो से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षणो के बहुत से अनुसधान साधारणत युवा लोगो से सम्बन्धित अध्ययनो पर आधारित होते है। एक आयु वग के रूप मे युवा लोगो के विशिष्ट मनोवैज्ञानिक लक्षणो के सम्बन्ध के, दुर्भाग्य से यह सत्य है कि आज, इस क्षेत्र मे बालको अथवा वयस्क व्यक्तियो के मनोविज्ञान सम्बन्धी ज्ञान की अपेक्षा, कम ज्ञान है। यह लाक्षणिक भी है कि बाल मनोविज्ञान और वृद्ध-आयु-वग के मनोविज्ञान (वृद्धावस्था-मनोविज्ञान) के असदश युवा लोगो के मनोविज्ञान के लिए कोई सामान्य शब्द भी अस्तित्व म नही है। यह सत्य है कि हाल ही म सोवियत सघ मे युवा मनोविज्ञानशास्त्र का सामाजिक सस्थान स्थापित किया गया है। सोवियत अनुसधानकर्त्ताओ द्वारा प्रस्तावित शब्द 'युवा मनोविज्ञानशास्त्र' की व्युत्पत्ति लटिन शब्द जुवेनिस' (युवक) से हुई है। युवा मनोविज्ञानशास्त्र युवा लोगो के मनोवैज्ञानिक अभिलक्षणो का विज्ञान है और विज्ञान की वह नयी शाखा है जो यौवन और प्रौढता के दौरान अवयवो के विशिष्ट अभिलक्षणो का प्रधानत अध्ययन करती है। तो भी, फिलहाल ये अध्ययन प्रधानत चिकित्सकीय पहलुओ पर प्रकाश डालते है।

आज मनोवैज्ञानिक अध्ययनो के उस क्षेत्र का विस्तार करना और गुण का सुधार करना अत्यन्त महत्वपूण है जो युवावस्था-वर्गो, अर्थात मानव-जीवन के तीसरे और चौथे दशक के लिए विशिष्ट है। इस प्रकार के सदभ म मानव-जीवन म मनोवैज्ञानिक अथ की परिभाषा करने की समस्या अपने उन सबसे महत्वपूण अभिलक्षणो सहित, जो युवावस्था की विशेषताओ को निर्धारित करते ह, महत्वपूण बनी रहती है। यह इस कारण भी महत्वपूण है कि युवावस्था के सम्बन्ध मे अत्यधिक विशाल नासमझदारी का परिणाम 30वी के अन्त मे 'युवा वैज्ञानिक', 40वी के प्रारम्भ मे 'युवा कवि' और अपनी 50वी वषगाँठ मनाने वाले 'युवा फिल्म निर्माताओ के प्रसगो के रूप मे होता है। ऐसे मामलो मे एक साधारण अवधारणा गम्भीर समस्याएँ प्रस्तुत कर देती है जब वह वास्तविक जीवन स्थितियो पर लागू की जाती है।

यौवन यह कब प्रारम्भ होता है ?

गलतफहमी से बचने के लिए हम यौवन की अवधारणा को एक विशिष्ट आयु-वर्ग के रूप म स्पष्ट करके प्रारम्भ करें। यौवन तरुणावस्था का अनुसरण नही करता

किन्तु वस्तुतः इसे अपने स्वयं के प्रथम चरण के रूप में समाविष्ट कर लेता है।

इस बिंदु पर लेखक की तर्क के छोटे-से छोटे दोष पर ध्यान देने वाला सावधान पाठक आपत्ति उठा सकता है। वह कह सकता है कि इसमें तरुणावस्था (अथवा अन्तिम किशोरावस्था) को एक पृथक एवं स्वायत्त अवधि न मानना अंतर्निहित है। हम इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न करें।

जीवन की अवस्थाओं के इतिहास पर विचार करने में हमने बाल्यावस्था और किशोरावस्था, प्रौढता एवं वृद्धावस्था के सम्बन्ध में उल्लेख किया है, किन्तु तरुणावस्था के सम्बन्ध में लगभग कुछ नहीं कहा है। फिर भी, ऐसा करने में हम आयु वर्गों के उस मौजूदा इतिहास का अनुसरण कर रहे हैं जिसने उस अवस्था को परम्परागत रूप से कोई स्थान नहीं दिया है। और अधिक सही रूप में जीवन की वे अवस्थाएँ जो आज किशोरावस्था और तरुणावस्था कही जाती है, दोनो, वास्तव में, (विगत ऐतिहासिक युगो के सामाजिक जीवन की वास्तविक आयु-संरचना और व्यक्तियो की आयु सम्बन्धी चेतना में) प्रत्यक्ष रूप से या तो बाल्यावस्था में अथवा युवावस्था में समाविष्ट थी, क्योंकि बाल्यावस्था का अनुसरण सीधे ही कर्मशील वयस्क जीवन के द्वारा होना था। केवल 1920 के दशक में ही यह हुआ कि किशोरावस्था एक विशिष्ट प्रभास के रूप में आविर्भूत हुई। यह सामान्य शिक्षा की प्रगति किशोर विद्यालय छात्रों के एक वर्ग के रूप में विकास और बाल्यावस्था और वयस्कता के बीच एक विशिष्ट संक्रमणकालीन सोपान के साथ जुडी हुई थी। तब तरुणावस्था की किस्मत क्या थी?

फ्रांसीसी इतिहासकार फिलिप एरीस, जिनकी कृति का हम पहले ही कई बार उल्लेख कर चुके हैं, लिखते हैं कि 17वीं शताब्दी में ठीक वही अवधारणा, जिसे आज हम तरुणावस्था के रूप में अभिव्यक्त करते हैं अस्तित्व में नहीं थी और उसके आविर्भाव में एक दीर्घकालीन अवधि की आवश्यकता पडी। हमारी सम्मति में, आविर्भाव की यह प्रक्रिया अभी समाप्त नहीं हुई है। तरुणावस्था अभी तक पर्याप्त रूप से, किसी जीवन-वृत्त की संरचना में एक स्पष्ट आयु प्रभास के रूप में स्पष्टतया परिभाषित नहीं हुई है। प्रमुख मनोविज्ञानवेत्ताओं की कृतियों की ओर उन्मुख होते हुए किसी को इस तथ्य में आश्चर्य होता है कि 14 और 21 वर्ष की आयु के बीच एक मनुष्य को समान बारंबारता से इन शब्दों के प्रयोग में किसी व्यवस्थित क्रम के बिना ही एक किशोर, एक युवक और एक युवा वयस्क के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है। पश्चिम के पारम्परिक शिक्षाशास्त्र में यह अन्तर वास्तव में अनुपस्थित है बाल्यावस्था से वयस्क जीवन तक संक्रमण आयु जो प्रायः 10-12 वर्ष की अवस्थाओं से लेकर 23-25 वर्ष की अवस्थाओं से जुडी हुई होती है एक ही शब्द, यथा, किशोरावस्था, के द्वारा अभिव्यक्त की जाती है।

साहित्यिक कथाओं में भी किसी का यथा ही प्रभाग मिल सकता है। किशोर

रूप से लेव टॉल्सटॉय अपने त्रिशास्त्र—**बाल्यावस्था, लड़कपन, यौवन** में युवावस्था की ओर संकेत करने लगते हैं जब नायक 15 वर्ष का हो जाता है, जबकि फ्योदोर दोस्तोव्स्की के उपन्यास **ए रॉ यूथ** में अभी वह 21 वर्ष की आयु का है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्पष्टता का यह अभाव, जो सर्वप्रथम शब्दावली का विषय प्रतीत होता है, वास्तव में, हमारे समय की तरुणावस्था की किशोरावस्था और युवा वयस्कता के बीच की न्यूनाधिक रूप से स्पष्टतया आविर्भूत स्थितियों की सीमा रेखा की हैसियत को प्रतिबिम्बित करता है।

हमारी सम्मति में, तरुणावस्था, बाल्यावस्था और यौवन के बीच स्थित व्यक्तित्व विकास की द्वितीय संक्रमणकालीन आयु (या अवस्था) कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त, जबकि प्रथम संक्रमणकालीन आयु (किशोरावस्था) बाल्यावस्था के अधिक समीप होती है और बाल मनोविज्ञान की समस्याओं का विवेचन करने में प्रायः अभिव्यक्त की जाती है तरुणावस्था अथवा द्वितीय संक्रमणकालीन अवस्था, स्पष्टतया यौवन की अवस्था के अधिक समीप होती है। इसकी समस्याओं का विवेचन करने में हमारा यही सन्दर्भ होगा। हमारी सम्मति में, किशोरावस्था और तरुणावस्था के बीच का जल विभाजक किसी प्रकार के स्वतन्त्र जीवन का प्रारम्भ (शिक्षा की सम्पूर्णता, नियोजन का प्रारम्भ, सैनिक सेवा का प्रारम्भ, विवाह आदि) है। कारण यह है कि किसी व्यक्ति के जीवन के ये परिवर्तन उसकी सम्पूर्ण व्यक्तित्व-संरचना और चेतना पर प्रमुख प्रभाव डालते है। किशोरों, जो मुख्यतः 'विद्यालय जीवन' के निबन्धनों में रहते हैं, के असदृश्य यह केवल उनकी चेतना और विचारों के स्तर पर ही नहीं है कि तरुण वयस्कों के वास्तविक संसार में नियोजित होते हैं, क्योंकि वे किशोरों की सम्भावनाओं से अधिक (विवाह, सैनिक सेवा, निर्वाचन का अधिकार आदि) सम्पन्न होते है। इस सम्बन्ध में महान फ्रांसीसी विचारक जीन जेक्विस रूसो के द्वारा **एमाइल अथवा ट्रीटाइज आन एजूकेशन** में अभिव्यक्त विचार अत्यन्त आकर्षक है। रूसो ने तरुणावस्था (रूसो पन्द्रह वर्ष की अवस्था की ओर संकेत करते हैं) के व्यक्तित्व के 'द्वितीय जन्म' की आधारभूत विषय-वस्तु के रूप में सचेतन आत्म-निर्णय के तत्व पर बल दिया। किसी का, फिर भी वास्तविक आत्म निर्णय के सम्बन्ध में जो घटित हो रहा है उसके ज्ञान के सम्बन्ध में इतना अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए। किशोरों में जीवन और व्यवसाय का मार्ग चुनने और सुदूर लक्ष्यों की परिभाषा करने में मानसिक आत्म निर्णय पहले से ही वर्तमान रहता है। एक तरुण किशोर से इस बात में भी भिन्न होता है कि वह जीवन के एक विशिष्ट मार्ग पर दृढ़ता से चलते हुए और एक विशिष्ट व्यवसाय में विशेषज्ञता प्राप्त करके इन योजनाओं

को क्रियान्वित करना प्रारम्भ कर देता है।[1] यही कारण है कि उसके प्रत्येक कदम का उत्तरदायित्व पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ा है और प्रत्येक त्रुटि के एग गम्भीर परिणाम हो सकते हैं जो कभी-कभी प्रभावशाली हो सकते हैं (उदाहरण के लिए, असफल विवाह)। तरुणावस्था का यह अभिलक्षण सोवियत समाजशास्त्र वेत्ता व्लादीमिर शुबकिन के द्वारा चित्रित किया गया है जिन्होंने 17-25 की अवस्था को जीवन का एसा 'भाग्यसूचक' काल अभिलक्षित किया जिसके दौरान त्रुटियों की कीमत विद्यालय का नीचा अंक नहीं है किन्तु कभी-कभी विनष्ट जीवन के अनेक वर्ष हैं।

तरुण की स्वतन्त्रता की मात्रा से सम्बन्धित परिवर्तनों के अतिरिक्त अन्य परिवर्तन भी होते हैं। सोवियत संघ में इस काल में यह होता है कि कोई युवा व्यक्ति फिर भी उच्चतर शिक्षण संस्थानों अथवा तकनीकी और व्यावसायिक विद्यालयों में भी छात्रवृत्ति पा सकता है, वे काम करके आमदनी भी कर सकते हैं और अपने स्वयं के आवास का अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। संक्षेप में, वे एक निश्चित स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेते हैं और माता पिता के संरक्षण एवं भरण-पोषण पर कम निर्भर करते हैं। इस वर्ग के प्रति वयस्कों का रुख भी परिवर्तित हो जाता है जबकि अधिकांश बातों में किशोरों का बालकों के रूप में समझा जाना कायम रहता है इस स्तर पर एक युवा व्यक्ति वयस्क समझा जाने लगता है। और साधारणतया सामाजिक अनुभव मे उनके स्पष्ट अन्तरों के होते हुए भी, एक 18-वर्षीय और, उदाहरण के लिए, 22-वर्षीय दोनों के प्रति दृष्टिकोण एक ऐसे युवा व्यक्ति, जो एक स्वतन्त्र जीवन प्रारम्भ कर रहा है, के साथ के सम्बन्ध को प्रतिबिम्बित करते हैं।

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ मे तरुणावस्था एसे आन्तरिक चरम बिन्दु के रूप में देखी गयी जो किशोरावस्था के चरम बिन्दु के जैसा ही था और फिर भी तात्विक रूप से भिन्न था। दोनों वयस्कता के वातावरणों में व्यक्ति के स्वयं के व्यक्तित्व की खोज से सम्बन्धित है। किन्तु किशोर के मामले में वयस्क जीवन में यथार्थ में नियोजित होने की असमर्थता (अतः किशोरावस्था के तनाव और अन्तर्विरोध) पर आधारित है, जबकि तरुणों के मामले में स्थिति बदल जाती है। यद्यपि उसे वयस्कों के सभी अधिकार प्राप्त होते है (सोवियत संघ में काम करने का अधिकार 16 वर्ष की आयु मे, नागरिक गतिविधि और विवाह का अधिकार 18 वर्ष की आयु मे प्रारम्भ हो जाता है) फिर भी युवा व्यक्ति अन्य कारणों से उस वयस्क जीवन मे 'स्वयं को पाने' में असमर्थ होता है। जबकि उसकी चेतना के आन्तरिक अन्तर्विरोध बिल्कुल सारभूत होते हैं, उसकी जीवन स्थिति में अन्तर्विरोधों द्वारा

---

1 'तरुण' शब्द का सम्बन्ध दोनों लिंगों के युवाओं से है।

एक और अधिक बडी भूमिका भी निभाई जाती है। हम इसे दो अनोखी स्थितिया की शब्दावली मे चित्रित करें।

हाल के वर्षों मे सोवियत सघ मे अपक्षाकृत शीघ्र विवाह करने की ओर झुकाव रहा है। 18 वष की आयु म विवाह किसी को अधिक आश्चय म नही डालत। प्रेम पर आधारित होने पर भी एसा विवाह ठोस आधार की कमी के कारण प्राय कायम नही रहता। तब परम प्रिय व्यक्ति के साथ रहने की आवश्यकता और इच्छा और दूसरी आर, इस प्रकार के जीवन के लिए प्रबध करने की असमथता के बीच एक अन्तर्विरोध खडा हो जाता है।

दूसरा उदाहरण, किसी विशिष्ट व्यावसायिक क्रियाकलाप म प्रवेश करने पर युवा व्यक्ति प्राय उस क्षेत्र म तुरत और बिना विलम्ब के क्रातिकारी रूपान्तरण करना चाहते है। उदाहरण के लिए वे कोई वैज्ञानिक खोज अथवा सभवत काई अय महान काय करने की इच्छा कर सकत है, शत यह है कि वह स्पष्ट हो प्रभावोत्पादक हो। किन्तु साधारणत वह 'तारुण्य का अतिवाद तदनुरूप सभावनाओ म समर्थित नही होता वाछित अनुभव और ज्ञान का अभाव होता है। और ऐसे मामला म युवा व्यक्ति को अपन व्यावसायिक क्षत्र म ऐसा जीवन व्यतीत करन का बाध्य हाना पडता है जिस वह स्वय नीचा समझता है और जिसमे, वह एक विद्यार्थी की भूमिका निभाता है—एसी भूमिका जो उसकी चेतना मे उसकी पूववर्ती विद्यालय बालक की स्थिति स सलग्न है और, जिसे वह किसी पहले की अवस्था की कोई वस्तु समझ कर छोडना चाहता है।

यदि कोई तरुणावस्था के 'उस काल्पनिक आदश' का अत्यधिक गभीरता से न ले जो किसी सीमा तक अतीत के विचारकों की कल्पना से विकसित हुआ, तो, हमारी सम्मति म आज इसे व्यक्तित्व विकास मे एक विभिन्न अवस्था के रूप म समझने के कोई आधार नही है। हम विश्वास करत है कि यह एक सक्रमणकालीन अवस्था, अथात वयस्क जीवन के प्रारम्भ के रूप म, यौवन की प्रथम अवस्था है और, उस अथ म यह किशोरावस्था से स्पष्टतया भिन्न है।

त्वरण एवं शिशुता व्यक्तित्व के विकास मे अतुल्यकालवाद

बालकों और युवा लोगो के त्वरित शारीरिक विकास के अथ मे त्वरण को कभी-कभी 20वी शताब्दी की सबसे बडी पहेली के रूप मे अभिव्यक्त किया जाता है। बिना किन्ही 'दृश्य कारणो' के 1960 के दशक और 1970 के दशक की युवा पीढी न शारीरिक विकास के पहले के सभी रेकार्डो को पार कर लिया।

इसमे मानव जाति की नवीनतम पीढी के वैयक्तिक 'उत्कृष्ट' प्रतिनिधियो की 2 मीटर की ऊँचाइया और लैंगिक परिपक्वता की अपेक्षाकृत कम आयु और इसके अतिरिक्त वह जिसने प्रकृति के स्वेच्छाचारी व्यवहार (आग क्या आयगा ?) के प्रति आश्चय, उल्लास और उद्वेग उत्पन्न कर दिया है सम्मिलित है। सक्षेप मे, इसने उन शरीरविज्ञानवेत्ताओ, समाजविज्ञानवेत्ताओ, मनोविज्ञानवत्ताओ तथा शिक्षको मे उच्च रूप से मिश्रित भावनाएँ उत्पन्न कर दी हैं जो उस विरोधाभासी स्थिति का प्रेक्षण करने वाले प्रथम थे जिसम ऊँची कक्षाआ के विद्यार्थी अपने अध्यापको से ज्यादा लम्बे थे। स्वभावत इस प्रभास के सम्बध मे अनेक अध्ययन हुए और अनेक वैज्ञानिक परिकल्पनाए और सिद्धात प्रतिपादित किये गये। उनमे सौर गतिविधि का तीव्रीकरण, पोषण, विटामिन, शहरी, रडियो तरगें, आदि से सम्बधित 'स्वास्थ्यकर चयन सिद्धान्त सम्मिलित है। सोवियत अनुसधानकर्ताओ का नितात सवदनशीलता स यह बताने के लिए किसने माग दशन किया कि सिद्धाता की बहुलता प्रत्येक म सुसस्थापित प्रस्थापनाओ के अभाव की ओर सकेत करतो है। यह सुझाव दिया गया है कि त्वरण विभिन्न जातीय वर्गों के प्रतिनिधियो के बीच बढती हुई सख्या म होने वाले विवाहो पर आरोप्य है। उस स्थिति म, जैसा हमेशा हाता है, जब कइ दष्टिकोण वतमान रहत है वैज्ञानिक उदारवादियो के प्रतिबद्धा की आवाज सुनी जान लगी वे इस बात पर बल देते है कि यह विचित्र प्रभास कारका की बहुलता की क्रियाशीलता के कारण घटित हुआ। जबकि यह विशेष रूप से किसी बात को स्पष्ट नही करता, इसके बावजूद भी इसका शमन कारी प्रभाव हुआ क्योकि किसी प्रकार समस्या की जटिलता और प्रभास की कारको के योग्य पर निभरता हमेशा जनता पर शातिदायक प्रभाव डालता है, यद्यपि वस्तुत यह केवल समस्या मे बचने का साधन है। पत्रकारो और विनान को लोकप्रिय बनाने बालो के सक्रिय सहभागी बनने के कारण ऐसा हुआ कि त्वरण की समस्या के विपय क वादविवाद अकस्मात् एक बबूले की तरह फट जान स पहले चोटी के शिखर पर पहुँच गये जस ही 1980 के दशक के प्रारम्भ मे बालक परिचित आयामा और विकास की दरा म लौट त्वरण समाप्त हो गया।

हाल के वर्षो म हमारे युग की नयी पहेली' का पता लगा है, यद्यपि आग बढ्ते हुए हम दखेगे कि एक प्रमुख जमन जीवविनानवत्ता और वल्ड रिडल्स के लखक अर्नेस्ट हैक्ल न इस प्रकार की केवल सात पहलिया की सूची तयार की है। फिर भी हमारे अपन अशान्त युग मे ये पहलियाँ एक-दूसरे का अनुसरण करती है। जमे ही त्वरण के विपय म नयी पहेली की विशुद्ध प्रयोगाश्रित ढग मे 'खोज हुई', इस बात पर ध्यान दिया गया कि आज की पीढी शिशुतावाद के बहुत से लक्षण प्रकट करतो है।

शिशुतावाद का शाब्दिक अथ (लटिन इनफण्टाइलिस— शिशुतावाला,

शिशुता-सदृश) एवं परिवर्धित विकास जिसमें वयस्कों में ऐसी चारित्रिक विशिष्टताएँ बनी रहती हैं जो बच्चों के अभिलक्षण होते हैं। यह किसी तरह भी नवीन प्रभास नहीं है और निस्सन्देह वयस्क व्यक्तियों के चरित्र में बाल-सदृश विशिष्टताओं के परिरक्षण की ओर केवल संकेत करता है। इस तथ्य में कोई ऐसी अवांछनीय बात नहीं है कि एक वयस्क व्यक्ति अपने बोध में एक निश्चित निष्कपटता और बाल-सदृश नवीनता के साथ-साथ अन्य प्रेरणा, सरलता और कल्पना की प्रचुरता परिरक्षित कर सकता है। ये सभी गुण एक वयस्क के व्यक्तित्व में अनेक प्रकार के ढंगों से एक साथ मिल सकते हैं और व्यंग्यपूर्ण मुस्कान और समय समय पर हल्का चिड़चिड़ापन उत्पन्न कर सकते हैं। किन्तु यह वह प्रभास नहीं है जिससे हमारा सम्बन्ध है। ऐसे व्यक्ति प्रायः 'वृद्ध' के रूप में अभिव्यक्त किये जाते हैं और वे हमेशा अस्तित्व में रहे हैं। दूसरी ओर, शिशुतावाद उस बिन्दु पर प्रारम्भ होता है जब कोई युवा व्यक्ति परजीवीपन की प्रवृत्तियां, सामाजिक, नैतिक एवं नागरिक अल्पविकास के लक्षण प्रदर्शित करने लगता है। अनिवार्य रूप से शिशुतावाद मन और हृदय का आलस्य है। इसको समस्या के रूप में तब पहचाना जाता है जब वह, वस्तुतः किसी युवा व्यक्ति के जीवन का मौलिक ढंग बन जाता है। इस रूप में शिशुतावाद की समस्या स्वभावतः एक सामाजिक प्रभास बन जाती है जिसके हानिकारक परिणाम यथार्थ रूप में निन्दा का आह्वान करते है।

किन्तु हम त्वरण एवं शिशुतावाद दोनों के आश्चर्यजनक सामान्य लक्षणों पर ध्यान दें। ये प्रभास, जो सर्वप्रथम पूर्णतया भिन्न प्रतीत होते है और पारस्परिक विरोधी भी मालूम होते है वस्तुतः एक उभयनिष्ठ स्रोत से उद्भूत होते है और एक सामान्य समस्या—व्यक्तित्व विकास की समस्या के रूपान्तर है। वे इसके पक्षों में से दो को, दो चरम रूपों को अभिव्यक्त करते है। शारीरिक अभिलक्षणों का त्वरित विकास और व्यक्तित्व के अन्य गुणों के विकास की धीमी गति, दोनों व्यक्तित्व विकास के सामान्य मार्ग में विघटित होते है। किन्तु कोई व्यक्तित्व विकास की सामान्य प्रक्रिया का कैसे विवरण देगा ?

यहाँ यह महत्त्वपूर्ण है कि एक मौलिक मनोविज्ञान सिद्धान्त, यथा, व्यक्तित्व विकास में अतुल्यकालवाद के सिद्धान्त को स्मरण किया जाय। मनोविज्ञानवेत्ताओं ने दीर्घकाल से इस बात पर ध्यान दिया है कि व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू असमान रूप में विकसित होते हैं। उदाहरण के लिए, जैसा हम पहले बता चुके हैं, लेव विगोत्स्की का मत था कि किशोरावस्था की एक समस्या किसी किशोर के व्यक्तित्व विकास के विभिन्न, बौद्धिक, लैंगिक तथा सामाजिक परिपक्वता से सम्बन्धित पहलुओं का अतुल्य कालवाद है। अन्य सोवियत मनोविज्ञानवेत्ता बोरिस अनानीव ने मानव की एक व्यक्ति के रूप में परिपक्वता ('शारीरिक' परिपक्वता), व्यक्तित्व के रूप में परिपक्वता ('नागरिक' परिपक्वता), ज्ञान के पात्र के रूप में

परिपक्वता (मानसिक परिपक्वता) और श्रमिक के रूप म परिपक्वता (काम के लिए क्षमता) क आगमन क समय म अतर्न्तुरूपना की ओर सकेत किया। उन्होने इस बात पर भी बल दिया कि समय के इन तत्वो म असगतता मानव जीवन की अन्तिम अवस्था म और भी अधिक घोषित होती है।[1] यह सुविख्यात है कि ऐसी अवधारणाएँ जसे 'नागरिक मृत्यु' अथवा 'राजनीतिक मृत्यु' शारीरिक मृत्यु के साथ बिल्कुल नही हो सकती और अधिक पहले हो सकती है। फिर भी लोग इस विचार को मानने की ओर प्रवृत्त हैं कि शारीरिक मृत्यु के बाद भी मानव व्यक्तित्व उदाहरण के लिए 'महान् पुरुषो' के सम्बन्ध म अमर बना रहता है। आगे हम पदार्थ वातावरण म 'अवसान' के उस प्रभास पर विचार करेंगे जो भी अवयवो की भौतिक मृत्यु के साथ घटित नही होता। सक्षेप म, यह ऐसा अधिक व्यापक प्रभास है जो स्मरण और शिशुतावाद जसे चरम उद्धरणो पर बल देता है। विघटन केवल तभी घटित होते ह जब विभिन्न व्यक्तित्व-विशिष्टताओ का विकास दूसरो की कीमत पर एसी किसी एक विशिष्टता के विकास द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता ह।

तथाकथित 'अद्भुत बालक' शायद 'अनुत्क्रमिक' सिद्धान्त की सबसे अधिक स्पष्ट पुष्टि है। मानव जाति ने अनेक ऐसे 'असाधारण बालको' का भरण पोषण किया है, जिनमे कुछ वे भी सम्मिलित है जिनके क्रियाकलापों ने बाद के जीवन मे प्रतिभा के तत्त्व प्रदर्शित किये—जैसे गणितज्ञ इवेरिस्ट गेलाइस अथवा सगीतकार वोल्फँग मोजार्त के मामले म हुआ। किन्तु 'साधारण अद्भुत बालक' प्रतिभाशाली व्यक्तियो की अपेक्षा अत्यधिक बारम्बारता से प्रकट होते हैं। और उनकी प्रारम्भिक सम्यताएँ शतरज सगीत, गणित, खेलकूद और सैनिक कलाओ सहित सबसे अधिक विभिन्न क्षेत्रो म अभिव्यक्त होती है।

साधारणतया वयस्क शिशु चमत्कारो को बडे भय से देखत हैं। व हमेशा इस बात को नही मानते कि उनमे से कुछ वयस्क जीवन मे असाधारण गुणो वाले व्यक्ति बन जाते ह। यद्यपि हम इस प्रकार के दृष्टिकोण की निंदा करने का प्रस्ताव नही करत, तो भी हम अपने इस मत, यथा, अदभुत बालको का अस्तित्व फिर भी अनुत्क्रमिक सिद्धात की दुबारा योग्य क्षमताएँ सक्रियता के किसी विशिष्ट क्षेत्र म स्वय को अभिव्यक्त करती हैं। और यदि वे उस क्षेत्र मे (जो, प्रस्तुत, एक अपवाद है) उत्कृष्ट विशेषज्ञ बन भी जाते हैं तो भी वह सुसगत व्यक्तित्व-विकास की गारटी नही है। उदाहरण के लिए, प्रतिभाशाली गणितज्ञ

---

1 वी॰ जी॰ अनानीव, ओ प्राब्लमाख साव्रमेन्नोगो चलोवेकोजनेनिया (कन्सर्निग दी प्रॉब्लम्स आव दी मॉडन साइसेज आव मन), मास्को, नौका पब्लिशस, 1977 पृ॰ 272

अथवा शतरज के खिलाडी कभी-कभी अपर्याप्त भावात्मक विकास ही प्रदर्शित करत है। इसी प्रकार, उत्कृष्ट युवा व्यायामी प्राय व्यावहारिक बुद्धि और समय समय पर नैतिक गुणो के अपर्याप्त विकास के कारण कष्ट पाते है। सक्षेप मे, हमारा मत सरल है असाधारण बालक असाधारण वयस्क केवल तभी बनते है जब वे किसी विशिष्ट व्यक्तित्व-क्षेत्र की अपेक्षा व्यक्तित्व के गुणो के सम्पूर्ण समूह का विकास करने लगते हैं ।

युवको मे सम्बधित अध्याय म मानव विकास म 'अतुल्यकालिक' सिद्धान्त के लिए हमारा प्रसग आकस्मिक नही है, क्योकि हम विश्वास करते हैं कि यह यथार्थ रूप मे उस अवस्था मे इसलिए होता है कि पृथक पृथक व्यक्तित्व-क्षेत्रो म विकास की गतियो का निश्चित समीकरण घटित होता है। जबकि पृथक-पृथक व्यक्तित्व गुणो के विकास के स्वरूप और गति के तात्विक अन्तर बाल्यावस्था और किशोरावस्था म स्वीकार्य हो सकत है, युवावस्था म मानव जीवन का स्वरूप (परिवारो का निर्माण, नियोजन का प्रारम्भ, सैनिक सेवा, सामाजिक एव राजनीतिक जीवन मे सक्रिय भागीदारी) व्यक्तित्व के, उसके सभी पहलुओ के योग के रूप मे, विकास के व्यापक निर्माण के लिए आवश्यक होता है। यौवन की अवस्था मे कोई व्यक्ति केवल एक विशिष्ट दिशा म शीघ्रता से विकास करके अथवा अन्य विषयो मे *अनिवार्य रूप से पिछड कर अधिक लम्बे समय तक सम्पूर्णता से मानव जीवन नही* जी सकता। उदाहरण के लिए हम यौवन की एक ऐसी विशिष्टता जैसे प्रेम और परिवार के सृजन पर विचार करें। मानव-जीवन के ये पहलू शारीरिक परिपक्वता के लिए ही नही किन्तु उन विकसित नतिक भावनाओ, जिनके बिना प्रेम स्वय भी असभव होता है, क्योकि यह सामान्य लगिक आकर्षण से भिन्न होता है, के लिए भी आवश्यक होत है। नागरिक भावनाओ के विकास की स्थिति भी परिवार के सृजन मे अभिव्यक्त होती है, क्योकि आधुनिक समाज मे परिवार एक ऐसा बुनियादी कोषाणु है जिसके बिना वह अपनी महत्वपूर्ण गतिविधियो को नियमित करने म सक्षम होगा। पारिवारिक जीवन म पति-पत्नी दोनो के लिए एक उत्तरदायित्व को निभाने की आवश्यकता है यदि उसे स्थिर बने रहना है। सक्षेप मे, जो *भावनाएँ जो गुण एक परिपक्व व्यक्तित्व के अभिलक्षण हैं, वे वाछनीय होते है।*

फिर भी, व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षो के विकास मे ऐसे समीकरण की व्याख्या अतुल्यकालिक सिद्धान्त, जो वस्तुत किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन म परिलक्षित किया जाता है के समीकरण के रूप मे नही की जानी चाहिए। बिना गुणात्मक आकस्मिक परिवर्तनो और बिना पिछडेपन के कोई विकास सम्भव नही होता। साधारणत विचार बिंदु यह होता है कि यौवन म 'अतुल्यकालवाद' अपेक्षाकृत कम प्रकट होगा और एक अनोखे पृथक व्यक्तित्व की सगतता मे सगठित हो जायगा। और यह खेदजनक है जब व्यक्ति केवल असाधारण रूप से शारीरिक विकास प्राप्त

कर लेता है अथवा भावात्मक रूप से विकास करने मे असफल रहता है अर्थात जब हम त्वरण अथवा भावात्मक शिशुतावाद को प्रत्यक्ष देखते हैं। मनुष्य म सभी बातें एक निश्चित मात्रा म वतमान होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, मनुष्य म जो कुछ मानवीय है इसकी मात्रा (इसकी कोई बात नही कि किसी छोटी परिभाषा के साथ आना कैसा दुर्ग्राह्य हो सकता है) प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा सहज बुद्धि स अनुभव की जाती है। और इसके भीतर विभिन्न गुणा का सामजस्यपूण एकत्रीकरण किसी भी प्रकार से नगण्य कारक नही है।

स्वग मे और पृथ्वी पर विवाह

यौवन प्रेम का रूपात्मक काल कहा जा सकता है यदि कोई अपने मन मे शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा पुरुषो और स्त्रिया के बीच के भावात्मक सम्बन्धा के क्षेत्र से सम्बद्ध अन्य कारका के एक निश्चित इष्टतम सयोग को रखता है। हम दनन्दिन मनोविज्ञान के उन सुविख्यात निश्चित सत्यो का उल्लेख कर रहे है जो व्यवहार और तदनुरूप अनुसधान दोना के द्वारा पुष्ट भी किय गय ह। विशेषकर, कि ऐसा यौवन के काल मे होता है कि हम किसी स्त्री के अगा को अपने प्रथम बच्चे को जन्म देने (लगभग 20 वष से 25 वष तक) की सर्वोत्तम अनुकूलनता और उस समय को भी, जब अधिकाश व्यक्ति प्रथम बार विवाह करते हैं, समझत ह। हम उस निर्विवाद तथ्य का भी प्रसग दे रहे हैं कि यौवन मानव की सबसे महान लैंगिक सक्रियता (वतमान वयक्तिक परिवतनो और उन अपवादा, जो केवल सामान्य नियम की पुष्टि करत है, के हात हुए भी) की आयु होती है। सक्षेप मे, हम उन व्यापक अभिलक्षणा का प्रसग दे रहे है केवल जिनके लिए हम अनुकूलतम वातावरण की अवधारणा का प्रयोग करते है क्योकि रूस के महान कवि अलेक्जण्डर पुश्किन के शब्दो मे, "सभी अवस्थाएँ प्रेम के प्रति अति सवेदनशील हाती है, यहाँ उस शब्द का सकीण अथ लिया गया है जो मातृक प्रेम और आध्यात्मिक प्रेम का भी अपवर्जित कर देता है। प्रतिभा की प्रत्यक अभिव्यक्ति क समान ही पुश्किन का अवलोकन साधारण है। निस्सदेह इसका कारण यह है कि बिना इस बात पर ध्यान दिय कि यौवन कितना आकषक, अनुकूलतम अथवा 'रूपात्मक' हो सकता है पुरुष और स्त्री के बीच का प्रेम उसी अवस्था तक प्रतिबधित नही होता। यह सुविख्यात है कि पौराणिक स्त्रियाँ जिन्हे अप्रतिरोधशील समझा गया और जिन्होन तीव्र अनुराग जाग्रत किया वे सामान्यतया अवस्था म प्रौढ थी। इतिहास इस प्रकार क अनेक उदाहरण जानता है। ऐसा कहा जाता है कि हेलेन, जिसकी प्रशस्तियाँ होमर के द्वारा गायी गयी, के पाँच पति थ और जब

उसन पैरिस को उम व दी वनाने की अनुमति दी और इस प्रकार ट्राजन युद्ध के लिए माग प्रदर्शिन किया। ता उस समय उसकी अवस्था 40 वप से ऊपर थी। क्लिओपेत्रा 30 वप की अवस्था से काफी ऊपर थी जब उसने एण्टोनी को विमोहित किया। किसी को यह भी ध्यान मे रखना चाहिए कि हाल मे 19वी शताब्दी तक 22-25 वप के लगभग की अवस्था वाली स्त्रियो को अपेक्षाकृत लम्बे समय तक युवती नही माना जाता था। जूलियट 13 वप की थी और रोमियो 15 वप का और सोलहवी शताब्दी मे यह प्रेम-सम्बन्धो की सामा य स्थिति थी। फेनीमोर कूपर की प्रारम्भिक 19वी शताब्दी की नायिकाएँ प्राय 16 19 वप की अवस्था की थी, किन्तु "वयस्क स्त्रिया के रूप म चित्रित की जाती है।" दूसरी ओर, होनोर डी बालजक ने अपने उप यासा मे से एक म एक 30-वर्षीया स्त्री को, जो स्वय को प्रेम करने की क्षमता की पराकाष्ठा पर समझती थी, चित्रित करके अपने समकालीना को आश्चर्यचकित कर दिया। काला तर म, 'बालजक युग की स्त्री', अर्थात् अ तिम बार प्रेम करने वाली स्त्री की अभिव्यक्ति की ओर इसने निर्देश दिया। आज की 30 वप की स्त्रियाँ इस प्रकार के विचार पर मुस्करा देंगी। वे स्वय को 'बालजक युग की स्त्रिया' नही समझती। सम्भवत वे इसके अतिरिक्त ये शब्द जोड देगी जिमका प्रभाव यह होगा कि स्त्रियाँ साधारणतया आयु के साथ-साथ अधिक आकपक हो जाती है। और, निस्स देह, कोई इससे असहमत नही होगा। सक्षेप म, विवरण चाहे जो कुछ हो, पुश्किन इस विषय के तत्त्व के समीप उन अनक अनुसधानकर्त्ताओ, जो रूपात्मकता और अनुकूलनता की ओर निर्दिष्ट करते है, की अपेक्षा अधिक पहुँचे। जहाँ तक हमारा सम्ब ध है, क्योकि मानव प्रेम स्वय औपचारिकता के उपयुक्त नही होता और इसे वैज्ञानिक शब्दावली ग्रहण करने के प्रयास लगभग हमेशा गलत तरीके से सूत्रबद्ध होते है, कम से-कम यह तो कहा ही जा सकता है कि हम भी इस विषय से बचने का इरादा रखत है।

सांख्यिकी यह भी बताती है प्रारम्भिक युवावस्था वह आयु है जब अधिकाश विवाह सम्पन्न होते है। इसके अतिरिक्त, यह वह आयु दिखायी देती है जो विवाह के लिए सबसे अनुकूल होती है। समाज-शास्त्रीय अध्ययन सूचित करते हैं कि यदि उस अपेक्षाकृत छोटी अवधि मे (जिसके लिए कठोर कालक्रम-सम्बन्धी सीमाए नही हैं किन्तु जो मोट रूप मे 19 और 28 वप की आयु के बीच की अवधि के तदनुरूप होती है) किसी युवा व्यक्ति को जीवन-साथी नही मिलता तो वाद मे उसे पाना अपेक्षाकृत बडा कठिन हो जाता है, क्योकि दूसरे व्यक्ति के गुणा के सम्ब ध मे उच्चस्तरीय प्रत्याशाएँ विकसित हो जाती है व्यक्ति एकान्त का आदी हो जाता है, और व्यक्ति सच्चे सहभागी के सम्ब ध मे स्वय को वास्तविक रूप से समपन म कम सक्षम हो जाता है।

फिर भी, व विवाह, जा सूचित अवधि म सम्पन्न होते हैं, व्यक्ति के सम्पूण

पुनरुत्पादन की निरन्तर प्रक्रिया म नियोजित करत हुए और एक पीढी स अगली पीढी को विरासत सप्रेषित करत हुए, परिवर्तित कर देता है। अब हम पीढियो की भूमिका पर अधिक निकटता से विचार करेंगे।

पिता और पुत्र आयु और पीढियाँ

पीढिया की अवधारणा का सम्बध प्राय माता पिता की औसत आयु और उनके बच्चा की औसत आयु के बीच के समय के अन्तराल से होता है। इस प्रकार वर्षो की एक विशिष्ट सख्या के द्वारा नापी गयी अनेक पीढियाँ किसी समाज के आयु के ढाँचे मे पहचानी जाती ह। प्राचीन यूनानी इतिहासकार हिरोडोटस न बताया कि 300 मानव पीढियाँ 10,000 वर्षो मे बनती है क्योकि एक शताब्दी म तीन पीढियाँ होती हैं। आइजक यूटन ने बताया कि मिस्री और यूनानी प्रपितामह के जम और प्रपौत्र के जम के बीच के औसत अन्तराल को एक शताब्दी समझते थे। इसमे प्रत्येक शताब्दी मे तीन पीढियाँ और एक पीढी साढे ततीस वष के रूप मे प्रस्तुत होती हैं। अतराल प्राय स्त्री के वश क्रम के साथ (किसी विशिष्ट वष मे उसके बालक के जम के समय माता की औसत आयु की गणना के द्वारा) नापा जाता है। सोवियत सघ मे वह अतराल लगभग 27 वष है।

कभी-कभी पीढी की अवधारणा एक 'आयु दस्ता, अर्थात् उन व्यक्तियो के जो एक निश्चित विशिष्ट वष म उत्पन हुए हो, के पर्यायवाचक के रूप मे प्रयुक्त होती है। हमारी सम्मति मे किसी को पीढी की अवधारणा को 'आयु दस्ता' की अवधारणा के साथ नही मिलाना चाहिए। जबकि जनसाख्यिकीय आयु दस्ता की अवधारणा का सम्बध उन व्यक्तियो से बताता है जो एक वष विशेष मे उत्पन्न हुए थे तो पीढी कई आयु-दस्तो से आकर्षित व्यक्तियो को एक साथ सम्मिलित करती है। उदाहरण के लिए, सावियत सघ के नाजी जमनी के विरुद्ध महान देश-भक्तिपूण युद्ध (1941-1945) के दौरान युवा पीढी मे वे जो 1941 मे 17 वर्ष के थ और वे जो 25 वष के थे दोनो सम्मिलित थे। इस प्रकार पीढी की अवधारणा अपक्षाकृत अधिक सामाय और आयु-दस्ता की अवधारणा अधिक विशिष्ट है। फिर भी, दा या इससे अधिक आयु-दस्ता के जीवन-पथो की तुलना, जो आयु-दस्ता विश्लेषण के रूप म विख्यात है आयु सापेक्ष मनोविज्ञान की एक महत्वपूण प्रणाली है। उस सम्बध म आइगोर कॉन बताते है कि कोई उदाहरण के लिए, आज के वरिष्ठ विद्यालय छात्रो के व्यवहार और विकास के स्तर की तुलना 1940 के दशक और 1930 के दशक मे उनके प्रतिपक्षियो से त्वरण के प्रभाव

पर ध्यान दिये बिना नही कर सकता। व्यवसाय का चुनाव, अन्य कारकों के बीच, किसी निश्चित वर्ष में माध्यमिक शिक्षा पूरी करने वाले युवा व्यक्तियों की संख्या की उच्चतर शैक्षिक संस्थाओं मे प्राप्य स्थानों और अवसरों के साथ तदनुरूपता पर निर्भर होता है।

पीढी की अवधारणा सभी आयु सापेक्ष मनोविज्ञान के लिए मौलिक महत्व की है। सोवियत मनोविज्ञान में साधारणतया यह समझा जाता है कि किसी व्यक्ति का जीवन किसी विशिष्ट समाज, विशिष्ट ऐतिहासिक काल और विशिष्ट पीढी मे किसी व्यक्ति के निर्माण और विकास का इतिहास है। पीढियो के बीच के अन्तर और एक पीढी से अगली पीढी को विरासत का सम्प्रेषण उस रचनातन्त्र को बताते है जो व्यक्तित्व विकास के पृथक समय और उसके सामाजिक ऐतिहासिक सन्दर्भ के बीच के अन्तर्सम्बन्ध का कारण बताता है। बाल्यावस्था मे व्यक्तित्व का विकास और व्यक्ति के जीवनकाल मे इसका उत्तरवर्ती निर्माण सामाजिक विकास के विभिन्न चरणों में और विभिन्न ऐतिहासिक कालो में भिन्न भिन्न रूप से घटित होता है। युद्ध के समय में और प्रारंभिक युद्धोत्तर वर्षो मे बालको और किशोरों के कठिन वर्ष तथा हमारे समकालीनों की बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था सर्वथा विभिन्न प्रभास है।

अन्तर पृष्ठ पर प्राय पीढियों के बीच में अनेक समस्याएँ विकसित होती हैं—यह 'पिताओं और पुत्रों' से सम्बन्धित प्रसिद्ध समस्या के साथ-साथ आत्मिक एवं सांस्कृतिक विरासतो के सम्प्रेषण की समस्या है। उस सम्बन्ध में आइगोर कान बताते है कि पीढियो के द्वारा विरासतो की स्वीकृति सदा चयनात्मक होती है कुछ मानदण्ड और मूल्य आत्मसात किये जाते हैं और उत्तरवर्ती पीढी को सम्प्रेषित किये जाते हैं जबकि दूसरे जो परिवर्तित स्थितियो के और अधिक समय तक तदनुरूप नहीं होते, अस्वीकृत अथवा रूपान्तरित कर दिये जाते है। विरासतो का सम्प्रेषण सक्रियता के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न होता है। उपभोग, फुरसत, कलात्मक रुचियो और कुछ अन्य सन्दर्भ मानदण्डो के क्षेत्र मे, वृद्धो और युवको के बीच के अन्तर महत्वपूर्ण सामाजिक मूल्यो (राजनीतिक विचार और विश्व-दृष्टिकोण) से सम्बन्धित विषयो के अन्तर की अपेक्षा अधिक बडे होते हैं। इसकी व्याख्या केवल संस्कृति के तदनुरूप क्षेत्रो के नवीकरण की मात्राओ के अन्तरो के द्वारा ही नही, किन्तु इस तथ्य कि फैशन फुरसत और मनोरंजन आयु के साथ सबसे अधिक निकटता से जुडे हुए हैं के द्वारा होती है। पीढियो के बीच के अन्तर (व्यवहार के विशिष्ट ढंगो के आदी होना, संगीत, नृत्य आदि व्यक्ति के स्वयं के वर्षों मे आत्मसात) उस समय आयु-सापेक्ष अन्तरो के द्वारा और आगे विस्तार पाते हैं यौवन की नवीनता के लिए तृष्णा स्थिरता से उत्तरवर्ती अनुकूलनता से विरोध करती है।

पीढी और वैयक्तिक अवस्थाओं दोनो के भीतर घटित होने वाले प्रभावो का सामाजिक सन्दर्भ मौलिक महत्व का है। एक अमरीकी मनोविज्ञानवेत्ता यूरी ब्रॉन फेन ब्रेनर अपनी पुस्तक 'टू वर्ल्ड्स आव चाइल्डहुड, यूएस एण्ड यूएसएस-आर मे बताते हैं कि आज 'पिताओं और पुत्रो' की समस्या सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमरीका मे तात्विक दृष्टि से भिन्न है। विशेषकर, अमरीकी किशोर मूल्यो की जो व्यवस्था अपनाते है वह वयस्को की समस्या से तीव्र रूप से भिन्न है, जबकि सोवियत संघ मे ऐसी कोई दरार नही है जहाँ युवा समकक्षो के सामाजिक मानदण्ड वयस्को की प्रत्याशाओ का विरोध करने की अपेक्षा सामान्यतया उनका अनुमोदन करते है।

हम यह देखें कि सम्पूर्ण आयुदस्तो का भाग्य पीढी के भाग्य से प्रत्यक्ष रूप से जुडा हुआ है और उस पर निर्भर करता है।

जीवन की अवस्थाओ और पीढी के भाग्य के बीच का सम्बन्ध अर्नेस्ट हैमिंग्वे, एरिक मारिया रिमार्क्वे और रिचर्ड एल्डिंगटन जैसे कथा साहित्य के प्रवीणो के द्वारा पूर्णतया मान लिया गया और स्पष्टतया अभिव्यक्त किया गया। इन लेखको ने उस युवा पीढी की प्रतिमाओ का सृजन किया है जो प्रथम विश्व-युद्ध में युद्ध की विभीषिकाओं में से गुजरी थी और तदुपरान्त, अमरीकी लेखक जरट्रूड स्टीन के शब्दो में 'विनष्ट पीढी' कही गयी। परम्परागत यौवन की अवस्था से वंचित वह साम्राज्यवादी युद्ध के अर्थहीन हत्याकाण्ड के द्वारा नष्ट कर दी गयी और जीवन के पूर्ववर्ती शान्तिपूर्ण ढग से उत्पन्न भ्रान्तियां के नष्ट हो जाने पर 'विनष्ट पीढी' के युवा नायक मनोवैज्ञानिक रूप से अपनी वास्तविक आयु के होते हुए भी प्रौढता की अवस्था से सम्बन्धित हो गये थे। वे ऐसे व्यक्ति थे जो अपने जीवन के अनुभवो द्वारा बुद्धिमान बना दिये गये। उन्होने 20 और 30 वर्ष की आयु तक पहले से ही आवश्यकता से अधिक अनुभव प्राप्त कर लिया था और यौवन की निष्पाप तन्मयता से दूर हट चुके थे। सारी पीढी यौवन को जीवन के एक विशिष्टकाल के रूप मे सर्वथा खो चुकी थी।

जिस ढग से किसी युवा पीढी की आत्म-जागरूकता उसके ऐतिहासिक भाग्य से सम्बन्धित है उसका दूसरा उदाहरण रूस मे अधिनायकवाद के विरुद्ध क्रान्तिकारी मुक्ति संघर्ष के इतिहास के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह सुविख्यात है कि क्रान्तिकारी दिसम्बरवादियो, जिन्होने 1812 के देशभक्तिपूर्ण युद्ध की कठोर चुनौतियां का अनुभव किया था और अपने राष्ट्र के साथ सैनिक अभियान की कठिनाइयो मे भाग लिया था और विजयी हुए थे, शरीर से युवा बने रहे किन्तु अपने अनुभवो के द्वारा बुद्धिमान बना दिये गये। इसलिए उनमें प्रौढ व्यक्तियों मे अभिलक्षित विश्व-दृष्टिकोण का विकास हुआ। और अधिनायकवाद को समाप्त करने के अपने प्रयास में उन्होने युवा की अपेक्षा वयोवृद्ध व्यक्तियो के समान कार्य

किया ।[1]

फिर भी आयु-दस्तो और पीढ़ी के भाग्य के ऐसे सम्बन्धो का दूसरा उदाहरण उसके द्वारा, जिसे 'युद्ध की जनसांख्यिकीय प्रतिध्वनि', जो सोवियत संघ में महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध (1941-1945) के परिणाम में स्पष्ट हुई, कहा गया है, प्रस्तुत किया गया है।

युद्ध काल के दौरान अधिकांश पुरुष आबादी के सशस्त्र सेनाओं में लगा दिये जाने पर और युद्धकालीन कठिनाइयों के कारण भी सोवियत संघ में जन्म-दर तेजी से गिर गयी। 1943-1946 में जन्म लेने वालों की संख्या 1939-1942 में जन्म लेने वालों की संख्या से आधी थी। 1950 के दशक के मध्य में यह प्रारंभिक विद्यालयों में प्रतिबिम्बित हुई जहाँ विद्यार्थियों की संख्या घट गयी और बाद में, 1950 के दशक के अन्त में यह 8-वर्षीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संख्या में प्रतिबिम्बित हुई। इसके विपरीत, 1960 के दशक के प्रारंभ में सारी विद्यालय व्यवस्था ने एक महत्वपूर्ण वृद्धि का अनुभव किया जिसका कारण युद्ध के बाद बालकों का भारी संख्या में जन्म लेना था। इससे उस सोवियत समाज में एक विरोधाभासी स्थिति उत्पन्न हो गयी जो समान अवसरों वाला समाज है और जहां प्रत्येक व्यक्ति को वे सभी परिस्थितियाँ प्रदान की जाती हैं जो व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक होती हैं। क्योंकि उनकी संख्या कम थी, अतः जो बालक युद्ध के दौरान और तुरन्त बाद में (1941-1946) में उत्पन्न हुए उन्होंने अपने को अधिक बड़े और अधिक छोटे आयु वर्ग के बालकों की अपेक्षा भिन्न स्थिति में पाया। पृथक पृथक कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या कम थी और उनके अध्यापकों के लिए उन पर व्यक्तिगत ध्यान देना अत्यधिक सरल था। बाद में उच्चतर शैक्षिक संस्थानों में प्रार्थनापत्र देने पर उन्होंने देखा कि लगभग प्रत्येक के लिए स्थान था।

1960 के दशक के मध्य में 'युद्ध की जनसांख्यिकीय प्रतिध्वनि' ने सत्रह और अठारह वर्षीय की नियति को प्रभावित किया। यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि इस समस्या पर विचार किया जाय क्योंकि यही वह अवस्था है जब युवा व्यक्ति विद्यालयों से स्नातक बनते हैं और अपने जीवन-पथ को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। सत्रह और अठारह वर्षीय ऐसे युवा व्यक्ति होते हैं जो अपने व्यावसायिक जीवन को अभी प्रारंभ ही कर रहे हैं। जब उनकी संख्याएँ घटती-बढ़ती रहती हैं तो इसका उत्पादन के अतिरिक्त शिक्षा पर भी प्रभाव पड़ता है। देश के श्रम स्रोत इस बात पर निर्भर होते हैं कि वे कितने प्रचुर हैं। युद्ध के दौरान, घटी हुई जन्म-दरों के अनुसरण में उन विद्यार्थियों की घटती हुई संख्या जिन्होंने अपने

1 दिसम्बरवादी वे अभिजात्य वर्ग क्रान्तिकारी थे जिन्होंने जार की निरंकुशता और कृषिदासता के विरुद्ध विद्रोह किया।

विद्यालय के अध्ययन को पूरा नही किया, और उन शिक्षा स्नातकों के बढ़ते हुए अनुपात, जो उच्चतर शैक्षिक संस्थानो और तकनीकी विद्यालयो मे प्रविष्ट किये गये थे क्योकि प्रवेश के लिए प्रतियोगिता लगभग नही थी, का कारण बना। फिर भी इस स्थिति ने उन स्नातकों के अनुपात को घटा दिया जिन्हे विद्यालय से स्नातक की उपाधि मिलने के बाद तुरन्त काम करने जाना होता था। इसने केवल उनकी स्वय की योग्यताओ पर ही नही किन्तु ऐसे संस्थानो की सभी शिक्षा-स्नातकों को समा लेने की क्षमता पर भी आधारित उच्चतर शिक्षा संस्थानो मे जाने की इच्छा को भी प्रोत्साहित किया। जनसांख्यिकीय लहर के पूववर्ती इस मनोवैज्ञानिक प्रभाव ने हमारे विद्यालयो की मूल्याकन-योजना की यथास्थिति, जो युद्ध-पूर्व के वर्षों मे प्रचलित होने आया था जब विद्यालय बडे पैमाने पर विद्यार्थियो को उच्चतर शिक्षा के लिए तैयार करने से सम्बन्धित थे, को दृढ करने का कार्य किया था। किसी समय जब स्नातको की संख्या घट रही थी, यह समझा गया था कि हमारे पास 11-वर्षीय शिक्षा-कार्यक्रम की ओर सक्रमण को कार्यरूप देने के लिए पर्याप्त ससाधन है और इसे कार्यान्वित कर दिया गया। फिर भी कुछ वर्ष बाद स्थिति एक ऐसी नयी लहर के द्वारा नाटकीय ढग से परिवर्तित हो गयी जिसने 1966 मे 10 वर्षीय कार्यक्रम की ओर लौटने को बाध्य किया। उसने क्रमश स्थिति को जटिल बना दिया क्योकि यह 1966 मे दो स्नातकीय कक्षाओ की ओर मार्ग निर्दिष्ट करता था।

व्लादीमिर शुबकिन की कृति, जिसमे 'युद्ध की जनसांख्यिकीय प्रतिध्वनि' के परिणामस्वरूप आज की युवा पीढी की सामाजिक-जनसांख्यिकीय समस्याओ का विस्तृत विश्लेषण अन्तर्विष्ट है, से ली गयी यह सामग्री उस प्रभाव के बहुत बडे महत्व की ओर सकेत करती है। जबकि यह विश्लेषण की विषय-वस्तु के रूप मे स्वय ही आकर्षक है और कोई उन विभिन्न समस्याओ को, जो समाज की सामाजिक-जनसांख्यिकीय स्थिति के कारण विशेष आयु दस्ता के सदस्यो (उदाहरण के लिए वे जो 1947-1949 मे उत्पन्न हुए और जिन्होने 1966 मे माध्यमिक शिक्षा पूरी कर ली) के लिए उत्पन्न होती हैं, अधिक निकटता से समझ सकता है, तो भी हम अपने आपको सबसे अधिक सामान्य निष्कर्षों, यथा, व्यक्तियो की आयु सापेक्ष विशिष्टताएँ और व्यक्तित्व निर्माण की वे अवस्थाएँ जो विभिन्न आयु-वर्गों के लिए विशिष्ट हैं, तदनुरूप उन पीढियो के भाग्य मे समीपता से सलग्न है जो स्वय देश के ऐतिहासिक भाग्य पर अन्तर्निहित रूप से निर्भर हैं, तक ही सीमित रखेंगे। तदनुसार पीढी की अवधारणा आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान के लिए मौलिक महत्व की है, क्योकि यह किसी समाज के इतिहास और उन व्यक्तियो के भाग्य, जो वैयक्तिक जीवन-वृत्ता के मार्ग पर बडा प्रभाव डालता है, के बीच एक अन्तर्निहित सम्बन्ध स्थापित करती है। सक्षेप मे, पीढी की अवधारणा

और इसकी आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान की समस्याओं से मौलिक सम्बद्धता जीवन की अवस्थाओं के सम्बन्ध में सामाजिक ऐतिहासिक विचारधारा पर आधारित सोवियत मनोविज्ञान के मौलिक दृष्टिकोण की सत्यता को एक बार फिर पुष्ट करने का काम करती है।

मैं सदा युवक रहूँगा

इस अध्याय के प्रारम्भ मे हमने देखा कि हमारा युग युवको का युग है, किन्तु हमने ऐसी परिभाषाओं के आपेक्षिक स्वरूप पर भी ध्यान दिया। फिर भी इस सम्बन्ध में यह तथ्य विवाद का विषय नही है। आधुनिक मानव के मन मे यौवन के सकारात्मक मूल्य के सम्बन्ध म कोई सन्देह नही हैं। जबकि अन्य ऐतिहासिक युगो म या तो प्रौढ व्यक्तियो या बालको की स्वाभाविकता या सम्भवत सफेद बालो को वरीयता दी जा चुकी होगी इसके बदले में आज युवा के रूप म देखे जाने के अधिकार के लिए अनेक व्यक्ति, यदि मेफिस्टोफेलेस के साथ सौदा न करने को तयार हो, तब भी कम से कम काले जादू के किसी उपाय के लिए प्रयत्न करने का तैयार है। यद्यपि आज ढुलकी चाल, पथ्य, वायुजीवियो और अगरागो पर अधिक निभरता है फिर भी कुछ व्यक्ति यौवन के निझर की अपनी खोज म डटे रहते हैं। किन्तु हम उस विषय की ओर लौटने का प्रस्ताव नही करते। न हम पुनर्यौवन के लिए आधुनिक प्रयासो पर कोई व्यंग्य ही अभिव्यक्त करेंगे। वस्तुत हम यौवन को सभी मूल्यो पर बनाये रखने के ऐसे प्रयत्नो और आधुनिक मानव 'मैं सदा युवा रहूँगा' कहने म ऐसा आग्रही क्यो है का अर्थ समझना चाहते है।

आज आयु-सापेक्ष चेतना और मानव-जीवन के दीर्घीकरण के बीच एक निर्विवाद सम्बन्ध है। फ्रांसीसी इतिहासकार फिलिप एरिस के द्वारा इसे अच्छे ढग से स्पष्ट किया गया है

> यौवन की अनुपस्थिति और वृद्धावस्था के लिए निरादर अथवा इसके विपरीत वृद्धावस्था का अदृश्य होना (कम से कम मनुष्य की अवनति के अर्थ म) और यौवन का प्रकट होना जीवन के दीर्घीकरण के प्रति समाज की प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करता है। इसके दीर्घीकरण ने जीवन के उन विभागो मे एक नवीन अर्थ जोड दिया है जिनका विजेतित साम्राज्य के विद्वानो और मध्यकालीन समाज द्वारा नामकरण कर दिया गया था किन्तु वास्तव म वे उस समय अधिकाश जनता के लिए अस्तित्व म नही थे। हमारी आधुनिक भाषा ने इस प्राचीन शब्दावली को जिसकी उत्पत्ति विशुद्ध रूप से

सैद्धान्तिक है, नये प्रभास को निर्दिष्ट करने के लिए उद्धृत किया है।"[1]

जैसे जीवन की प्रत्याशा बढी 'यौवन' की अवधारणा भी परिवर्तित हो गयी। एक ओर यह बाल्यावस्था की दिशा की ओर विस्तृत हुआ और दूसरी ओर प्रौढता की तरफ फैला। यौवन अपनी रुचिया, मूल्यो, आदतो आदि के माध्यम से सारे समाज की रुचिया, मूल्यो और आदतो का प्रभावित करनेवाली सबसे अधिक मूल्यवान अवस्था बन गयी। इससे युवा पीढी के सदस्य के रूप म समझे जाने— उस अवस्था मे ज्यादा जल्दी प्रवेश करने और उसमे अधिक लम्बे समय की स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न हुई।

आज यौवन पर स्थापित मूल्य भी शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण की, विज्ञान और तकनीकी मे क्राति के द्वारा वाछित अपेक्षाकृत बडी अवधि के कारण बढ गया है। यौवन मे ही बुनियादी निपुणताएँ, ज्ञान और काम करने की आदतें अधिक सरलता से प्राप्त की जाती है। वयस्को की निरन्तर शिक्षा की आवश्यकता और न केवल ज्ञान का किन्तु प्राय व्यावसायिक गतिविधि मे महत्वपूण मौलिक सदभ मानदण्डा का सावधिक नवीकरण इसे बिल्कुल स्वाभाविक बना देता है कि प्रौढ के साथ-साथ वयोवृद्ध व्यक्ति इन नवीन आवश्यकताओ को पूरी करना चाहेगे।

अनेक प्रकार के प्रतिष्ठापूण मानव क्रियाकलाप (लम्बे चौडे समय वाले खेलकूद, बैल, उडान) आयु के द्वारा प्रतिबधित कर दिये जाते है और हमारे मना मे यौवन के साथ अतर्निहित रूप से सयुक्त हो जात है। ऐसा यौवन मे ही होता है कि कोई व्यक्ति सजनात्मक गतिविधि मे नियोजित होने, स्वत शोध परिकल्पनाए सूत्रबद्ध करने मे सबस अधिक समथ होता है और सबसे अधिक उबर होता है। परिणामस्वरूप वज्ञानिक प्रगति विशद रूप से युवा पीढी से जुडी हुई हाती है।

सक्षेप मे, यौवन वास्तव मे आकपक होता है। इसका सम्बध केवल शारीरिक स्वास्थ्य और शारीरिक सौदय म ही नही है। बडी सीमा तक इसका सम्बध सक्रियता के उन पत्रकारो के आकपण स भी होता है जो यौवन म सबसे अधिक सुलभ होते है और जो, यदि एकमात्र विशेपाधिकार नहा तो कम स-कम यौवन के अतर्निहित गुण को प्रस्तुत करते है। इस कारण यौवन शिक्षा के प्रति, विशेष कर शिक्षा के उन तीव्र रूपो के प्रति, जा विभिन्न वैज्ञानिक एव तकनीकी क्षेत्रो मे बौद्धिक क्रियाकलाप के सबसे अधिक जटिल रूपा मे विशेपज्ञता प्राप्त करन की अनुमति देते है ग्रहणशील होता है। यह बौद्धिक एव शारीरिक श्रम, जो केवल उन व्यक्तिगत क्षमताओ, ज्ञान एव काम करने की आदता, जा पहले

1 फिलिप एरिस, लनफँण्ट एट ला की फमितिएल सोउस लानिएण्ट रिजिये, पेरिस, एडीशस डयू सिउइल, 1973, पृ० 21-22

आत्मसात कर ली गयी थी, का ही क्रियान्वित नही करता, किन्तु उनका आगे विकास भी करता है और उन्हे सृजनात्मक आयाम भी प्रदान करता है, दोना के ही लिए खुला रहता है। और यह उस सामाजिक सम्पर्क के लिए खुला रहता है जो विशेष रूप से उन वर्षों म सक्रिय होता है। नये परिचय सरलता से हो जात है और नवीन मित्रताएँ तत्परता से विकसित हो जाती हैं। यह सम्पर्क केवल स्वरूप मे ही व्यापक नही होता किन्तु प्रेम, विवाह एव मित्रता मे सारभूत गुणात्मक उच्चताओ को भी प्राप्त करता है। सक्षेप म, यौवन सभी अवस्थाओ के व्यक्तियो के लिए बडी आकपक शक्ति प्रतीत होता है क्योकि यह वह समय होता है जब किसी व्यक्ति की सक्रियता सामाजिक क्षेत्र के अतिरिक्त काम और निजी जीवन म महत्वपूण प्रगति को प्राप्त करती है और फिर भी आदत और दनिक जीवन की जडता से अभी निरुद्ध नही हुई है किन्तु परिप्रेक्ष्यता और दृष्टिकोण की प्रत्यक्षता एव नवीनता के बोध को बनाये रखती है। परिणामस्वरूप यौवन अपनी ही प्रवृत्ति स आशावादी होता है। युवा व्यक्तियो ने अभी अपने आदर्शों और जीवन उद्देश्यो को क्रियान्वित करने, अपने मानवीय जीवन लक्ष्य को प्रतिपादित करने म काम करने के लिए काय करना प्रारम्भ कर दिया है। और जबकि यह उन्हे कठिनाइयो का सामना करने के लिए माग-दशन करता है, ये फिर भी अलध्य नही दिखायी देती। निराशा, आत्म-सशय एव अनिश्चय के क्षण सामान्यतया अल्पजीवी होते हैं वे जीवन के अशान्त प्रवाह मे विस्मृत हो जाते है क्योकि नयी सभावनाएँ निरन्तरता से यथाथ मे रूपान्तरित हो जाती हैं। सभावनाओ को यथाथ मे परिवर्तित करना निश्चित ही युवावस्था का लक्ष्य होता है। यह ऐसा अभिलक्षण है जिसे जीवन की उत्तरवर्ती अवस्थाओ मे छोडना कठिन होता है जब सभावनाओ का क्षेत्र तात्विक रूप से सकीण हो जाता है और जब व्यक्ति के अनेक सामाजिक एव व्यक्तिगत सम्बन्ध, जो उसके वास्तविक जीवन वातावरण का निर्माण करते हैं केवल उसे सम्पन्न ही नही बनात और उसके आग के विकास म सहयोग ही नही देत किन्तु उसे किसी विशिष्ट सक्रियता जीवन के एक निश्चित भाग, और विशिष्ट मूल्यो और अनुकूलनताओ से सम्बद्ध करके नियत्रित भी करते हैं।

लोग इस अभिलक्षण को यौवन म पहले ही से पहचान लेते है। यह मनोवज्ञानिक चरम बिन्दुओ के समय एक आन्तरिक उद्दीपक के रूप म काय करता है जिससे यौवन बचा हुआ नही रहता। कुछ अमरीकी मनोविज्ञानवेत्ता और साथ ही, सयोगवश, उनके सोवियत सहकर्मी विश्वास करते हैं कि व्यक्तियो को लगभग 30 वर्ष की अवस्था मे एक सकट की स्थिति का अनुभव होता है। यह इस मान्यता, कि जीवन की 20 और 30 वष की अवस्थाओ के बीच प्राप्त अवधारणाएँ सम्पूर्ण तया सत्य प्रमाणित नही होती, के द्वारा उत्पन्न विकासीय विचलन को प्रति

बिम्बित करता है। बिल्कुल 'अकस्मात्' जीवन का सरल और आसानी से समझे जाने योग्य प्रतीत होना रुक जाता है। जीवन के स्थापित मार्गों के आधार कभी-कभी नष्ट हो जात है और व्यक्ति का सम्पूण व्यक्तित्व पुनर्निर्मित होता है। कभी कभी ये सकट प्रभास किसी व्यक्ति की 'जीवन के लिए अपर्याप्त तयारी' के परिणाम समझे जाते है। किन्तु हम इसे किसी प्रकार विश्वासोत्पादक नही पात। इस कारण, जबकि किसी का सम्बन्ध किशोर या तरुण की 'जीवन के लिए अप्रस्तुतता' (और फिर भी जिस 'जीवन' के रूप मे निर्दिष्ट किया गया है उसके आपक्षिक अथ के दृष्टिकोण स बडे प्रतिबन्धा के साथ) से हो सकता है तो भी वह दष्टिकोण अपने स्वय के जीवन को जीने वाले एक दशक के अनुभव से सम्पन्न एक 30 वप के व्यक्ति पर लागू नही होता। आइगोर कॉन सत्य के अधिक निकट हैं, जब वे यह उल्लेख करते ह कि चरम बिन्दु की स्थितियाँ, जो उनके जीवन की दिशा को प्रभावित करती है, आने पर वयस्क प्राय आत्म विश्लेपण की ओर मुडत हैं। और क्योकि कोई भी स्वय को पूणतया नही पहचान सकता, एसा आत्म-विश्लेषण अनन्तता के पाश्व के सामने सदा उदासी से आरजित हाता है। यह ठीक ढग से कहा गया है, यद्यपि, निस्सन्देह, आत्म विश्लेपण केवल युवको का विशेषाधिकार ही नही है। क्याकि, जब किशोरा के अतिरिक्त प्रौढ व्यक्ति और वयोवृद्ध लोग सभी अपने जीवन के अतीत काल पर विचार करने की योग्यता से सम्पन्न है, अत इस प्रकार का आत्म विश्लेपण किसी व्यक्ति के चौथे दशक के प्रवेश-द्वार पर विशेप रूप स महत्वपूण है।

आत्म विश्लेपण पर निभरता (जिसे तरुण अवस्था और प्रारम्भिक यौवन म छोटी समस्याओ क साथ-साथ आत्म निर्धारण की गभीर असफलताओ के द्वारा प्रेरित किया जा सकता है) तब कारण और परिणाम दोनो हैं। कारण के रूप मे, आत्म विश्लेपण चरम बिन्दु की स्थिति उत्पन्न करता है, और परिणाम के रूप मे यह उन तनावा को सुलझाने के लिए आवश्यक होता है जो अन्तर्विरोधो के कारण पदा होते हैं। हम इसे और भी स्पष्ट करें।

30 वप की आयु तक कोई व्यक्ति स्वय को प्राय न्यूनाधिक रूप से दढता पूवक वयस्क जीवन म स्थापित कर लेता है—वह किसी व्यवसाय को खोज लेता है और उसमे निपुणता प्राप्त कर लेता है, अपन पारिवारिक जीवन का प्रबन्ध कर लेता है और सामाजिक गतिविधियो को चुन लेता है, सक्षेप मे, वह उन अधिकाश सम्भावनाओ को क्रियान्वित कर लेता है जो जीवन उसे प्रदान करता है। उसका व्यक्तित्व एक निश्चित स्थिरता और एक अनोखे रूप की सक्रियता, नैतिकता, बौद्धिक शक्ति और व्यवहार का एक स्वरूप प्राप्त कर लेता है। परिणामस्वरूप, यह प्रतीत होगा कि एक व्यक्ति 'अपने स्वय के व्यक्तित्व के प्रति निष्ठावान हो जाता है। वह पहले ही मे ससार के भीतर अपने स्वय मे 'आत्म का यथेष्ट

विवरण के साथ विभेद करने में समय है और (बर्टोल्ट ब्रेष्ट के शब्दों में) 'एक तरफ हटकर' स्वयं एक पागल में दखता है और पोषित करता है, यह उसका स्वय का 'आत्म' है। किन्तु अधिकांश बातों में यह सामर्थ्य किसी युवा व्यक्ति में उत्साह उत्पन्न नहीं करती। ज्योंही वह अपने अतीत का सर्वेक्षण करता है, अपनी उपलब्धियों और असफलताओं पर नजर डालता है, वह देखता है कि ऊपरी तौर पर सफल जीवन के होते हुए भी उसका व्यक्तित्व अपूर्ण बना रहता है। वह देखता है कि वास्तव में कितना कम प्राप्त किया गया है यद्यपि जीवन का महत्वपूर्ण भाग उसके पीछे पड़ा है, कितना समय और प्रयत्न नष्ट हो चुका है और वास्तव में कितना उसने कार्यान्वित किया है। केवल कल तक जो गतिविधियाँ 'सजीव रूप में महत्वपूर्ण' प्रतीत होती थी और जिन पर उसने काफी परिश्रम किया था अब वे उसकी तुलना में जिसे वह वास्तव में प्राप्त करना पसन्द करता छोटी और खोखली लगती थीं। उन मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन घटित होता है जो किसी व्यक्ति के आत्म विश्लेषण और आलोचनात्मक पुनपरीक्षण को उत्पन्न करती है। इस करने में व्यक्ति देखते हैं कि उनकी 'आवर्दित सभावनाएँ क्रमश सकीर्ण होती जा रही हैं, कि अब वे और अधिक समय तक प्रत्येक बात नहीं कर सकते' और अपने व्यक्तित्व के विकास को वांछित दिशा में परिवर्तित करने में असमर्थ हैं। वे परिवारो व्यवसायो और जीवन के परिचित तरीकों से 'जकड़े हुए' हैं। एक सबसे अधिक कठिन समस्या, जैसे, स्वय को वयस्क जीवन में तदनुरूप करने और स्वय को पतियों, पिताओं, व्यवसायियों और सामाजिक रूप से सक्रिय व्यक्तियों के रूप में बनाये रखने की समस्या को प्रकट रूप से सुलझा लेने पर भी, वे अकस्मात् देखते है कि वास्तव में वे उसी कार्य का सामना कर रहे हैं जैसे, अपने व्यक्तित्व के क्षेत्र को उन नये परिप्रेक्ष्यों और नयी सीमाओं, जो अब प्रथम बार प्रत्यक्ष बोध में आयी हैं, की तदनुरूपता में लाकर नयी जीवन स्थितियों के अनुकूल होना। हमारी सम्मति में, यह चरम बिन्दु का वह क्षण है जो व्यक्तियों के यौवन से प्रौढता की ओर के सक्रमण को चिह्नित करता है।

इसके अतिरिक्त, वह चरम बिन्दु किसी विशिष्ट अवस्था के साथ निकटता से सम्बन्धित नहीं है और तीसरे दशक का अन्त केवल एक रूढिगत कालक्रम सम्बन्धी सन्दर्भ बिन्दु का प्रावधान करता है। वास्तव में चरम बिन्दु की ऐसी स्थिति विचित्र प्रकार से (यदि यह होती भी है—क्योंकि यह सम्भव है कि यह नहीं भी हो सकती) 30 और 40 की अवस्थाओं के बीच के सम्पूर्ण दशक में प्रकट होती है। हमने पहले ही उल्लेख किया है कि व्यक्तित्व विकास एक ऐसी स्थायी प्रक्रिया है जो जीवन की किसी विशेष अवस्था (यद्यपि यह, निस्सन्देह, हो सकता है कि कुछ व्यक्ति अपना विकसित होना बन्द कर दें) पर रोकी नहीं जा सकती। और इस प्रकार का चरम बिन्दु, जिसकी व्याख्या की जा चुकी है, केवल व्यक्तित्व विकास

की कुण्डली सदृश गति के एक नये चक्कर की अवधारणा प्रस्तुत करता है।

× × ×

यौवन क सम्बन्ध के इस अध्याय का उपसहार करते समय हमे उस अवस्था के, जिससे हम अपनी सैद्धान्तिक विश्लेषणात्मक योजना के अनुसार, उन प्रमुख प्रकार की गतिविधियो का, जो यौवन के साथ-साथ विकास को नियत्रित करने वाली सामाजिक स्थितिया और उन नवीन मनोवैज्ञानिक तत्त्वो, जो परिणाम-स्वरूप आविर्भूत होते है, के विशिष्ट लक्षणो के लिए विशिष्ट हैं, अनुमान करते हैं।

स्वभावत, इन प्रतीयमानत 'सरल' प्रश्नो का उत्तर देना आसान नही है। किन्तु तब यह एक ऐसी समस्या है जो सम्पूण आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान के लिए सामान्य है। जबकि बाल्यावस्था और किशोरावस्था के सम्बन्ध मे सक्रियता के प्रमुख प्रकारा का, जो विकास को निश्चित करते है, तादात्म्य ऐसा काय है, जो, हम विश्वास करते है, पूरा किया जा चुका है, जीवन की उत्तरवर्ती अवस्थाओ के सम्बन्ध म वही काय केवल प्रारम्भ हो रहा है। इसके अतिरिक्त, तरुणावस्था म मानव सक्रियता की सरचना न केवल जटिल और बहु फलित बन जाती है किन्तु, जो खास तौर से महत्त्वपूर्ण है वह यह है कि यह व्यक्तित्व विकास को नियत्रित करने की मूत सामाजिक स्थिति पर निभर होत हुए तात्त्विक रूप से परिवर्तित हो जाती है। यही कारण है कि अनेक अनुसधानकर्त्ता उस अवस्था की प्रमुख गतिविधियो को पहचानने के प्रयत्न की सम्भावना और सत्यता के भी सम्बन्ध म सदेहवादी हैं। निस्सदेह, जबकि तरुणावस्था तक बालको और किशोरो की महत्त्वपूण गतिविधियाँ व्यापक सामाजिक पैमाने पर अपेक्षाकृत एक-रूपता से सगठित की जाती हैं और विशिष्ट सामाजिक सस्थानो (परिवार, किंडरगार्टन, विद्यालय) से स्पष्टतया जुडी हुई होती है और जबकि उसी कारण के लिए वे एक निश्चित आयु के बच्चो (उदाहरण के लिए सभी बच्चे 6-7 वर्ष की आयु मे विद्यालय मे उपस्थित होते हैं) के लिए बुनियादी रूप से समान होते है, शिक्षा की समाप्ति के अनन्तर क्रियाकलापो के स्वरूप और प्रकार का विस्तार वास्तव मे व्यापक बन जाता है। कोई एक 18-वर्षीय श्रमिक, एक 18 वर्षीय विद्यार्थी और एक 18 वर्षीय सनिक की गतिविधियो की तुलना कैसे कर सकता है? कोई उन सामाजिक विकास की स्थितियो, जो उस युवा पुरुष के लिए निर्मित होती है जो अभी-अभी ही विद्यालय के वातावरण से उत्पादन इकाई मे स्थानात रित हुआ है, जो किसी उच्चतर शक्षिक सस्थान म प्रविष्ट किया गया है अथवा जिसे सनिक सेवा के लिए बुलाया गया है की तुलना कर सकता है? क्या यह किसी प्रकार सम्भव है?

हमारी सम्मति म, इस सम्बन्ध म अनुसधान की वे कठिनाइयाँ, सिद्धान्त रूप स दूर की जा सकती हैं। सवप्रथम, हम इस विचार पर टिकते है कि

युवावस्था के प्रारम्भ के साथ किसी व्यक्ति की गतिविधियाँ अधिक जटिल और अधिक नानाविध हो जाती हैं वे उसके जीवन मे अपनी मौलिक भूमिका निभाना बन्द नही करती। इसके विपरीत, वे व्यक्तित्व विकास को नियन्त्रित करने वाली बुनियादी रचना-तन्त्र बनी रहती हैं। द्वितीय, जीवन के विभिन्न क्षेत्रो म विकास को नियन्त्रित करन वाली सामाजिक स्थितियो के अन्तर प्रत्येक क्षेत्र की गतिविधि के स्वरूपो के स्पष्ट विश्लेषण की अपेक्षा रखत हैं। तृतीय, आयु का विभेदीकरण का गतिविधि के कुछ रूपो मे चरम बिन्दुओ और जीवन के एक ही क्षेत्र के भीतर गतिविधि के नवीन, विभिन्न स्तरो मे सक्रमणो के साथ सयुक्त रहना जारी रहता है। जो कुछ मौलिक है वह केवल यही है कि किसी विकासीय स्थिति के सम्बध म और, अधिक सामान्य रूप से, व्यक्तित्व विकास की किसी अवस्था मे, कोई उस प्रकार की गतिविधि स्थापित कर सकता है जो व्यक्तित्व की प्रगति और विकास का प्रावधान कर सकती है और कुछ नवीन मनोवैज्ञानिक तत्त्वो का आविर्भाव सम्भव बना सकती है।

"वह धन्य है, जो यथासमय प्रौढ होता है,
युवक था—जब वह युवा था "

—अलेक्जेण्डर पुश्किन, यूजीन ओनेजिन

अध्याय 6

प्रौढता

अपने इस मरणशील जीवन के बीचोबीच
प्रौढता उत्तरदायित्व के रूप मे
व्यक्तित्व के 'मानदण्डो' की समस्या
लोग 'अपनी स्वय की' अवस्था से क्यो अरुचि रखते हैं ?
'अभिज्ञान सकट', 'रोग-भ्रम' और 'पदार्थ मे अवसान'
'युवा की वृद्धावस्था' अथवा 'वृद्धावस्था का युवा' ?

अपने इस मरणशील जीवन के बीचोबीच

ये शब्द दाते के द्वारा उनकी देदीप्यमान कृति 'दी डिवाइन कॉमेडी' मे उस समय लिखे गये थे जब वे 33 वष के थे। उनको उदधत करते हुए मैं पाठक का ध्यान उस महान कवि की आयुपरक आत्म चेतना की ओर आकृष्ट करना चाहूँगा। उन्होन स्वय को अपने जीवन के न तो प्रारभ मे और न अन्त मे किन्तु, ठीक बीचो बीच खडे हुए एक प्रौढ मनुष्य के रूप मे अपनी शक्तियो के बाहुल्य मे देखा, जब फ्रांसीसी कहावत 'यदि केवल वद्धावस्था कर सकती, यदि केवल युवावस्था जान सकती''[1] की समझदारी ऐसी विवेकपूण नही प्रतीत होती क्योकि 33 वष की आयु मे वे न तो वृद्ध थे न युवक। वस्तुत वे जानते थे और सब कुछ कर सकते थे। उन्होने अपनी काव्यकृति का प्रथम पृष्ठ, तेजस्वी प्रशान्ति से परिपूण, उस सबसे दूर हट कर (किन्तु जीवन से नही) जो व्यथ और अनित्य था, प्रारभ किया। दात—कवि और प्रौढ मनुष्य!

प्राचीन यूनानी इस अवस्था और इससे जुडी हुई मानसिक दशा का एक 'पराकाष्ठा' के रूप म उल्लेख करते है जिसका अथ होता है शिखर, किसी वस्तु का सर्वोच्च सोपान (जीवन) का पूर्णोत्कष, पुष्पणकाल, अर्थात, मानव व्यक्तित्व के पूण विकास का क्षण, जब कोई व्यक्ति उमे प्राप्त कर लेता है जिसे अग्रज व्यक्तित्व कहते है। और इस बात को ध्यान मे रखना चाहिए कि प्राचीनकाल मे इस अवस्था मे प्रति दष्टिकोण आदर का दृष्टिकोण था प्रसिद्ध प्राचीन यूनानी और रोमन (विशेपकर विद्वान) प्रौढ मनुष्या, योद्धाआ और नागरिको की ओर उस अवस्था क समय, जब वे 'कृत्य सम्पन कर लेते थे', आकृष्ट होते थे। इसी प्रकार, वृद्ध मनुष्यो का भी पहले के कृत्यो के कारण आदर किया जाता था, वास्तव म, उस समय के लिए, जब वे अपनी पराकाष्ठा पर थे, एकत्रित अनुभव के कारण व आदर के पात्र थे। बालको का नागरिको और योद्धाआ के रूप मे उनके भविष्य के लिए, उनकी प्रत्याशित 'पराकाष्ठा के लिए आदर किया जाता था। फिर भी अन्तत यह अपक्षाकृत महत्वहीन है कि शब्द 'पराकाष्ठा अच्छा है

1 इफ ओनली आल्ड एज कुड, इफ ओनली यूथ न्यू।

अथवा बुरा—यह अपक्षाकृत पसन्दगी का विषय है। अत्यधिक मौलिक है स्वय प्रौन्ता की 'पराकाष्ठा' के रूप मे अवधारणा। यह केवल इसलिए नही है कि एक अथवा दूसरे रूप मे इसका अस्तित्व अनेक लोगो मे है (45,50 और 55 की अवस्थाओ का उल्लेख किया जाता है) प्रौढता की व्यक्तित्व के पुष्पण के रूप मे अवधारणा केवल ऐतिहासिक एव सास्कृतिक महत्व की ही नही है किन्तु प्रौढा-वस्था के मनोविज्ञान की विशेष रूप से आधुनिक समस्याओ के दृष्टिकोण से भी महत्वपूण है।

उस तथाकथित क्रियात्मक मनोविज्ञान, जिसने मनोवैज्ञानिक प्रभासो का प्रमुखत जीवन मे उनके काय और किसी निश्चित समय म नियत व्यवहार म उनके समग्र स्थान के दृष्टिकोण से परीक्षण किया के अग्रणी प्रतिनिधियो मे से एक स्विस मनोविनानवेत्ता एडुअड क्लेपारेड ने उल्लेख किया कि प्रौढावस्था विकास के अवसान, 'अश्मीकरण' के समतुल्य है। एक निश्चित अथ मे यह आधार वाक्य इस अवधारणा से निकला हुआ कवल तकसम्मत निष्कप है कि वयस्कता और प्रौढता व्यक्तित्व विकास के लक्ष्य ह। अनेक मनोविनानवेत्ताओ के मत मे विकास इस अवस्था के प्रारभ होने के साथ ही स्वत रुक जाता है और वयक्तिक मनोवज्ञानिक अभिलक्षणो के साधारण परिवतनो के द्वारा स्थानापन्न हो जाता है। वस्तुत वह शिकागो विश्वविद्यालय की मानव विकास समिति की स्थिति है जिसके काय 'विकास के कठिन कार्यों' की अवधारणा की मौलिक प्रणाली विनान सम्बधी और व्यावहारिक भूमिका पर बल देते हैं। मानव जीवन की प्रत्येक अवस्था के लिए अनेक 'विकास सम्बधी काय' चुन लिये जाते है जो बिल्कुल विस्तृत और विशिष्ट होते है। ये काय विद्यालय-पूव के बालको और विद्यालय-आयु के बालको, प्रारभिक एव उत्तरवर्ती युवावस्था आदि मे विभिन्न होत है। यह केवल प्रौढ व्यक्तित्वो के सम्बध मे ही होता है कि विकास सम्बधी' कठिन काय किसी भी रीति से सूत्रबद्ध नही किये जात।

सक्षेप म, हमार सम्मुख एक उच्च रूप से विशिष्ट विचार प्रस्तुत किया जाता है जो समकालीन आयु वग मनोविज्ञान मे व्यापक रूप से ग्रहण किया जाता है, यथा, प्रौढता अथवा 'पराकाष्ठा' विकास का उद्देश्य और उसका उपसहार दोना है।

किन्तु तब मानव-जीवन की उत्तरकालीन अवस्थाआ के सम्बध मे क्या किया जाय, यदि प्रौढता विकास का चरमबिदु है तब वद्धावस्था के विषय मे क्या हो? और हम महान माइकल एजेलो को 90 वप की अवस्था म कसा समर्में जिहोने एक कार्डीनल के द्वारा यह पूछे जान पर कि इस प्रकार के ठण्डे तूफानी दिन में वे कॉलिसियम के फाटको पर क्यो खडे हुए हैं, उत्तर दिया मैं सीख रहा हूँ!" क्या यह किसी प्रतिभाशाली की सनक है? किसी अत्यन्त वृद्ध व्यक्ति के लिए सीखना,

अपने इस मरणशील जीवन के बीचोबीच

ये शब्द दांते के द्वारा उनकी देदीप्यमान कृति 'दी डिवाइन कॉमेडी' मे उस समय लिखे गये थे जब वे 33 वर्ष के थे। उनको उदधृत करते हुए मैं पाठक का ध्यान उस महान कवि की आयुपरक आत्म चेतना की ओर आकृष्ट करना चाहूँगा। उन्होने स्वय को अपने जीवन के न तो प्रारभ मे और न अन्त म किन्तु, ठीक बीचो बीच खडे हुए एक प्रौढ मनुष्य के रूप मे अपनी शक्तियो के बाहुल्य म देखा, जब फ्रासीसी कहावत 'यदि केवल वृद्धावस्था कर सकती, यदि केवल युवावस्था जान सकती'[1] की समझदारी ऐसी विवेकपूर्ण नही प्रतीत होती क्याकि 33 वष की आयु मे वे न तो वृद्ध थे न युवक। वस्तुत वे जानते थे और सब कुछ कर सकते थे। उन्होने अपनी काव्यकृति का प्रथम पृष्ठ तेजस्वी प्रशान्ति से परिपूर्ण, उस सबसे दूर हट कर (किन्तु जीवन म नही) जो व्यथ और अनित्य था, प्रारभ किया। दांते—कवि और प्रौढ मनुष्य।

प्राचीन यूनानी इस अवस्था और इससे जुडी हुई मानसिक दशा का एक 'पराकाष्ठा' के रूप म उल्लेख करते हैं जिसका अथ होता है शिखर, किसी वस्तु का सर्वोच्च सोपान, (जीवन) का पूर्णोत्कर्ष, पुष्पणकाल अर्थात, मानव व्यक्तित्व के पूण विकास का क्षण जब कोई व्यक्ति उसे प्राप्त कर लेता है जिसे अग्रज 'व्यक्तित्व' कहते है। और इस बात को ध्यान मे रखना चाहिए कि प्राचीनकाल मे इस अवस्था मे प्रति दष्टिकोण आदर का दष्टिकोण था प्रसिद्ध प्राचीन यूनानी और रोमन (विशेषकर विद्वान) प्रौढ मनुष्या योद्धाओ और नागरिका की ओर उस अवस्था के समय जब वे 'कृत्य सम्पन्न कर लेते थे, आकृष्ट होते थे। इसी प्रकार वृद्ध मनुष्यो का भी पहले के कृत्यो के कारण आदर किया जाता था, वास्तव म, उस समय के लिए, जब वे अपनी पराकाष्ठा पर थे एकत्रित अनुभव के कारण व आदर के पात्र थे। बालको का नागरिका और योद्धाओ के रूप मे उनके भविष्य के लिए, उनकी प्रत्याशित 'पराकाष्ठा के लिए आदर किया जाता था। फिर भी अन्तत यह अपक्षाकृत महत्वहीन है कि शब्द 'पराकाष्ठा' अच्छा है

---

1 इफ ओनली आल्ड एज कुड, इफ ओनली यूथ न्यू।

अथवा बुरा—यह अपेक्षाकृत पसन्दगी का विषय है। अत्यधिक मौलिक है स्वय प्रौढता की 'पराकाष्ठा' के रूप मे अवधारणा। यह केवल इसलिए नही है कि एक अथवा दूसरे रूप मे इसका अस्तित्व अनेक लोगो मे है (45,50 और 55 की अवस्थाओ का उल्लेख किया जाता है) प्रौढता की व्यक्तित्व के पुष्पण के रूप मे अवधारणा केवल ऐतिहासिक एव सास्कृतिक महत्व की ही नहीं है किन्तु प्रौढावस्था के मनोविज्ञान की विशेष रूप से आधुनिक समस्याआ के दृष्टिकोण से भी महत्वपूण है।

उस तथाकथित क्रियात्मक मनोविज्ञान, जिसने मनोवैज्ञानिक प्रभासो का प्रमुखत जीवन म उनके काय और किसी निश्चित समय मे नियत व्यवहार मे उनके समग्र स्थान के दष्टिकोण से परीक्षण किया, के अग्रणी प्रतिनिधियो मे से एक स्विस मनोविज्ञानवेत्ता एडुअड क्लेपारेड ने उल्लेख किया कि प्रौढावस्था विकास के अवसान 'अश्मीकरण' के समतुल्य है। एक निश्चित अथ म यह आधार-वाक्य इस अवधारणा से निकला हुआ केवल तकसम्मत निष्कष है कि वयस्कता और प्रौन्ता व्यक्तित्व विकास के लक्ष्य है। अनेक मनोविज्ञानवेत्ताओ के मत म विकास इस अवस्था के प्रारभ होने के साथ ही स्वत रुक जाता है और वयक्तिक मनोवज्ञानिक अभिलक्षणो के साधारण परिवतना के द्वारा स्थानापन्न हो जाता है। वस्तुत वह शिकागो विश्वविद्यालय की मानव विकास समिति की स्थिति है जिसके काय विकास के कठिन कार्यों' की अवधारणा की मौलिक प्रणाली विनान सम्बधी और व्यावहारिक भूमिका पर बल देते हैं। मानव जीवन की प्रत्यक अवस्था के लिए अनेक 'विकास सम्बधी काय' चुन लिये जाते हैं जो बिल्कुल विस्तृत और विशिष्ट होते है। ये काय विद्यालय-पूव के बालको और विद्यालय-आयु के बालको, प्रारभिक एव उत्तरवर्ती युवावस्था आदि मे विभिन होते हैं। यह केवल प्रौढ व्यक्तित्वो के सम्बध म ही होता है कि 'विकास सम्बधी कठिन काय किसी भी रीति से सूत्रबद्ध नही किये जाते।

सक्षेप मे, हमारे सम्मुख एक उच्च रूप से विशिष्ट विचार प्रस्तुत किया जाता है जो समकालीन आयु वग मनोविनान म व्यापक रूप से ग्रहण किया जाता है, यथा, प्रौढता अथवा 'पराकाष्ठा विकास का उद्देश्य और उसका उपसहार *दोना है।*

किन्तु तब मानव जीवन की उत्तरकालीन अवस्थाआ के सम्बध म क्या किया जाय यदि प्रौढता विकास का चरमबिदु है तब वद्धावस्था के विषय मे क्या हो? और हम महान माइकल एजेलो को 90 वप की अवस्था मे कसा समर्भे जिहोने एक कार्डीनल के द्वारा यह पूछे जाने पर कि इस प्रकार के ठण्डे तूफानी दिन मे वे कालिसियम के फाटको पर क्यो खडे हुए हैं, उत्तर दिया मैं सीख रहा हूँ।' क्या यह किसी प्रतिभाशाली की सनक है? किसी अत्यन्त वद्ध व्यक्ति के लिए सीखना,

अर्थात्, स्वय का विकास करना और पूर्णता प्राप्त करना यदि उसके जीवन की चढती जवानी पहले ही उमक पीछे रह गयी है यदि वह 'विकास के कठिन कार्यों' को सचालित नही कर सकता और 'अश्मीकृत' हो गया है। फिर भी माइकल एजेलो न कहा मैं सीख रहा हूँ, इम प्रकार आत्म विकास और आत्म-पूर्णता के लिए असीमित क्षमता के मानव के अधिकार पर बल दिया।

सावियत मनोविज्ञानवेत्ताओ के दृष्टिकोण स मानव के विकास की प्रक्रिया सीमा रहित है, क्योकि विकास व्यक्तित्व के अस्तित्व का बुनियादी प्रकार है। फिर भी प्रौढता के दौरान व्यक्तित्व विकास अपने स्वय के मनोवैज्ञानिक लक्षणा स सम्पन्न होता है। अब हम उन पर विचार करें।

प्रौढता उत्तरदायित्व के रूप मे

उत्तरदायित्व का बोध और उसे प्राप्त करने का प्रयास प्रौढता का निश्चित लक्षण है। कानूनी तौर से जिम्मेदार व्यक्ति वह व्यक्ति है जो कानून के सामन उत्तर दायी है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उत्तरदायी व्यक्ति वह व्यक्ति है जो अपने व्यवहार के लिए अपने जीवन की विषय-वस्तु—सर्वोपरि अपन लिए और दूसरा के लिए उत्तरदायी है।

कोई स्वतत्र रूप से निर्णय करने की योग्यता और आचरण के मार्ग को चुनने की योग्यता का उत्तरदायित्व के बुनियादी तत्वो के रूप मे मान सकता है। जब सामान्यीकृत किया जाय, तो ये दोनो अभिलक्षण विकसित वैयक्तिकता के गुणा के रूप मे देखे जा सकते हैं। इस कारण यह वैयक्तिकता ही है जो प्रौढता की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है कोई प्रौढ व्यक्ति अवस्था के साथ जो स्वत प्रेरणा खो देता है उसका स्थान वह अधिक विकसित वयक्तिकता ले लेती है जो इन दो तत्वो म स्वय को सबसे अधिक स्पष्टता से प्रकट करती है।

अपने उपन्यास **दी आइडिया आव मार्च** मे सुप्रसिद्ध अमरीकी लेखक थार्नटन विल्डर कुछ कुछ विरोधाभासी रूप से उत्तरदायित्व को स्वतत्रता से सम्बद्ध करते है और कहते हैं कि *स्वतत्रता उत्तरदायित्व है*। हमारे मत मे, *यह एक ही सम्पूर्ण* निर्णय है जो इस अनुच्छेद के प्रारभ म उल्लिखित आधार वाक्य को स्पष्ट करने के लिए सभव बनाता है।

मनुष्य के जीवन पथ पर विचार करने म हम इस बात पर ध्यान देने म नही चूक सकते कि प्रथम दृष्टि म यह एक ऐसी स्थिति से जो स्वतत्र है और जीवन की किसी विशिष्ट गतिविधि या स्वरूप स सम्बद्ध नही है, किसी के जीवन की गति विधियो पर बढती हुई निर्भरता की ओर निरन्तर सक्रमण को प्रतिबिम्बित करता

है। अपने यौवन मे विभिन्न प्रकार की गतिविधियो म नियोजित होन के लिए मानव शक्तियों के एक व्यापक वणक्रम का प्राप्त करके और उन पर अधिकार कर लेन पर कोई प्रौढ व्यक्ति इन गतिविधियों के सम्बन्ध म स्वतन्त्रता के अभाव के अनुभव से बच नहीं सकता। उसके पास उस गतिविधि के, जिसमे वह अपने जीवन की सम्पूण पूववर्ती अवस्था मे निरन्तर लगा रहा, फलस्वरूप पहले ही से जीवन का इतिहास, जीवन का अनुभव होता है।

एक निश्चित अथ म गतिविधिया के क्रियान्वयन ने उन्ह उनके उत्पादना के रूप म साकार कर दिया जिनमे से एक मानव व्यक्तित्व स्वय है, अर्थात्, वह जिसे मनुष्य ने स्वय निर्मित किया है।

अपनी स्वय की प्रवत्तियो के सम्बन्ध म प्रतिक्रिया दिखाते हुए और जीवन के आकपक क्षेत्र, व्यवसाय तथा जीवन-साथी को चुनकर, मनुष्य, ऐसा करने मे, अपने वातावरण पर निभर हो जाता ह, अपनी योग्यताओ के प्रयोग के सम्बन्ध म वह व्यवसायिक क्षेत्र के द्वारा और अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वा के द्वारा सीमित कर दिया जाता है। और इन बन्धनो को तोडना बडा कठिन होता है, यद्यपि, उदाहरण के लिए, उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसका परिवार अधिक महत्वपूण नही है और वह आसानी से दूर हट सकता है। ऐसा भ्रामक 'छिछोरापन उस आध्यात्मिक मानसिक आघाता की ओर ले जाता है जो केवल बहुत ही धीरे-धीरे अच्छे हाते है।

इस समय यथाथ रूप मे, जब वह स्वय को व्यापक निभरता की स्थिति मे पाता है और अपने पूववर्ती जीवन के अन्तराल के भार को वहन करने के लिए, ऐसा प्रतीत होता है, अपनी स्वतन्त्रता मे पूणतया सीमित होकर, बाध्य होता है, वह मनुष्य उन सामाजिक सम्बन्धो जिनमे वह अपने जीवन के द्वारा नियोजित हुआ है, की आवश्यकता और वास्तविकता की पूरी शक्ति को जानने लगता है।

हम इस समस्या को और अधिक विस्तार से देखें।

मानव के वाह्य निर्धारण और स्वतन्त्र इच्छा के सयोजन के रूप की अवधारणा से सम्बन्धित मौलिक प्रश्न हेगेल के द्वारा, जिन्होंने उचित ही कहा कि आत्मा की जीवित एकता (अर्थात्, स्वय मानव) स्वत प्रेरणा से इसकी योग्यताओ और शक्तिया के एक-दूसरे से स्वतन्त्र, अथवा, जो अन्ततोगत्वा एक ही वस्तु है, उसे ऐसी गतिविधियो के जिन्ह इस ढग मे समझा जाता है, रूप मे उपविभाजन का विरोध करती है, बडी विचक्षणता से प्रस्तुत किया गया।[1] किन्तु हेगेल पहले ही अच्छी तरह समझते थे कि सयुक्त कार्य के विभाजन की उपस्थिति मे इस

---

1 जी० डब्लू० एफ० हेगेल, सिस्टम डेर फिलॉसफी, ड्रिटर टील, स्टुटगाट, एफ-आर फ्रोमन्स वरलाग, 1929, पृ० 14

प्रकार की वाता का होना एतिहासिक रूप स वास्तविक अन्तर्विरोध है। इसी कारण व बतान ह कि 'आत्मा की स्वतत्रता और उसकी निर्धारित स्थिति के उन अन्तर्विरोध'[1] जो इस बिन्दु पर प्रकट हात हैं, को समझने की अपक्षाकृत अधिक आवश्यकता है। हेगेल स्वय ही इस समस्या को निम्नलिखित ढग मे हल करते हैं उनके विचार मे, आत्मा अपनी अवधारणा (सारतत्व) के अनुसार मुक्त है, और इस रूप म वह प्रकृति के विपरीत है।[2] किन्तु प्रकृति म जो प्रबल है वह मुक्ति नही किन्तु आवश्यकता है।[3] मूल रूप म आत्मा केवल अपनी अवधारणा की स्थिति (विशुद्ध व्यक्तित्व) म ही मुक्त है। जब इसका विकास प्रारभ होता है, आत्मा सवेदी ससार (शारीरिक व्यक्तीयन) से सम्बद्ध रहती है और इसकी मुक्ति की अनुभूति (व्यक्तित्व का विकास) सोपानो (प्रत्यक्ष वाध के विषय का व्यक्तीयन) म अग्रसर होती है, और वह गति अपन शिखर (अपन उद्देश्य) को दशन के रूप म सम्पूर्ण नान म प्राप्त करती है। बाहर से निर्धारण आत्मा के लिए परकीय है और इसलिए वह उसके लिए यथाथ अवस्थिति के रूप म केवल आवश्यकता बनकर ही रहता है (और केवल उसके रूप मे, जो विचार मे ही यथाथ हा सकती है और उसके वास्तविक नियत्रण करने वाल सिद्धान्ता के अनुकूल होती है, समझी जाती है।) इस अथ म, हेगेल के अनुसार, मुक्ति बोधगम्य आवश्यकता है।

यदि हम हगल के विचारो को वस्तुगत आदशवाद के भूसे से अलग करें और मनुष्य की 'आत्मा' के रूप म अवधारणा के अतिरिक्त हेगल के चिंतन के दाशनिक ज्ञान के निरपक्षतावाद का परित्याग करे और हेगल के द्वन्द्ववाद की भौतिकवादी रूप मे की हुइ व्याख्या[4] के प्रधान तत्व का परिरक्षित करें तो हमे मानना होगा कि उनका यह विचार कि मुक्ति एक बोधगम्य आवश्यकता है मौलिक रूप से सत्य और अनिवायत रचनात्मक है। यह उस अस्तित्व सम्बन्धी विरोधाभास को हल करना सभव बनाता है जिसने हम हेगल के विचार की ओर मुडने के लिए प्रेरित किया, अर्थात, कोई, मुक्ति और आवश्यकता की उस समस्या को जो प्रौढता के प्रवेश-द्वार पर खडे हुए व्यक्तियो के लिए एक महत्वपूर्ण दुविधा खडी कर देती है कसे सुलझा सकता है? यही वह ढग है जिससे हेगेल इस प्रश्न का उत्तर दत है।

हेगेल मनुष्य को, उन परिस्थितियो को, जो वास्तविक ससार द्वारा परि

---

1 वही, पृ० 14
2 वही, पृ० 19-30
3 वही, पृ० 21
4 वी० आई० लनिन 'ऑव दी सिगनीफिकेन्स ऑव मिलिटण्ट मटीरियलिज्म, कलेक्टेड वक्स, वाल्यूम 33, पृ० 234

भाषित है, स्वीकार करने और अमूत आदर्शों और किसी की स्वय की व्यक्तिपरक सावभौमता (रूसी आलोचक विस्सारियन बेलिस्की के शब्दा मे 'अति रजित आदशवाद') के लिए विवेकहीन लालसा से उद्भूत रोग-भ्रमी पीडाओ को चुनने की अपेक्षा स्वय और अपनी इच्छा की स्वतत्रता को, उन विचारो के अनुसार, जो इसम अन्तर्निहित है, ससार को रूपान्तरित करने की आवश्यकता को चुनने की स्वतत्रता के रूप मे स्वीकार करने के लिए सामन खडा करत ह।

फिर भी, जब व्यावहारिक जीवन की ओर मुडत है ता अधिकाश लाग विशिष्ट पदार्थों के क्षेत्र मे स्वय को निमज्जित पाते है, ये पदाथ अपने विशेष विभेदकारी अभिलक्षणो मे परिवतन ग्रहण कर सकते है किन्तु वे हमेशा स्वय को किसी सामान्य नियम अथवा नियत्रक सिद्धान्तो के अनुकूल कर लेते है। जसे ही वह यथाथ की पदाथ-सापेक्ष विषय वस्तु का उसकी विशिष्ट अभिव्यक्तिया मे ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो मनुष्य स्वय को केवल तभी पदार्थों से ऊपर उठा लेता है जब वह उनके विवरणो मे कोई वस्तु सावभौम रूप म देखता है। उस बिन्दु पर जब उसकी अपनी गतिविधि अपने काय (उदाहरण के लिए, जब कोई व्यक्ति एक विशेषज्ञ के रूप मे पहचाना जाता है) के अनुरूप बनाना आरभ कर देता है, तब वह अपने स्वय के व्यक्तित्व के नवीन तत्व का यागदान करके भी अपनी गतिविधि की विषय वस्तु को रूपान्तरित करने म सक्षम होता है। ऐसा करने म और स्वय को किसी विषय-वस्तु म यथाथ रूप देने मे और उसके साथ एकीकृत होने म मनुष्य उस विषय वस्तु के साथ 'समतुल्यता प्राप्त कर लेता है और अपने 'उद्देश्या म कोई प्रतिरोध' नही पाता।[1]

दशन के इस आवश्यक प्रसग प्रकरण का अनुसरण करते हुए, अब हम मनो वज्ञानिक विश्लेषण के क्षेत्र की ओर लौटना चाहिए। सवप्रथम उन आधार-वाक्यो से, जो उद्धृत किये जा चुके हैं, निष्कष निकालेंगे।

हम देख चुके है कि प्रौढता के प्रवेश-द्वार पर व्यक्ति अपनी स्वय की गति विधियो म मुक्ति और आवश्यकता के बीच की दुविधा का, इस प्रकार उन उपायो से, जा उनके जीवन और काय की पद्धतिया का निर्माण करत है जीवन म अपना स्थान निश्चित करत हुए, मिटा लेत है। मुक्त हाने के लिए किसी व्यक्ति का अपनी वास्तविक गतिविधि की वास्तविक परिस्थितियों को अपनी ही समझकर स्वीकार कर लेना चाहिए और ऐसा कर लेने पर, हगल के शब्दा म वह, 'बुरी व्यक्तिपरकता से एक ऐसे व्यक्तित्व म, जो ससार मे गतिविधि के अजित रूपा और ढगो के आधार पर स्वय को बनाये रखता है, व्यवहार के स्वरूपा और केवल

---

1 जी० डब्ल्यू० एफ० हगेल, सिस्टम डेर फिलासॉफी, पृ० 108

उसी के लिए विशिष्ट निणयो के साथ एक उत्तरदायी व्यक्ति के रूप मे परिवर्तित हो जाता है।

किन्तु एक मानदण्डीय, सामाजिक रूप से स्थापित और इसस आगे अवैयक्तिक मानव गतिविधि एक अनोखी वयक्तिक गतिविधि के रूप मे कसे परिवर्तित होती है ? यही वह प्रश्न है जिसका उत्तर दिया जाना चाहिए।

व्यक्तित्व के 'मानदण्डो' की समस्या

हम इस समस्या को और अधिक सामान्य शब्दावली मे सूत्रबद्ध करे।

सोवियत मनोविज्ञानवेत्ता बोरिस ब्रेटस ने आकपक ढग से उल्लेख किया है कि हम मनोवज्ञानिक दष्टिकोण से जो एक 'साधारण' व्यक्ति समझा जाता है उसकी अपेक्षा एक प्रौढ व्यक्ति की असगतिया और रोगात्मक विचलना के सम्बध मे अत्यधिक जानते है। निस्सदेह, मनोवज्ञानिक रोग विज्ञान एक बडी महत्त्वपूण विधा-विशेष है, और इसके अनुसधान हमारे आध्यात्मिक जीवन के बहुत से पहलुओ, किन्तु उनमे से सब पर नही, पर प्रकाश डाल सकते है, यद्यपि ऐसे प्रयत्न (उदाहरण के लिए, मनोविश्लेषण म स्नायु रागो की विस्तृत अवधारणा) किये जा चुके है। एक अमरीकी मनोविज्ञानवेत्ता और 'मानवीयतावादी मनोविज्ञान (जिसका विकास मनोवज्ञानिक रोग विज्ञान पर अत्यधिक बल और 'जीवन रहित' व्यक्तियो के अध्ययन पर आधारित व्यक्तित्व के सिद्धान्त की रचना करने के प्रयत्नो की प्रतिक्रिया मे हुआ है) के प्रतिनिधि गारडन आलपाट समझत ह कि व्यक्तित्व का अध्ययन मानव जाति के उत्कृष्ट प्रतिनिधियो के सजनात्मक गुणा के साधारणीकरण के द्वारा किया जाना चाहिए। इस प्रकार व्यक्तित्व का मनोविज्ञान मानव-आत्मा के उच्च शिखरा से लेकर उसकी छिपी हुई और अप्रतीय मान दरारो तक फला हुआ है। सक्षेप म, मनोविज्ञान मे न तो 'माप' की श्रेणी और न 'मानदण्ड की श्रेणी की ऊँची मान्यता है।

इस प्रसग मे वयस्क व्यक्तित्व के मनोवज्ञानिक अध्ययना मे प्रयुक्त प्रणालियो के सम्बध मे कुछ शब्द कहना युक्तियुक्त हा सकता है। यह सुविख्यात है कि किसी विज्ञान का तत्त्व उसकी प्रणाली मे निहित हाता है, क्योकि किसी विज्ञान के विकास के स्तर और उसकी विषय-वस्तु की वास्तविक प्रचुरता दोना के अतिरिक्त निष्कर्षों के महत्त्व अन्ततोगत्वा इसकी प्रणालिया की स्थिति और विकास के द्वारा निर्धारित किये जात हैं। और जब हम प्रणालिया की बात करते हैं तो हम वास्तव मे उसके अनुसधान उपकरणो का प्रसग दत है। तदनुसार प्रस्तुत सन्दभ मे निम्नलिखित प्रश्न उठ खडा होता है व कौन-सी प्रणालियाँ हैं

जो व्यक्तित्व विकास के सम्पूर्ण जीवन-काल का अध्ययन करना सम्भव बनाती हैं ?

हम इस बात का उल्लेख करते हुए प्रारम्भ करें कि ये प्रणालियाँ अत्यन्त नानाविध है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। अमरीकी मनोविज्ञानवेत्ता डेविड लेविनसन ने, यह मानते हुए कि साहित्य और चलचित्र तत्कालीन व्यक्तियों की सबसे अधिक अभिलक्षक मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को अपेक्षाकृत सम्पूर्णता से और संकेंद्रित रूप में प्रतिबिम्बित करते हैं, साहित्यिक नायकों और चलचित्र चरित्रों का अध्ययन किया है। लेविनसन के सहकर्मियों ने मनोविकृति सम्बन्धी चिकित्सालयों के 300 रोगियों और 300 स्वस्थ व्यक्तियों, जिन्होंने अनुसंधान-कर्त्ताओं की सहायता करने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित की थीं, से 600 साक्षात्कार किये। अन्त में, एक तीसरे मनोविज्ञानवेत्ता जार्ज वेलिएंट ने फिर भी अन्य नवीन प्रणाली का उपयोग किया, जो (एक लम्बे समय तक जारी रखा गया) तथाकथित 'देशान्तरीय' अध्ययन था। 38 वर्ष की अवधि तक उन्होंने उस समय, जब वे और उनके 'प्रयोग-वस्तु' दोनों ही युवक थे, प्रारम्भ करके 268 हार्वर्ड विश्वविद्यालय के स्नातकों का प्रेक्षण किया। वे व्यक्ति, जो इस अध्ययन के लिए चुने जाते थे वर्ष में एक या दो बार विस्तृत प्रश्नावलियों की पूर्ति करते थे।

संक्षेप में, प्रेक्षण, सर्वेक्षण और प्रश्नावलियाँ और साक्षात्कार मनोविज्ञान में ठीक ढंग से स्थापित प्रणालियाँ हैं। किन्तु इस सूची की जाँच (मनोमिति-सम्बन्धी), अन्वेषणात्मक एवं रचनात्मक प्रयोगों, संश्लेषणात्मक मनोवैज्ञानिक विशिष्टीकरणों के सूत्रीकरण, जीव विज्ञान सम्बन्धी विश्लेषण, अनुस्मरणों, दैनन्दिनियों, पत्रों, आत्मकथाओं, प्रश्नावलियों मौखिक विवरणों संस्मरणों को सम्मिलित करके सरलता से जारी रखा जा सकता है। ये उन प्रणालियों में से कुछ हैं जो व्यक्तित्व विकास का अध्ययन करने वाले आज के मनोविज्ञानवेत्ताओं द्वारा प्रयोग में लाये जा सकते हैं। वे मनोवैज्ञानिक प्रणालियों और प्रक्रियाओं के पूरे क्षेत्र पर निर्भर रह सकते हैं।

ऐसा प्रतीत हो सकता है इस प्रकार की वैज्ञानिक प्रणालियों की प्रचुरता की सहायता से मनोविज्ञानवेत्ताओं को बहुत समय पहले मानव गतिविधियों के मानदण्डीय अभिलक्षणों को स्थापित कर देना चाहिए था और विचलनों के विपरीत विशेष अवस्थाओं के लिए मानदण्डों की खोज कर लेनी चाहिए थी। जो सामग्री पहले ही प्रस्तुत की जा चुकी है उस पर आधारित होने पर यह दिखायी दे सकता है कि हम बहुत समय पहले ही कुछ मानदण्डीय गतिविधि-अभिलक्षणों को प्रतिपादित करने में सक्षम हो जाना चाहिए था। किसी सीमा तक हम इसे उस समय कर चुके हैं, जब, उदाहरण के लिए, विद्यालय पूर्व अवस्था के बालकों के सम्बन्ध

मे उल्लेख किया गया यह सामान्य व्यक्तित्व विकास खेला के जरिय घटित होता है और उसका परिणाम नवीन विशिष्ट मनोवैज्ञानिक रूपान्तरणा के रूप म प्राप्त होता है। फिर भी, इसके साथ ही सुनिश्चित कथन करना सम्भव नही है, क्योंकि *गतिविधिया और व्यक्तित्व का मानदण्डीय स्वरूप हमेशा सापेक्ष होना है*। हम इस बिन्दु को स्पष्ट करें।

व्यक्ति-वृत्त सम्बन्धी व्यक्तित्व विकास का विश्लेषण करने मे अलेक्सेई लिओन्तीव ने, जिनकी कृतिया का हम पहले ही उल्लेख कर चुके है, बताया है कि व्यक्तित्व विकास म अन्तर्निहित वस्तु-सापक्ष गतिविधि की सामान्य पद्धतिया को आत्मसात करने मे मनुष्य उस व्यावहारिक अथवा बोधात्मक गतिविधि म उपकरणा और सद्धान्तिक विषय-वस्तुआ के सम्बन्ध से नियोजित होता है जो, यद्यपि उस गतिविधि के अनुरूप हाती है जो उनम मूत होती है, इसके बावजूद भी तादात्म्य नही हाती।[1]

इसके बाद लिओन्तीव अपन विचार का स्पष्ट करत है "सर्वोपरि, एक *व्यक्ति और उसके औजारो के बीच एक उचित सम्बन्ध इस तथ्य म अभिव्यक्त* होता है कि वह (व्यावहारिक अथवा सैद्धान्तिक रूप स) उन कार्यों का अपनाता है जिनको वे (औजार) मूत रूप देत है और ऐसा करने म उसकी स्वय की क्षमताओ का विकास होता है।[2] इस प्रकार पर्याप्तता गतिविधि के आदश अथवा मानदण्ड की उस तदनुरूपता मे अन्तर्विष्ट है जो उसकी वस्तु-सापक्ष विषय वस्तु मे समायी हुइ है। किन्तु कोई इस प्रतिबन्ध की, कि आदश परिणामस्वरूप गतिविधि के अनुरूप नही हो सकता, कस व्याख्या करे? हमारे मत म यह केवल प्रतिबन्ध ही नही किन्तु उस मनोवज्ञानिक विकास के पदाथ अभिमुख स्पष्टीकरण का एक मौलिक पहलू है जिसकी उस अवधारणा की सही व्याख्या के लिए भी आवश्यकता है। इस विषय का तथ्य यह है कि जबकि काय की सामान्य पद्धतियाँ गतिविधि के ऐतिहासिक रूप से विकसित प्रतिमाना के आधार पर आत्मसात की जाती है, तो न तो वह आत्मसातकरण स्वय और न इसका परिणाम ही काय की सामान्य पद्धति के अनुरूप होता है। किसी प्रतिमान को आत्मसात करन मे, कोई व्यक्ति उसे पुनरुत्पादित करने की अपक्षा उसका नय सिर से सजन करता है और जो नव-सजित होता है वह हमेशा सन्दभ प्रतिमान से भिन्न होता है। सही अथ मे,

1 ए० लिओन्तीव 'ओब इस्तारिचेस्काम पोडखोडे के इझुचेनीयु साइखिकी चेलोवेका (कन्सनिंग दी हिस्टोरिकल एप्रोच टू दी स्टडी आव मन्स साइकी) इन साइखोलाजीचेस्काया नौका वी एस-एस एस-आर (साइकोलाजिकल साइन्स इन दी यूएसएसआर), वाल्यूम 1, मास्को, 1959, पृ० 21

2 वही

व्यक्तित्व के रूप मे विकसित होत हुए कोई व्यक्ति वास्तव म कुछ भी आत्मसात नही करता यदि उस शब्द मे प्रतिमान का पुनरुत्पादन अन्तर्निहित है। इसके बदले मे वह वस्तु-सापेक्ष गतिविधि की विषय वस्तु मे अन्त स्थापित नमूने के अनुसार उस प्रतिमान का नव-सजन करता है, क्योकि वस्तु सापेक्ष क्रिया, इस पर ध्यान दिए बिना कि यह ज्ञात प्रतिमानो के प्रसग म कितनी उपयुक्त हो सकती है, सदा अनोखी होती है। यह वह है जो किसी व्यक्ति के आत्म विकास के सक्रियता सापक्ष आधार का निर्माण करता है जब वह निरतर अपन स्वय क ससार का सजन करता है और उसकी मानव उत्पत्तिशास्त्र तथा मानव इतिहास के दौरान आत्मसात् और विकसित उसके वास्तविक वातावरण से तुलना करता है। जब भी ऐसा प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति, किसी विशेष प्रकार की गतिविधि और वयक्तिकता का अनुकरण करता है तो भी ऐसे कार्यों मे अपने स्वय के व्यक्तित्व का योगदान करता है और इस प्रकार उस मानदण्ड को उसके सशोधन के लिए एक निष्क्रिय आधार के रूप मे परिवर्तित कर देता है।

यह गतिविधि के उन मानदण्डीय रूपा की द्वयवृत्ति स्थिति का स्रोत है जिन्हे विनाश, परिवतन तथा मानव अस्तित्व के प्रत्येक क्षण किसी भी वस्तु मे रूपा तरण की आशका होती है। इस प्रकार के अथ मे कोई मानदण्ड सदा अस्तित्व मे रहता है और कभी अस्तित्व म नही रहता, क्योकि मानदण्ड को आत्मसात् करने का काय उसे नष्ट करने का और किसी नय गुण के द्वारा उसे पराभूत करने का भी है।

मानव व्यक्तित्व, जो मनुष्य की गतिविधि के एक अपरिहार्य उपोत्पादन (क्योकि कोई व्यक्ति तब भी अपने व्यक्तित्व का विकास करता है जबकि वह सचेतनता से इसे करन का प्रयत्न नही भी करता) को प्रस्तुत करता है, के सम्बन्ध म भी सत्य है। कोई पृथक व्यक्तित्व सदा मनुष्य की कुछ अवधारणाओ और उसकी भूमिका तथा जो मनुष्य मे मानवीय है उसके विशिष्ट सामाजिक-ऐतिहासिक तथा सास्कृतिक परिस्थितियो के निबन्धना मे तदनुरूप होता है। किन्तु व्यक्तित्व एस मानदण्डा के अनुरूप कभी नही होत और न कभी उनके साथ एकात्म होत है, क्योकि अन्तिम विश्लेषण म खास विशेषताओ के घटित होन की बारबारता पर आधारित प्रकारो का वर्गीकरण भी केवल सद्धान्तिक तरीका ही होता है। वास्तविक ससार मे किसी को दो पूणतया एक ही जैसे व्यक्ति नही मिलत, जैसे किसी को प्रकृति मे दो पूणतया एकात्म पदाथ नही मिलत, चाहे वे जगल की पत्तियाँ हा, धारा म पानी की बूँदें हो, अथवा किसी अणु के परमाणु हा। वे समान से अधिक कुछ नही होत।

सक्रियता और व्यक्तित्व की ऐसी अवधारणा मे मानसिक विकास क लिए प्रयुक्त मानदण्डो की समस्या के सम्बन्ध म एक विशिष्ट दृष्टिकोण अन्तर्निहित

है। सक्रियता के प्रतिमान और मानव विशेषताओ के सबसे अधिक बारबारता से घटित होने वाले अनोखे सयोजन के अर्थ मे एक मानदण्ड मे सदा मानव सक्रियता का केवल एक पहलू (यद्यपि आवश्यक और महत्वपूर्ण) और आत्म-विकास के लिए एक आधार अन्तर्विष्ट रहता है।

हम आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान मे इन प्रावधानो की भूमिका पर विचार करे।

लोग 'अपनी स्वय की' अवस्था से क्यो अरुचि रखते है ?

फ्रांसीसी साख्यिकीय ए० मोरौडी जोन्स ने एक बार 'कुछ कडुवाहट के साथ' कहा कि 'व्यक्तियो की आयु को किसी सही रूप मे निश्चित करना लगभग असभव है, क्योकि कुछ को इसका ज्ञान नही होता जबकि दूसरे इसे छिपाते है।[1] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दूसरा वर्ग ज्यादा आकर्षक है इसमे स्त्रियो और वयोवृद्ध व्यक्ति दोनो सम्मिलित हैं। किन्तु जबकि यह प्रतीत होगा कि पूर्ववर्ती ने हमेशा अपनी आयु को घटाने अर्थात उसे छिपाने, का प्रयत्न किया है, तो उत्तरवर्ती, बडे आश्चर्य की बात है कि, उसे बढा चढाकर कहने की स्पष्ट प्रवृत्ति को प्रदर्शित करते हैं। दोनो ने यह समझने वाले जन-साख्यिकियो को, कि पहले एक ही आयु-दस्ते (अर्थात वे व्यक्ति जो उसी एक ही वर्ष मे उत्पन्न हुए) की किशोर लडकियो की सख्या और कुछ समय बाद 18 से 30 वर्ष की आयु के बीच वाली स्त्रियो की सख्या की गणना करने पर, उत्तरवर्ती की सख्या क्या और अधिक बडी हो जाती है, उत्तेजित कर दिया। इस कारण कोई भी अपना दिमाग ठीक रहते यह कल्पना नही करेगा कि जसे ही वे अधिक आयु वाली होती गयी, ये लडकिया बढती गयी। इस जन-साख्यिकीय पहेली का उत्तर बडा सरल है—गैर-सरकारी और साथ ही बिल्कुल सरकारी भी—दोनो ही जनगणना आकडे प्रस्तुत करते समय—बहुत सी बडी उम्र की स्त्रिया सभी कीमतो पर अपनी आयु को कई वर्ष छोटी करने का प्रयत्न करती है। कोई भी यह देख सकता है कि जन-साख्यिकी का 'भव्य रोष प्रासगिक 'सास्कृतिक सन्दर्भ' की अवहेलना मे असाधारण है, क्योकि किसी भी व्यक्ति के समान वे इस तथ्य पर ध्यान देने मे असफल नही हो सकते कि वैज्ञानिक विषय भी सवेदनशील हो सकते हैं। प्राचीन रोमन कवि ओविड ने चेतावनी दी थी कि किसी को भी किसी स्त्री से उसकी आयु नही पूछनी चाहिए—विशेषकर यदि वह अपने प्रारम्भिक यौवन मे नही होती, यदि उसके जीवन का पूर्णोत्कर्ष बीत

1 अलेक्स मोरो डी जोन्स, एलीमेन्टस डी स्टटिस्टिक्वे, पेरिस, गिलौमिन, 1856, पृ० 69

चुका है और वह अपने सफेद बालो को नोचना आवश्यक समझती है। कवल कोई असीम रूप से भोला-भाला व्यक्ति ही किसी स्त्री के लावण्य को दोष समझेगा। इसके विपरीत, वयावद्ध व्यक्ति, विशेपतया अधिक अग्रवर्ती आयु के व्यक्ति, अपनी वास्तविक आयु मे कुछ वष जोडने का प्रयत्न करते है, जबकि कुछ 'रेकॉड तोडन वाने' बीस और चालीस वष भी जोडने की युक्ति निकाल लेते ह। जमन अनुसधानकर्त्ता ऑस्कर एण्डमन न इस प्रभास को वद्धावस्था के आत्म प्रदशन का एक रूप कहा ह। व एक मामले का स्मरण दिलात है जिसम 121 वष का होने का दावा करने वाला एक मनुष्य वास्तव म 85 वष का ही था। सयुक्त राष्ट्र जनसाख्यिका क विचार म यह आचरण प्राय विभिन्न परिणामो को उनके देय होने से पहले ही प्राप्त करन की इच्छा पर ही आरोप्य है। हम केवल यही कह कि यह एकमात्र स्पष्टीकरण नही है।

सामान्यतया किसी व्यक्ति की अपनी अवस्था म सम्बध ताडन की कुछ-कुछ विशिष्ट प्रवृत्ति हाती है। यह या तो अय अवस्था के व्यक्ति होने अथवा अयथा दिखाई देने की इच्छा होती है। एक छाटी लडकी—लगभग एक बच्ची—अपनी आँखो मे आसू भरकर उत्तेजनापूवक आग्रह करेगी कि वह 'छोटी नही' है, यद्यपि वह भली-भाति जानती है कि वह छाटी है। किशोर 'वयस्क' कहलान की लालसा रखते है। और उन स्त्रियो के सम्बध म, जो ज्यादा छोटी दिखाई देना चाहती ह, सम्भवत पहल ही से यथासम्भव सब कुछ लिख दिया गया है। सयोगवश, बहुत से मनुष्यो को भी छोट दिखाई दन का प्रयत्न करते हुए, अपनी आयु और विशेप कर उसके कम आकपक लक्षणा—जसे बाहर निकला हुआ पेट, गजापन और सफेद कनपटी को छिपान का कष्ट उठात हुए व्यक्तियो के रूप मे अभिव्यक्त किया जा सकता है। यह विरोधाभासी है किन्तु सत्य है कि थोडे से लाग ही अपनी वास्तविक आयु को पसन्द करते है और यथासम्भव या तो बडी आयु के वग मे अथवा छोटी आयु के वग मे खिसक जाने के बडे प्रयत्न किये जाते हैं। तब हमारी आयु सम्बधी आत्म चेतना मे आये इन मोडो को कौन सी बात स्पष्ट करती है?

जबकि यह नही कहा जा सकता कि इस प्रभास की मनोविज्ञानवेत्ताओ द्वारा उपेक्षा की गयी है, तो भी प्रासगिक अनुसधान मुख्य रूप से बाल-मनोविज्ञान स सम्बधित रहे है। विशेप रूप से, फ्रासीसी मनोविज्ञानवत्ता बिआन्का जाज़ो के, उनके अनेक सहयोगियो के साथ क्रियान्वित किये अध्ययन मे 6 और 12 वष के बीच की आयु के बालका से पूछा गया कि वे कौन सी आयु पसन्द करते हैं छोट बालक रहना, अपनी खुद की आयु बनाये रखना या वयस्क होना। उन्ह यह भी पूछा गया कि क्या वे एक वष और अधिक बडे होना, जल्दी से युवा हाना अथवा जल्दी म वयस्क होना पसन्द करत है। इसर अतिरिक्त जाज़ो ने यह अनुमान किया कि किसी की उम्र के सम्बध का चुनाव अपक्षाकृत अधिक प्रौढ़ता, आत्म

है। सक्रियता के प्रतिमान और मानव विशेषताओं के सबसे अधिक बारबारता से घटित होने वाले अनोखे संयोजन के अर्थ में एक मानदण्ड में सदा मानव सक्रियता का केवल एक पहलू (यद्यपि आवश्यक और महत्वपूर्ण) और आत्म विकास के लिए एक आधार अंतर्विष्ट रहता है।

हम आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान में इन प्रावधानों की भूमिका पर विचार करें।

लोग 'अपनी स्वयं की' अवस्था से क्यों अरुचि रखते हैं ?

फ्रांसीसी सांख्यिकीय ए० मारोंडी जोंस ने एक बार 'कुछ कड़ुवाहट के साथ' कहा कि "व्यक्तियों की आयु को किसी सही रूप में निश्चित करना लगभग असंभव है, क्योंकि कुछ को इसका ज्ञान नहीं होता जबकि दूसरे इसे छिपाते हैं।[1] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दूसरा वर्ग ज्यादा आकर्षक है इसमें स्त्रियाँ और वयोवृद्ध व्यक्ति दोनों सम्मिलित हैं। किन्तु जबकि यह प्रतीत होगा कि पूर्ववर्ती ने हमेशा अपनी आयु को घटाने अर्थात उसे छिपाने, का प्रयत्न किया है, तो उत्तरवर्ती, बड़े आश्चर्य की बात है कि, उसे बढ़ा चढ़ाकर कहने की स्पष्ट प्रवृत्ति को प्रदर्शित करते हैं। दोनों ने यह समझने वाले जन-सांख्यिकियों को, कि पहले एक ही आयु-दस्ते (अर्थात वे व्यक्ति जो उसी एक ही वर्ष में उत्पन्न हुए) की किशोर लड़कियों की संख्या और कुछ समय बाद 18 से 30 वर्ष की आयु के बीच वाली स्त्रियों की संख्या की गणना करने पर, उत्तरवर्ती की संख्या क्यों और अधिक बड़ी हो जाती है, उत्तेजित कर दिया। इस कारण कोई भी अपना दिमाग़ ठीक रहते यह कल्पना नहीं करेगा कि जैसे ही वे अधिक आयु वाली होती गयी, ये लड़कियाँ बढ़ती गयीं। इस जन-सांख्यिकीय पहेली का उत्तर बड़ा सरल है—गैर-सरकारी और साथ ही बिल्कुल सरकारी भी—दोनों ही जनगणना आँकड़े प्रस्तुत करते समय—बहुत सी बड़ी उम्र की स्त्रियाँ सभी कीमतों पर अपनी आयु को कई वर्ष छोटी करने का प्रयत्न करती हैं। कोई भी यह देख सकता है कि जन-सांख्यिकों का 'भव्य रोष प्रासंगिक 'सांस्कृतिक संदर्भ' की अवहेलना में असाधारण है, क्योंकि किसी भी व्यक्ति के समान वे इस तथ्य पर ध्यान देने में असफल नहीं हो सकते कि वैज्ञानिक विषय भी संवेदनशील हो सकते हैं। प्राचीन रोमन कवि ओविड ने चेतावनी दी थी कि किसी का भी किसी स्त्री से उसकी आयु नहीं पूछनी चाहिए—विशेषकर यदि वह अपने प्रारम्भिक यौवन में नहीं होती, यदि उसके जीवन का पूर्णोत्कर्ष बीत

1 अलेक्स मोरौ डा जोन्स, एलीमेन्ट्स डी स्टेटिस्टिक्वे, परिस, गिलौमिन, 1856, पृ० 69

चुका है और वह अपने सफेद वालो को नोचना आवश्यक समझती है। केवल कोई असीम रूप से भोला-भाला व्यक्ति ही किसी स्त्री के लावण्य को दोष समझेगा। इसके विपरीत, वयोवद्ध व्यक्ति, विशेषतया अधिक अग्रवर्ती आयु के व्यक्ति, अपनी वास्तविक आयु म कुछ वप जोडने का प्रयत्न करत है, जबकि कुछ 'रेकाड तोडन वाले बीस और चालीस वप भी जोडने की युक्ति निकाल लेते है। जमन अनुसधानकर्त्ता आस्कर एण्डसन न इस प्रभास को वृद्धावस्था के आत्म प्रदशन का एक रूप कहा है। व एक मामले का स्मरण दिलात ह जिमम 121 वप का होने का दावा करने वाला एक मनुष्य वास्तव म 85 वप का ही था। सयुक्त राष्ट्र जनसाख्यिको के विचार म यह आचरण प्राय विभिन्न परिणामो को उनक देय होने से पहले ही प्राप्त करन की इच्छा पर ही आरोप्य है। हम केवल यही कह कि यह एकमात्र स्पष्टीकरण नही है।

सामान्यतया किसी व्यक्ति की अपनी अवस्था मे सम्बन्ध तोडन की कुछ-कुछ विशिष्ट प्रवत्ति हाती है। यह या तो अन्य अवस्था के व्यक्ति होने अयवा अयथा दिखाई दन की इच्छा होती है। एक छाटी लडकी—लगभग एक बच्ची—अपनी आँखो मे आसू भरकर उत्तेजनापूवक आग्रह करगी कि वह 'छाटी नहीं' है, यद्यपि वह भली भाँति जानती है कि वह छोटी है। किशोर 'वयस्क' कहलाने की लालसा रखते है। और उन स्त्रियो के सम्बन्ध मे, जो ज्यादा छोटी दिखाई दना चाहती ह, सम्भवत पहले ही स यथासम्भव सब कुछ लिख दिया गया है। सयागवश, बहुत से मनुष्यो को भी छोटे दिखाई दने का प्रयत्न करत हुए, अपनी आयु और विशेष कर उसके कम आवश्यक लक्षणो—जसे बाहर निकला हुआ पेट, गजापन और सफेद कनपटी का छिपाने का कष्ट उठात हुए व्यक्तियो के रूप मे अभिव्यक्त किया जा सकता है। यह विरोधाभासी है किन्तु सत्य है कि थोडे स लोग ही अपनी वास्तविक आयु का पसन्द करत हैं और यथासम्भव या ता बडी आयु के वग मे अथवा छोटी आयु के वग मे खिसक जान के बडे प्रयत्न किये जाते हैं। तब हमारी आयु सम्बन्धी आत्म-चेतना मे आये इन मोडो को कौन सी बात स्पष्ट करती है?

जबकि यह नही कहा जा सकता कि इस प्रभास की मनोविज्ञानवेत्ताओ द्वारा उपेक्षा की गयी है, तो भी प्रासगिक अनुसधान मुख्य रूप से बाल-मनोविज्ञान से सम्बन्धित रहे हैं। विशेष रूप से, फ्रांसीसी मनोविज्ञानवेत्ता विआन्का जाजो के, उनके अनेक सहयोगियो के साथ क्रियान्वित क्रिये अध्ययन मे 6 और 12 वप के बीच की आयु के बालको से पूछा गया कि वे कौन सी आयु पसन्द करते हैं छोटे बालक रहना अपनी खुद की आयु बनाये रखना या वयस्क होना। उन्हें यह भी पूछा गया कि क्या वे एक वप और अधिक बडे होना, जल्दी से युवा हाना अथवा जल्दी स वयस्क हाना पसन्द करत है। इसके अतिरिक्त जाजो न यह अनुमान किया कि किसी की उम्र के सम्बन्ध का चुनाव अपेक्षाकृत अधिक प्रौढता, आत्म-

जागरूकता और आत्म सम्मान के अपक्षाकृत ऊँचे स्तर का प्रमाण है। जैसा हम नीचे देखेंगे, यह विवादास्पद है। किन्तु हम पहले ज़ाज़ो के अनुसधाना की ओर मुडें।

उनके सर्वेक्षण मे फ्रासीसी समाज के विभिन्न स्तरा ('श्रमिक', 'कमचारी और 'उच्चतर स्तर के पदो के प्रतिनिधिया') के बालक सम्मिलित किये गये। जो उत्तर उन्ह मिले उनमे आयु-सापेक्ष और सामाजिक-सास्कृतिक अन्तर स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हुए। बालक केवल एक बिन्दु—छोटे बच्चे न होने की उनकी इच्छा, के सम्बन्ध मे एकमत थे। इसके अतिरिक्त, 'श्रमिको' और 'उच्चतर स्तर के पदा के प्रतिनिधियो' के बालको ने अपनी इच्छा मे वयस्क होने की अग्रता की। यह सत्य है कि अधिक बडे बालक अपनी स्वय की आयु को ही वधमान रूप मे पसन्द करने की ओर प्रवत्त होते है और यह 'उच्चतर स्तर के पदो के प्रतिनिधिया के बालको म अधिक पहले दिखाई देता है। ज़ाज़ो इसकी श्रमिको के बालका मे 'अधिक बडा शिशुत्तावाद' बताकर व्याख्या करती है, यद्यपि, वह आगे कहती है, यह वयस्का के उद्देश्यो स अधिक बडे रूप मे प्रभावित होता है। विशेषकर, उच्चतर सामाजिक स्तर व्यक्तित्व विकास (नैतिक प्रौढता, स्वतत्रता, रुचियो का स्तर) पर अपक्षाकृत अधिक बल देत है, जबकि श्रमिक परिवार व्यावहारिक कार्यों और उन आवश्यकताओ की अनुकूलता, जो उनकी सामाजिक भूमिका से जुडी हुई होती हैं की प्रौढता पर बल देते हैं। सभी विषया मे 'कमचारियो' के बालका ने एक मध्यवर्ती स्थिति ग्रहण की।

ज़ाज़ो के अध्ययन की एक महत्वपूण विशेषता वह गम्भीर सावधानी है जो उस सामाजिक वातावरण, जिसमे व्यक्तित्व विकास घटित होता है के सम्बन्ध म रखी जाती है। प्राप्त तदनुरूप अन्तर महत्वपूण और अथगर्भित दोना है। फिर भी, वतमान मे हम एक भिन्न विषय अर्थात, किसी की स्वय की आयु की स्वीकृति अथवा अन्य आयु की पसन्दगी, से सम्बन्धित है। ज़ाज़ो का यह निष्कष, कि स्वय के सम्बन्ध म परिवर्तित होती हुई अवधारणाएँ व्यक्तित्व विकास म एक प्रेरक शक्ति के रूप मे काय करती हैं, निर्विवाद रूप से सत्य है। किन्तु हम उनके इस अनुमान कि बालक और किशोर, जो अपन वतमान 'स्वय सकारात्मक मूल्याकन को अभिव्यक्त करते हैं अपने विगत विकास को एकीकृत कर चुके हैं और उत्तरवर्ती अवस्थाओ के लिए स्वय को प्रस्तुत कर रहे हैं, पर वाद विवाद करने को तयार है। हमारा विश्वास है कि यह आधार-वाक्य आशिक रूप से ही सत्य है और सिक्के के केवल एक भाग को ही प्रस्तुत करता है। क्योकि, जसा हम कई अवसरा पर उल्लेख कर चुके हैं, वयस्क बनने का प्रयत्न बाल्यावस्था म वसा ही विकास का आवश्यक कारक है जसी किसी की अपनी ही आयु बनाये रखने की प्रवृत्ति। इसके अतिरिक्त, किशोरावस्था मे अपनी ही अवस्था स सन्तुष्ट रहन की

प्रबलना आग के व्यक्तित्व विकास (हम शिशुतावाद की अवधारणा को स्मरण करें) म बाधा डाल सकती है। प्रत्यक्ष रूप से किसी को सन्तोष और असन्तोष, सह-अस्तित्व और विरोधी प्रेरणादायक प्रवृत्तियो क सघष के बीच किसी एकता का पसन्द करना चाहिए। हम आयु-वग सचेतनता (जिसे हम केवल बाल एव किशोर मनोविज्ञान का गुण नही समझत) की इस विशेषता को मनोवैज्ञानिक निर्माण का एक प्रकार, जिसमे मनुष्य उन विशिष्ट कार्यों, विचार और व्यवहार जो किसी निश्चित आयु-वग के लिए मानदण्डीय होत है, को अपना लेता है, अपनी उपलब्धियो से सन्तोष और भविष्य के कार्यों के प्रकाश मे अपन वतमान स्तर से असन्तोष दानो का अनुभव करता है, कहत हैं। ऐसी स्थितियो मे अपनी स्वय की आयु से तदनुरूप होने का प्रयत्न और साथ ही दूसरी अवस्था म जाने की इच्छा दोना ही लाक्षणिक हैं। यह विकास के उन सभी चरम बिन्दुआ म स्पष्ट दिखाई दता है जो अन्तर्विरोध के दूसरे पक्ष (परिवतन की आकाक्षा) पर बल दता है।

इम प्रकार हम एक एम महत्वपूण सिद्धान्त पर पहुँचते है जो मनुष्य के प्रकट होत हुए व्यक्तित्व के, फिर भी, दूसरे अभिलक्षण, अर्थात, किसी सीमित रूप की सीमाआ से आग बढने की इसकी क्षमता, को स्थापित करता है। यहाँ हम यह उल्लेख करना चाहते है कि यह अभिलक्षण व्यक्तित्व विकास मे आयु सापेक्ष परिवतना की एक विशेषता भी है जिसक सम्बन्ध मे किसी नयी अवस्था तक पहुँचना और उस पर काबू पाना अन्तत विकास का ऐसा समय है जा एक नयी अवस्था और एक नयी अवस्था मे सक्रमण के द्वारा, जो पूववर्ती अवस्था मे उसकी सीमाओ का अतिक्रमण करने की प्रवृत्ति के रूप मे पहले ही से अन्तर्निहित रहती है, प्रतिस्थापित किया जाता है।

मनुष्य के व्यक्तित्व का स्वरूप ऐसा होता है कि यह निरन्तर अपनी सीमाओ से आग बढ जाता है (स्वायत्ततापूवक विकास करता है) और अनवरत स्वय का भविष्य मे बहिर्वेशन करता है, क्योकि भविष्य के सम्बन्ध मे आकाक्षा विकास के लिए इच्छा है।

किन्तु नये स्वरूप की प्राप्ति और उसकी सीमाओ का अतिक्रमण अतीत के लिए विरह की भावना से भी उदभूत हो सकता है जिसकी प्रौढ और वयोवृद्ध लोगा म विशेष रूप से उच्चारित होने की प्रवत्ति रहती है। मानो यदि ऐसा ही हो तो ठीक वही रचना-तन्त्र एक विपरीत ढग से काय करने लगता है। उदाहरण के लिए प्रौढावस्था मे विकास की एक नयी स्थिति सक्रियता के उन रूपो को माँगने लगती है जो युवावस्था स्थिरता, उत्तरदायित्व और जीवन की नवीन शैली की प्राप्ति का अभिलक्षण हाता है। किन्तु व्यक्ति इसका प्रतिराध करत है क्योकि, जब व स्वय का भविष्य म बहिर्वेशन करते हैं, जिसका आक्रमण पहले ही प्रारम्भ हो चुका होता है, वे अपने 'आत्म का उपयुक्त स्वरूप नही देखते। वे इसीलिए

विगत अवस्थाओ को आदर्श रूप मे देखते है और वर्तमान प्रवृत्तियो के सम्बन्ध म अपने अनुभवो और प्रेक्षणो के आधार पर पिछली अवस्था मे लौटने का प्रयत्न करते ह। ऐसी स्थितियो म यौवन के विशेष आकर्षण का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। किसी का इस विषय का रुख भिन्न हो सकता है किसी का व्यक्तियो के युवक दिखाई देने के प्रयत्नो मे विडम्बना दिखाई दे सकती है, और कोई पूरे औचित्य के साथ दावा कर सकता है कि जैसे कोई इतिहास के चक्र को उल्टा नही घुमा सकता अत वह व्यक्ति वस की अपनी पूर्व की अवस्थाओ की ओर नही लौट सकता। फिर भी, हमारा कार्य केवल समझना है और इसीलिए हम स्वय को प्रेक्षणा तक ही सीमित रखेंगे।

'अभिज्ञान-सकट', 'रोग-भ्रम' और 'पदार्थ मे अवसान'

सोरन कीरकेगार्ड ने बताया कि वयस्को को विश्वास है कि भ्रमो और सन्देहो का सम्बन्ध युवको से है और उन पर इनका कोई प्रभाव नही है। फिर भी इस प्रकार का विचार स्वय ही युवक के भ्रम की अपेक्षा ज्यादा बुरा भ्रम है।[1] आधुनिक अन्वेषण ने दिखाया है कि बहुत प्रौढ व्यक्ति उसे प्रकट करते है जो 'अभिज्ञान सकट' कहा जा सकता है। यदि सत्य कहा जाये तो यह अवधारणा नयी नही है, किन्तु अतीत म यह प्रमुख रूप मे किशोरो की कुछ विशेषताओ को अभिलक्षित करने मे बाल मनोविज्ञान पर प्रयुक्त की जाती थी। इस कारण यह शब्द मनुष्य की स्वय के प्रति अतदनुरूपता के एक प्रकार और मनुष्य की यह स्थापित करने की असमर्थता, कि वह कौन है, उसके उद्देश्य और जीवन-परिप्रेक्ष्य क्या है, दूसरो के द्वारा वह किस दृष्टि से देखा जाता है और विशिष्ट सामाजिक वर्ग और समाज म वह कौन सा स्थान धारण करता है, की ओर सकेत करता है। किन्तु जबकि किशोरो और तरुणो के लिए प्रयुक्त किये जाने पर यह अवधारणा बिल्कुल ठीक प्रतीत होती है फिर भी प्रौढ व्यक्तियो के सम्बन्ध म इसका प्रयोग प्रथमत *विरोधाभासी दिखाइ द सकता है।*

और फिर भी हम विश्वास करते हैं कि इसे वयस्को पर भी लागू करने के पक्ष म मजबूत तर्क है, *क्योकि दैनिक जीवन म यह बहुत बार देखा जा चुका है* और प्राय साहित्यिक रचनाओ म इसका वर्णन किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त इस प्रभास का वर्णन मनोविज्ञानिक शब्दावली म सरलतापूर्वक किया जा

---

1 देखिए, एच० बरखार्ड, डायमन्सानन मशीचेर विरक्लिचकीट विजनफ्ट, 1965, एस० 207 208

सकता है। नय प्रभासो क सम्बन्ध म घटती हुई अभिपा, 'परिवष्ठित पिछड़े हुए जीवन' की भावना, और एक घटिया स्तर की व्यावसायिकता उत्पन्न हो जाती है। स्वय का योग्य, वाछित और अच्छा विशेष समझने का आदी और समाज म अपने स्वय क स्थान वाला व्यक्ति यह पाता है कि वह परिवर्तित हो गया है। व्यक्ति की सम्भावनाओ क सम्बन्ध मे सन्देह उत्पन्न हो जाते है, आत्म-विश्वास के अभाव क अतिरिक्त एक दु खदायी भावना, कि व्यक्ति का आत्म-सम्मान निश्चित रूप से घट गया है, का विकास हो जाता है। जीवन की पूर्णता का आनन्ददायक बोध गायब हो जाता है और उसके स्थान पर कभी निराशा आ जाती है जिसके कारण तुरन्त समझ म नही आते और अन्तत व्यक्ति की क्षमताओ को क्षीणता के रूप मे अनुभव किया जाता है।

व्यक्तियो के जीवन म आयु-सापेक्ष परिवतनो पर विचार करने म हेगल ने एक सम्बद्ध प्रभाम जिसे उन्होने 'रोग भ्रम के रूप म अभिव्यक्त किया है, की ओर ध्यान आकर्षित किया है। उन्होने ठीक ही कहा कि किसी वयस्क मानव-प्राणी का जीवन प्रमुख रूप म उन व्यावहारिक बाता से सम्बन्धित होता है जो अन्तर्निहित रूप मे 'तुच्छ बाता और 'ब्यौरा' से जुडी हुई होती है। और जबकि, वे बताते ह, यह पूर्णतया वस्तुओ के स्वभाव म होता है, क्योकि कोई क्रिया अनिवार्य रूप म ब्यौरा म सम्बन्धित होती है, इन ब्यौरो म विलीनीकरण बिल्कुल कष्टदायक हो सकता है और आदर्शों क तुरन्त क्रियान्वयन की असम्भवता रोग-भ्रम की स्थिति का कारण बन सकती है।

"कठिनता से ही कोइ कम-से-कम एक छोटे पैमाने पर ही इस रोग भ्रम से बचने म सक्षम हो। इसके अतिरिक्त, इसके लक्षण उस समय अधिक प्रकट होते हैं जब यह जीवन म अपेक्षाकृत अधिक विलम्ब से उत्पन्न होता है और कमज़ोर स्वभाव के व्यक्तियो मे यह उनके सारे जीवन भर कायम रह सकता है। जो व्यक्ति इस दशा मे होते है वे अपनी आत्मपरकता से पृथक नही होना चाहते और यथार्थ के प्रति अपनी अरुचि को पराभूत करने म असमर्थ होते हैं। इसी कारण वे स्वय का एक सापेक्ष अक्षमता की दशा म पाते है जो सरलता से सत्य हो जाती है।"[1]

व्यक्तित्व विकास के इस सकट के आक्रमण के किसी निश्चित समय को निर्धारित करना असम्भव है। यह व्यापक रूप से किसी व्यक्ति के जीवन के उन विशिष्ट अभिलक्षणा पर निर्भर होता है जो समय और तीव्रता दोनो, जिनके साथ तदनुरूप प्रतिभास अपने का अभिव्यक्त करते है, म ही अत्यधिक परिवर्तित होते है। इसके बदले म हम उनके सारतत्व पर विचार करे, अर्थात, हम जीवन के चरम बिन्दु पर

---

1 दखिये, डब्ल्यू० एफ० हेगेल, सिस्टम डेर फिलासॉफी, पृ० 105

स्वय वा पाने वाले प्रौढ व्यक्तियो के अभिज्ञान-सकट और 'रोग भ्रम' के कारण का निश्चित करने का प्रयत्न करें।

यह दिखाई देगा कि इस प्रश्न का उत्तर, उन नयी पीढियो के आविर्भाव, जो वयक्तिक आयु-सापेक्ष अवस्थाओ की विशिष्ट अवधि को प्रभावित करते है, मे सलग्न परिवतनो, और निश्चित विशेषताओ, जो व्यक्ति की गतिविधियो को अभिलक्षित करती है, दोना म खोजना होगा। हम इन दोनो प्रश्नो का विश्लेषण पहले ही सामान्य शब्दावली म कर चुके है। अब हम इन पर प्रौढ व्यक्तियो के विकास को नियत्रित करन वाली सामाजिक स्थितियों के सन्दभ मे विचार करेंगे।

40 और 50 वष की आयु के बीच के वयस्क अपने माता-पिता, जो उस समय वद्धावस्था म पहुँच चुके होते हैं, और अपने बच्चो, जो प्राय शिक्षा समाप्त कर रहे होते हैं और स्वतत्र जीवन प्रारम्भ कर रहे होते है, के बीच एक मध्यवर्ती स्थिति ग्रहण करते है। सर्वोपरि इसका परिणाम पारिवारिक जीवन का पुनर्निर्माण होता है। वयोवद्ध लोग अवकाश ग्रहण करते है, उन्हे और अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है और सामाजिक और व्यावसायिक गतिविधियो का और बडा क्षेत्र छोडकर और मध्यवर्ती पीढी पर जीवन के बडे उत्तरदायित्वो को डालकर 'साधारणतया पृष्ठभूमि मे खिसक जाते हैं।' प्रौढ व्यक्तियो के मूल्य मानदण्ड सामाजिक जीवन म एक अग्रणी भूमिका निभाते हैं जसे ही वे मानव सक्रियता के उन सभी साधनो, जो मानव इतिहास मे विकसित हुए और अपनी स्वय की पीढी के इतिहास मे आगे जाकर पूण हुए, का अपनी रुचियो, अपनी जीवन की शली और सक्रियता की शैली पर बल दने के लिए प्रयोग म लाते है। वस्तुत वे (उस शब्द के सवव्यापक अथ मे) सामजस्य रखने वाले बन जाते हैं। साधारणतया व्यक्ति इस अवस्था मे अपनी व्यावसायिक और सामाजिक प्रगति के शिखर पर पहुँच जाते हैं और सबसे अधिक विभिन्न क्षेत्रो मे गतिविधियो पर नियत्रण कर लेते हैं। यही वह आयु है जब बहुत से व्यक्ति अग्रणी प्रशासक, वैज्ञानिक और वज्ञानिक अनुसधानो के समन्वयक बन जाते हैं। उनका स्वय का कल्याण भी सर्वोच्च स्तर (आवास घरेलू उपकरण आदि) पर पहुँच जाता है। सक्षेप मे, आज भी पहले की तरह प्रौढ व्यक्ति समाज के सामाजिक और आयु-सापेक्ष ढाँचे म केन्द्रीय स्थिति ग्रहण करते है और राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक ढाँचो म 'सप्रेषण पट्टियो' के रूप म सघटित होते हैं। सामाजिक दृष्टि म यह भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

फिर भी व्यक्ति जस ही अपने 'उडा
पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं वे अपनी
एकमात्र लाक्षणिक अर्थ म कर रहे हैं)
की कक्षा' म स्थापित किया है। रविट के
वस्था एव युवावस्था ने सम्मिलित काय

उत्पाद को कक्षा में सुरक्षित रूप से स्थापित करके उस यान ने टंकियों के भार से मुक्त कर लिया है। किन्तु जो शक्ति व्यय हो चुकी है उसकी पूर्ति नहीं हो सकती और इस क्षण से बाद में अन्तरिक्ष यान, जो त्वरण इसने प्राप्त कर लिया है उसका उपयोग करते हुए, केवल जड़त्व के द्वारा चल सकता है क्योंकि यह स्वतः मुक्ति सम्पादन के लिए आवश्यक ऊर्जा को बनाए रखता है।

यह केवल एक उपमा है और हम इसमें सार्वभौम नियम की शक्ति होने की आशा नहीं कर सकते। त्वरण की पूर्ववर्ती अवस्थाओं से उद्भूत ऊर्जा के द्वारा चलने वाले व्यक्ति के रूप में एक प्रौढ़ व्यक्ति का चित्र प्रयोगात्मक आँकड़ों के अभाव में प्रौढ़ावस्था की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्तियों में अन्तर्निहित शुद्ध ऊर्जा से सम्बन्ध रखने वाली हमारी परिकल्पना को सूत्रबद्ध करने में हमें सहायता देने के लिए अभीष्ट होता है। अब हम पुनः मनोवैज्ञानिक प्रमाणों के द्वारा अपने विचार बिन्दु को प्रमाणित करने का प्रयत्न करें।

हमने अभी प्रौढ़ता की ओर मनुष्य की उड़ान के 'सर्वोच्च कक्षा बिन्दु' के अर्थ को बताया है। अब यह महत्त्वपूर्ण है कि हम उस अर्थ को स्पष्ट करें जो हम त्वरण के द्वारा चालित एवं मुक्ति प्रदान किए हुए 'उत्पाद' की धारणा के लिए प्रदान करते हैं। इसे किसी प्रौढ़ व्यक्ति की गतिविधियों के सन्दर्भ में अनुमानित किया जा सकता है। इस स्तर पर व्यक्ति साधारणतया एक या अधिक महत्त्वपूर्ण

विद्यार्थियों को विषय वस्तु के रूप में पाकर उसमें मूर्त रूप धारण करते हैं, वैज्ञानिक अपने अनुसंधानों और उन व्यक्तियों में जो उनकी वैज्ञानिक गतिविधि को आगे बढ़ाते हैं, कलाकार अपनी कलाकृतियों में और श्रमिक उन अनेक वस्तुओं में, जो उनके हाथों से उत्पन्न की जाती है, मूर्तिमान होते हैं। यह भार, जो स्वयं बहुत भारी है, इस तथ्य से, कि विकास की अनवरत प्रक्रिया के द्वारा उत्पन्न नये तत्वों का उद्भव उसे पृष्ठभूमि में धकेलने की आशंका उत्पन्न करता है, अत्यधिक बढ़ जाता है। अनुसंधान लुप्त हो जाते हैं, बच्चों के स्वयं के बच्चे हो जाते हैं और नयी परिस्थितियों के अनुकूल होकर शिक्षा का पुनर्निर्माण करना पड़ता है। पुराने दृष्टिकोणों और पुरानी पद्धतियों के स्थान पर कलात्मक अनुसंधानों और नयी तकनीकों से युक्त अग्रगामी दृष्टिकोणों और पद्धतियों का आविर्भाव होता है और मानव आबादियों का वास्तविक वातावरण अशांत परिवर्तनों का अनुभव करता है। यह सब केवल व्यक्ति की सक्रियता का किसी पदार्थ में तर्कपूर्ण समापन के रूप में, क्षमताओं के मूर्तिकरण के रूप में 'पदार्थ में अवसान' को ही उत्पन्न नहीं करता किंतु एक उदासी, एक 'रोग भ्रम' और एक 'अभिज्ञान संकट' भी उत्पन्न करता है।

इन शब्दों को लगभग पर्यायवाचक शब्दों के रूप में प्रयुक्त करने में यह आवश्यक है कि उनके अर्थों में भेद किया जाय और उन्हें स्पष्ट किया जाय। व्यक्ति के 'वास्तविक वातावरणों का अवसान' अपरिहार्य है। कारण यह है कि इस बात पर ध्यान न देते हुए कि उसका व्यक्तित्व कैसा प्रभावशाली और स्पष्ट हो सकता है वह सामाजिक विकास के सम्मुख निस्सहाय है। वह सामाजिक ऐतिहासिक प्रक्रिया में एक ऐसा क्षण, यद्यपि एक महत्वपूर्ण क्षण ही बना रहेगा जो मानव जीवन के वास्तविक वातावरण को रूपान्तरित कर देता है। 'सदा के लिए' कोई वस्तु प्राप्त नहीं की जा सकती, क्योंकि उस 'सदा के लिए' का मानव-जाति के ऐतिहासिक विकास में एक क्षण होना, उस युग के लिए एक स्मारक, भविष्य के युगों के लिए एक घोषणा, किंतु विकास का शिखर प्रमाणित नहीं होगा।

व्यक्ति अपने 'रोग भ्रम' को ऐतिहासिक और सामाजिक प्रक्रिया में अपनी सक्रियता की भूमिका और स्थिति को समझकर पराभूत कर सकते हैं और बहुत से करते हैं। वे केवल नवीकरण के लिए आवश्यकता के साथ समझौता ही नहीं करते किंतु अपनी सामाजिक और व्यावसायिक स्थिति के पूरे प्रभाव का उपयोग करते हुए नवीकरण वाली गतिविधियों में अपने को नियोजित भी कर देते हैं।

जहाँ तक 'अभिज्ञान संकट' की बात है, इसका मूलभाव पदार्थ में अवसान की अपरिहार्यता के साथ समझौता करने के लिए एक साधन के अतिरिक्त 'रोग भ्रम' को पराभूत करने का एक कारक है। स्वयं को अपने जीवन के शिखर पर, किन्तु आगे उन्नत होने की शक्ति से रहित (एक 'उच्चतर बिंदु' अस्तित्व में नहीं

भी हो सकता) विकास की एक नवीन स्थिति में पाकर, इसके बावजूद भी, व्यक्ति स्वयं के साथ एक व्यक्तित्व को नवीन स्थितियों में पुनर्स्थापित कर सकते हैं—इसमें यह अंतर्निहित होता है कि वे अपने भीतर अपने स्वयं के 'व्यक्तित्वों' के लिए स्थान खोज लेते हैं और व्यवहार के तदनुरूप स्वरूपों और सक्रियता की पद्धतियों का विकास करते हैं। इसके लिए सच्चे चिंतन और कठोर आत्म विश्लेषण की आवश्यकता है। उस वैज्ञानिक वातावरण में, जो हमारे सबसे निकट है, 'पदार्थ में अवसान' के साथ-साथ 'रोग भ्रम' के तत्वों का अनुभव करने वाला वैज्ञानिक उस संकट को शिक्षा संस्थान के माध्यम से अपने उस विद्यार्थी को, जो उसके कार्य को आगे बढ़ायेगा, अपनी वैज्ञानिक धरोहर सम्प्रेषित करके, दूर कर देता है।

यह आपत्ति उठायी जा सकती है कि किसी वैज्ञानिक जो 50-55 वर्ष का है और अपनी सृजनात्मक क्षमताओं के परमोत्कर्ष पर है, के लिए उसका 'पदार्थ में अवसान' से सम्बद्ध होना आवश्यकता से अधिक पहले है। अनेक व्यक्ति इस प्रकार का दृष्टिकोण रखते हैं। वस्तुतः ऐसे किसी वैज्ञानिक को पाना कठिन है जो अपने पेशे के चरमबिंदु पर यह मान लेगा कि वह सक्रियता के सम्बन्ध में अभी से 'मृत' है, अपनी संभावनाओं को निःशेष कर चुका है और पहले से ही 'सब कुछ कर चुका है।' यह बहुत मानवीय है और सृजनात्मक दीर्घ जीवन के बहुत से प्रभावशाली उदाहरण मौजूद हैं।

'युवा की वृद्धावस्था' अथवा 'वृद्धावस्था का युवा'?

इस खण्ड के शीर्षक में अन्तर्निहित शब्द फ्रांसीसी कल्पनाप्रधान कवि विक्टर ह्यूगो के हैं। उन्होंने मानव-जीवन की उस अवस्था, जब कोई व्यक्ति स्वयं को प्रौढ़ता और वृद्धावस्था की सीमा रेखा पर पाता है किन्तु दोनों में से भी पूर्णतया सम्बन्धित नहीं होता, का वर्णन करने के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया है। आज इसी अवस्था का अत्यन्त न्यून सांख्यात्मकता से अवमूल्यन के रूप में वर्णन किया जाता है। परम्परागत रूप से यह पचास के दशक से सम्बन्धित की जा सकती है, जिसको कुछ लोग 'अधेड़' कहकर वर्णन करते हैं, जबकि दूसरे फ्रांसीसी मुहावरे 'अवनति की अवस्था' का प्रयोग करते हैं। किन्तु ये नाम ही नहीं हैं जिनका महत्त्व होता है। यह प्रमाण भी है कि यह मानव-जीवन में एक ऐसी विशिष्ट संक्रमणकालीन अवस्था है जिसे एक निश्चित आयु-अवस्था के रूप में और इसके अतिरिक्त उस आयु-अवस्था के रूप में जिसका आकलन नहीं के बराबर हुआ है अभिव्यक्त किया गया है। प्रमाण निम्नलिखित हैं।

यह ज्ञात है कि 'प्रत्यक्षवाद के जनक' फ्रांसीसी दार्शनिक ऑगस्ट कॉम्ट ने

50 वष की अवस्था म एक ऐसी धार्मिक स्थिति म प्रवश किया जिसकी प्रत्यक्षवाद के सिद्धान्तो से कोई साझेदारी नही थी। इसी प्रकार बीथोवन अपने जीवन के इसी काल म अपनी रचनाओ रहस्यवादी विषय वस्तु की ओर मुडे, यद्यपि कुल मिला कर उनकी सजनात्मक विरासत रहस्यवाद मे बहुत दूर है। अत मे हम रूसी साहित्यिक विद्वान दूमित्री ओवसियानिको कुलिकोवस्की की रचनाओ म लेव ताल्सताय के कफस स पर मनोरजक टिप्पणियाँ पाते है। इस रचना को उचित ही आत्मकथात्मक समझते हुए ओवसियानिको-कुलिकोवस्की न लक्षित किया कि उस समय ताल्सताय लगभग 50 वष की सक्रमणकालीन अवस्था (उस समय ताल्सताय 47 वष के थे), अर्थात् ऐसी अवस्था जब किसी व्यक्ति का आन्तरिक ससार इस प्रकार की भावनाओ, विचारो और मनोवत्तियो द्वारा, जो लम्बे समय म बनती रहती ह किन्तु केवल अभी पूण एव सुबोध अभिव्यक्ति पा सकी हैं, जटिल बना दिया जाता है, तक पहुँच चुके थ। यह अवस्था—मनोवैज्ञानिक जीवन म एक घुमाव का बिन्दु—इतना ही तीव्र होता है जितना वह जिसका प्रारभिक युवावस्था म अनुभव होता है। दोनो ही एक ऐसी विशिष्ट स्थिति के द्वारा पहचानी जाती है जिसम दश्य रूप से एक 'अभिव्यक्ति रहित' लालसा, एक आध्यात्मिक उत्पीडन, जीवन शक्ति की थकावट और कभी-कभी मृत्यु सम्बन्धी विचार अन्तर्विष्ट होते है।

हमने प्रौढता से वद्धावस्था के सक्रमण के दौरान एक आयु सकट के आक्रमण का इस प्रकार के प्रभासा, जैसे 'पदाथ म अवसान', 'रोग भ्रम' और 'अभिज्ञान सकट' की शब्दावली मे विवेचन किया है। हम इस विषय का निम्न प्रकार से आग विस्तार करना चाहते है 'अभिज्ञान सकट' अथवा व्यक्ति के स्वय के 'आत्म म तादात्म्य की अस्थायी हानि का प्रौढ व्यक्तिया मे उन गतिविधिया के माध्यम से निराकरण कर दिया जाता है जिनमे वे विकास की नयी स्थिति मे अपना स्थान पान और बदलती हुई जीवन-परिस्थितियो भपने व्यक्तित्वो के नवीकरण करन का प्रयत्न करते हैं। हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि यह अपक्षाकृत सावभौम काय है जो बालका, किशोरो और युवा व्यक्तिया द्वारा भिन्न भिन्न तरीको स समाधान प्राप्त करता है। यह प्रौढ व्यक्तियो के द्वारा भी हल किया जाता है किन्तु यहाँ व्यावहारिक गतिविधिया के अतिरिक्त एक दाशनिक पक्ष भी वतमान रहता है।

हम व्यावहारिक गतिविधियो का 'अभिज्ञान सकट' दूर करने के साधन के रूप म उल्लेख करते हैं। इसम हमारा तात्पय यह होता है कि जमन दाशनिक जोहन फ्रेडरिक हडर क शब्दा म, मनुष्य प्रकृति के हाथा मे केवल एक अधिक सम्पूण मशीन ही नही किन्तु अपन 'आत्म' को काय के लक्ष्य और उद्देश्य के रूप म समझता है। इसक अनुसार, मनुष्य व सम्पूण रचनातत्र को उसके क्रियाकलापा के सदभ म ही देखा जाना चाहिए। हम जमन कवि जोहन फ्रेडरिक शिलर के

शब्दो को उदधृत करके एक बार फिर इस बिन्दु पर बल दे। उन्होने उल्लेख किया कि प्रकृति पशुओ और पौधो को केवल एक जीवन लक्ष्य ही नही प्रदान करती है, किंतु उस जीवन-लक्ष्य को स्वय क्रियान्वित भी करती है, जबकि मनुष्य के सबध म वह उसे केवल जीवन लक्ष्य ही प्रदान करती है और उसका क्रियान्वयन मनुष्य पर छोड दती है। सयोगवश, 'मनुष्य का' वह 'आत्म-अनुकूलन' अनक पुराणा मे प्रतिबिम्बित हुआ है जो मनुष्य को एक अधिक सम्पूण ससार—एक 'स्वण युग' अथवा 'स्वग' से अवतरित प्राणी के रूप मे प्रस्तुत करत है। आज हमारी अभिव्यक्तिया अधिक बुद्धिसगत है मनुष्य वह है जिसको उसने अपने स्वय स निर्मित किया है, और उसका व्यक्तित्व उसके स्वय के क्रियाकलापा का उत्पाद है। किन्तु हम इस बिन्दु पर पहले ही विचार कर चुके है। वतमान सन्दभ म हम केवल इसी का ध्यान रखेंगे कि प्रौढता से वृद्धावस्था के सक्रमण काल म भी व्यक्तित्व विकास म सक्रियता एक अग्रणी भूमिका निभाना जारी रखती है।

जहाँ तक दाशनिक तत्व और अवस्था के साथ उस प्रगति पर चिन्तन करन के लिए एक निश्चित प्रवृत्ति का सम्बन्ध है, यह मनुष्य के आत्म-चिन्तन, उसके अपने जीवन क्रम के मूल्याकन और प्रारभिक 'समझ' का अनिवाय उत्पाद है। यह केवल 'प्रारभिक' है क्योकि जीवन की सक्रिय अवस्था अभी समाप्त नही हुई है, यद्यपि यह अगली पीढी की सृजनात्मक गतिविधि के सामने आत्म-समपण करना प्रारभ कर देती है। व्यक्ति की 'जाति के साथ एकात्मकता को पुन स्थापित करने और उस अवधि मे, जब वद्ध होने के प्रथम चिह्न (कुछ अनुसधानकर्त्ता विश्वास करते है कि यह 45 वप की अवस्था के बाद घटित होता है, जबकि दूसर इन परिवतना को अधिक पहले अथवा अधिक बाद की अवधिया के साथ जोडते है) प्रकट होत हैं, व्यक्ति की शक्तियो का नवीकरण करने के लिए मनुष्य को न केवल व्यावहारिक सक्रियताएँ ही प्रदर्शित करनी होती है किन्तु अपनी इच्छा शक्ति और आत्मिक विशेषताआ को भी उत्प्रेरित करना पडता है और उस शरीर मे, जो वधमान रूप से अस्वस्थता और रोग का विषय बनता जाता है, एक स्वास्थ्यकर ओज बनाये रखना होता है। मनुष्य का शरीर, मनोवत्ति के विरुद्ध प्रतिकार करत हुए, उसकी आत्मा और बौद्धिक एव भावात्मक ससार को 'दाशनिक चिन्तन' के अनुकूल बनाता है (हमने इन शब्दा को यह सूचित करन के लिए, कि वतमान सन्दभ म हम विशिष्ट दाशनिक चिन्तन की ओर नही, किन्तु मनुष्य की अपने जीवन के प्रभासा को साधारणीकृत शब्दावली म समझन की कम कठोर यद्यपि व्यापक प्रवृत्ति की ओर सकेत कर रहे हैं उद्धरण चिह्नो मे रखा है।) जैसे-जसे मनुष्य अपने अतीत का सर्वेक्षण करता है वह, यदि यह मान लिया जाय, अपनी आत्मकथा की बडी घटनाओ के सम्बन्ध मे नयी दृष्टि प्राप्त करता है, अपने जीवन के अनुभव और ऐसे समय जब अतीत की किसी चीज म परिवतन नही हो सकना

और भविष्य म महत्वपूण व्यक्तित्व परिवतना की प्रतीक्षा करन क काई आधार नहीं ह, की दृष्टि स नय ढग स उनका मूल्याकन करता है। कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि वह अब तक कितना जी चुका ह किन्तु यह कोई नही जानता कि और कितन समय तक जीवित रहना उसके भाग्य म लिखा है। एसी स्थिति म व्यक्ति प्रथम बार एक गतिहीन स्थिरता, एक एसी निश्चित भर पूरता और सम्पूर्णता, जिसम प्रत्यक्ष अनुभव की प्रक्रिया क रूप म जीवन, रुकन के लिए स्थान और समय छाडे बिना सभी विचारा और भावनाओ को आत्मसात करत हुए मानो, रुक जाता है और मनुष्य की, एमी सपूण मूर्ति क रूप मे, जा स्वय चिन्तन का कारण बनती है, चेतना का सामना करता है, का अनुभव करता है। और स्वय का अपन जीवन के उत्पाद और अपन प्रयत्नो के उत्पाद के रूप म चिन्तन करक स्वय पर विशिष्ट तीव्रता स विचार करता है।

यह सुप्रसिद्ध सोवियत लेखक यूरी ओलेशा के द्वारा उनकी पुस्तक *नाट ए डे बिदाउट लाइन मे स्पष्टतया अभिव्यक्त किया गया है "वृद्धावस्था तक जीवित* रह चुकना एक स्वर-काल्पनिक अनुभव है। मेरा इससे गभीर तात्पय है। कारण यह है कि मैं इतन लम्बे समय तक फिर भी जीवित न रह चुका हा सकता था। किन्तु, मैं जीवित रहा हू और जो स्वैर काल्पनिक है वह यह है कि मैं यह अनुभव करता हूँ कि मानो मै दूसरा को दिखाया जा रहा हूँ। क्योकि 'देखने' की मेरी क्षमता कायशील बनी रहती है और वसी ही कायम रहती है जैसी यह शिशुता म रही थी अत यह यौवन और ताजगी की भावना के कारण है कि जिससे मै आज भी स्वय का देखता हूँ जब म वृद्ध हूँ, और वृद्ध व्यक्ति मेरे लिए नवीन होता है—क्योकि मैं दुहराता हू, मै उस नही देख चुका हाता, अथवा जहा तक मेरा सम्बन्ध है अनेक वर्षो तक मन नही सोचा कि म उसे देखूगा। और अकस्मात—एक वृद्ध पुरुष दपण से मरी ओर दखता ह। यह स्वैर काल्पनिक है! आगे जाकर वे यह भी बतात हैं कि ' अब हम मे से दो है'—स्वय म और यह दूसरा व्यक्ति। जब में युवा था मैं भी परिवर्तित हाता था किन्तु अगोचर रूप से अपन जीवन भर के अपेक्षाकृत अच्छे भाग म लगभग ठीक वही व्यक्ति बना रहा। किन्तु अब ऐसा तीव्र परिवतम है मैं सवथा भिन्न हू। म तुम्हारा स्वागत करता हूँ, किन्तु तुम कौन हो? मैं हूँ—तुम। नही, वह सत्य नही है! भावनाओ और अन्तर्विरोधी मनोवेगो कितना जटिल सप्तक!

तथ्य यही है कि आग के वर्षा म अल्पतम परिवतन और सुधार सभव हागे और बहुत थोडी शक्ति और समय बचगा जो इस आत्म विश्लेपण (किशोर और युवा व्यक्तियो के आत्म विश्लेषण के असदश) को विशिष्ट प्रगाढता और तीव्रता प्रदान करता है। यह अधिकतम और अशान्त मनस्यता की स्थिति से स्वास्थ्य के द्वारा इसके क्रमिक सक्षेपण और परिसीमन तथा सजनात्मक शक्ति के अभाव क

"अरे मेरे वृद्ध पुरुषत्व, मेरी सभी खुशियों
में सबसे उत्कृष्ट !
मेरे लड़के और पोते,
मेरे सफेद बाल और दाढ़ी,
मेरी विशालता, प्रशान्ति, तेजस्विता,
मेरे जीवन के लम्बे फैलाव के कारण !"
—वाल्ट ह्विटमैन, 'ए सौंग ऑव जॉय'

अध्याय 7

वृद्धावस्था

जीवन के अन्तिम प्रश्न
वृद्धावस्था का दर्पण
आधुनिक संसार में वृद्धावस्था
दीर्घ आयु और लम्बा जीवन
वयोवृद्ध व्यक्ति व्यक्तियों के रूप में

जीवन के अन्तिम प्रश्न

वद्धावस्था मनुष्य की सबमे अधिक विरोधाभासी तथा अन्तर्विरोधी जीवन अवस्था है। यह वह समय होता है जब भ्रान्तियो का न आने देकर और जो हल होने योग्य नही है उनके हल की अपेक्षा रख कर अन्तिम प्रश्न पूण तीव्रता के माथ उत्पन्न होते है। जितने लम्बे समय तक मनुष्य-जाति अपने आपका याद रखती है, और जितने लम्बे समय तक इसने मानव 'आत्मा' की शाश्वत पहेली का सुलझान का प्रयत्न किया है, इसने उतनी ही वद्धावस्था के रहस्य को भी इस प्रभास की सही समझ तक पहुँचने और इसका अथ खोजने मे बार-बार प्रयत्न करने के अपने प्रयासो मे शिथिल न होत हुए, सुलझान की कोशिश की है।

अनुश्रुत बुद्ध, जो एक परम्परा के अनुसार उत्तरी भारत की शाक्य जाति (बुद्ध के नामो मे से एक शाक्य मुनि का अथ है 'शाक्य जाति का वखानस') के राजकीय वशज थे ने अपने पिता शुद्धोदन से दो अनिष्टा—वृद्धावस्था और मृत्यु—से मुक्ति के विषय मे वादविवाद किया। उन्होने मृत्यु के देवता—अनिष्टकारी दैत्य मार—पर विजय प्राप्त की और दुख के कारण और उसे दूर करने का माग खोज लेन के उपरात वे 80 वष की अवस्था मे 544 ई० पू० मे वशाख की पूर्णिमा के दिन मृत्यु को प्राप्त हुए। यह परम्परागत कथा है जा जीवन और मृत्यु के बीच के शाश्वत सघष और वद्धावस्था के दौबल्य पर विजय प्राप्त करने से सबध रखने वाली मानव-जाति की सबसे अधिक जीवन्त और कारुणमयी कथा है।

वद्धावस्था से सम्बन्धित कथाएँ असख्य है वसी ही उसके अथ से सम्बन्धित सूक्तियाँ हैं। प्रोटेस्टेन्ट धम के एक नेता मार्टिन लूथर ने दुख भरे स्वर म कहा कि 'वद्धावस्था एक जीवित कब्र' है। इस विचार न उस समय की मनोवत्ति को प्रतिबिम्बित किया और उसके समकालीनो ने इसम भागीदारी की। आज आन्द्रे मौरोइस की हल्की हास्यात्मक मनोवृत्ति की सूक्तिया के द्वारा अपक्षाकृत अधिक लोकप्रियता का अनुभव किया जाता है 'वृद्धावस्था एक ऐसी बुरी आदत है जिसके लिए चुस्त लोगो के पास समय नही है।' इन दो अतियो के बीच मानव सम्मतिया की गहरी खाई है, प्रत्यक का अपना तक, प्रयोगाश्रित युक्ति और अथ है।

किन्तु हम सबमे महत्वपूण प्रश्न जसे वद्धावस्था क्या है? का उत्तर नही

मिलता, कम-से-कम मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से। मानव जीवन की अवस्थाओ मे इसका क्या स्थान है और आधुनिक मानव के लिए इसका क्या अथ है।

इस कहावत मे कि वृद्धावस्था सुखदायक समय नही है, अभिव्यक्त वृद्धावस्था सम्बधी प्रचलित अवधारणाओ के निराशावाद को अपवाद मानकर मनोविज्ञानवत्ता वद्धावस्था के अभिलक्षणो वाले उन नवीन मनोवज्ञानिक रूपान्तरणो के विशेष स्वरूप की ओर सकेत करते हैं जि ह किशोरावस्था अथवा यौवन के मनोवज्ञानिक रूपान्तरणो से न तो ज्यादा अच्छा और न ज्यादा बुरा कहा जाता है। वस्तुत व भिन्न बताये जाते है और एक गभीर अथ और विशेष प्रयोजन स सम्बध रखते है। इसके अतिरिक्त, व्यक्तित्व का विघटन जो प्राय वद्धावस्था स जुडा हुआ होता है आवश्यक रूप स विकृतकारी प्रभास नही किन्तु वह अपने विशिष्ट सौदय एव जीवन शक्ति स सम्पन्न कहा जाता है।

हेगल ने विशेषकर, इस उचित प्रकार से समझा। अपनी फिलासाफी आव लाइफ मे उन्होंने वद्धावस्था मे व्यक्तित्व के विघटन को रोगविज्ञान सम्बधी प्रक्रिया की अपेक्षा प्राकृतिक अधिक समझा। इसके अतिरिक्त, उन्होंने इसे उससे, जिसे हम आज एक सकारात्मक 'नवीन व्यक्तित्व निर्माण' कहग, सयुक्त कर दिया। हेगल के अनुसार, एक वयोवद्ध व्यक्ति ने पहले ही से अपने आदर्शों को क्रियान्वित करने की अपनी आशाएँ छाड दी हैं, का अनुभव किया है और भविष्य स किसी नई बात की आशा नही करता। 'इसक विपरीत, वह विश्वास करता है कि वह उसे पहले से ही जानता है जो उस सबमे, जिसका वह सामना कर सकता है, सामाय और आवश्यक है।[1]

यही कारण है कि वृद्ध पुरुष का मन अधिकाश म अतीत की ओर उमुख रहता है। किसी अथ म वद्धावस्था बाल्यावस्था की ओर प्रत्यावतन है। बाल्यावस्था की स्थिति के समान ही यह कि ही अन्तर्विरोधो से परिचित नही होती। जसे ही स्फूर्ति स्वय की ओर लौट जाती है वृत्त रुक जाता है। केवल दैहिक अवयव तत्र—निमूल शरीर—उन आदतन गतिविधियो की शक्ति के माध्यम से, जो अब अधिक समय तक प्रक्रिया का बनाये नही रखती और, हेगेल के अनुमार एक जीवित व्यक्ति की अमूत नकारात्मकता की ओर, मृत्यु की ओर आग बढती हैं। इस प्रकार व्यक्तित्व 'जातिया के व्यक्तियो के साथ पारस्परिक क्रियाकलापो द्वारा उत्पन्न परिवतनो की एक निश्चित विशिष्ट सम्पूर्णता' मे परिपूण हो जाता है।[2] यह स्वय को दिक्काल मे उस जाति के प्रतिनिधि के रूप म, जिसने अपन विकास म अपने छोटे स सहयोग को क्रियाशील बनाया है, स्वय का अकित करता है। तब

1 जी० डब्लू० एफ० हेगल सिस्टम डेर फिलॉसाफी, पृ० 108
2 वही, पृ० 109

यह हेगेल का विचार है जो प्रभाव डालता है क्योकि, वृद्धावस्था की विशुद्ध प्रयोगाश्रित परिभाषा और इसके अथ को मुक्ति (जैसा कोई दाशनिक कहगा, 'अमूत सावभौमिकता') म परिवर्तित करने के प्रयत्नो के असदृश, वे वृद्धावस्था की अर्थात् इसे समझने की एक अवधारणा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करत है। यही हमारा अपना भी उद्देश्य है, कि तु हम इसकी आर दाशनिक साधारणीकरणो और एक मनोवज्ञानिक प्रभास के रूप मे इसका अथ खोजन की अपेक्षा, वद्धावस्था के मनोवैज्ञानिक विश्लेपण के माध्यम से आगे बढे।

वृद्धावस्था का दर्पण

प्राचीन पौराणिकी के काल से लेकर अब तक मानव-जाति बाल्यावस्था के ससार की वद्धावस्था के ससार से तुलना करने मे रुचि लेती रही है। हम एसचिलस के एगामेमनान मे आदरणीय वद्ध पुरुषा द्वारा गाये गीत को याद करे

किन्तु हम हमारे अवस्था के कारण दुवल अग
सामरिक कठिन परिश्रम के लिए असमथ है यहा लज्जास्पद बने हुए हैं
हमारे थके हुए कदमो को लाठी सहारा दे रही है बालको क समान
क्याकि बालक के वर्षों के रूप म प्राप्य नही हैं
सामरिक वल, झुर्रीदार आयु।[1]

बाल्यावस्था एव वृद्धावस्था के बीच अनेक अनुरूपताएँ चित्रित की गयी है जबकि ये हमशा औपचारिक होती हैं, वे आकषण से रहित नही है। सर्वोपरि किसी को वद्धावस्था एव बाल्यावस्था के 'दपण-सदृश स्वरूप' पर आश्चय होता है। जबकि बाल्यावस्था जीवन के प्रारम्भ, उसके 'उषाकाल' को अभिव्यक्त करती है, वृद्धावस्था उसके अ त अथवा 'झुटपुट' को अभिव्यक्त करती है जबकि बालक के अग अविश्वसनीय लचीले होत हैं वृद्ध के अवयव अपनी अबसे अधिक कठोरता तक पहुँच चुके होते हैं। अपन उन मित्रो अथवा परिचितो, जिनको हमने लम्बे समय से नही देखा है, से मिलन पर हम इस बात पर आश्चय होता है कि उनके बच्चे कितने बडे हो गये हैं और कितन बदल गये हैं। प्राय यह केवल 'परम्परागत वाक्याश नही होता किन्तु एक छोट प्राणी के विकास पर आश्चर्य की यथाथ अभिव्यक्ति होती है। किन्तु जब हम गली मे किसी वयोवृद्ध परिचित से मिलत हैं तो हम समान निष्कपटता से कहते हैं 'आप तो बिल्कुल ही नही

---

1 एसचिलस, "एगामेमनॉन, इन दी प्लेज ऑव एसचिलस, रॉवट पाटर द्वारा अग्रेज़ी म अनुवादित, ल दन और यूयाक , पृ० 124

वन्ल ।' और हम एक बार फिर सच्चे हो रहे होत ह, क्याकि लोग अक्स्मात आयु प्राप्त करते हैं और इसके अनुसरण मे एक प्रच्छन्न स्थिरकाल होता है जिसमे, विशेषकर उन व्यक्तियो मे जो वहुत बडी वृद्धावस्था तक जीते हैं, बहुत ही कम परिवतन होत हैं ।

वाल्यावस्था वाह्य ससार का प्रतिरोध करती है और एक 'विपरीत' प्रवृत्ति ग्रहण करती है। दूसरी ओर, वृद्धावस्था मे मनुष्य विश्व के विघटनकारी कारक का सामना करता है। धीरे धीरे, उदय और विकास मे अन्तर्निहित वाल्यावस्था के 'अहवादी' नियन्त्रक सिद्धान्त के साथ-साथ स्वास्थ्य और शक्ति की प्रवलता वाह्य शक्तियो की प्रवलता के सामने आत्म-समपण कर देती है और वैयक्तिक अनुभव की भूमिका घट जाती है। प्राकृतिक दशन के सम्बन्ध मे बताते हुए फ्रेडरिक एगल्स ने लिखा कि

"यह इसे केवल यथाथ किन्तु अव तक अज्ञात, पारस्परिक सम्बन्धो के स्थान पर आदश, काल्पनिक पारस्परिक सम्बन्धो को रखकर, लुप्त तथ्यो को मन की कल्पनाओ से भरकर और वास्तविक दरारो को केवल कल्पना म पाटकर ही कर सकता था। इस प्रक्रिया के दौरान इसने अनेक उत्कृष्ट विचारो की अवधारणा की और अनेक उत्तरवर्ती अनुसधानो को पूव प्रतिबिम्बित किया, किन्तु इसने मूखता की। उस अत्यधिक मात्रा को उत्पन्न किया जो निस्सन्देह, अन्य प्रकार से नही हो सकती थी।'[1]

एक ऐसा बोध है जिसमे वाल्यावस्था एव वद्धावस्था से सम्बन्धित इन विचारा का अथ है, यद्यपि आज हम उन्हें सिद्धान्तो के रूप मे सूत्रबद्ध नही करेंगे और उनकी प्रस्थापनाओ पर बहुत कम निभर करेंगे।

वाल्यावस्था एव वद्धावस्था के बीच मे अधिक प्रत्यक्ष समानताएँ भी है जसे आध्यात्मिक चिन्ताआ का अभाव, मूक भावनाएँ, 'उनका बचकानापन', तुनुकमिजाजी, हास्य और रुदन के लिए तत्परता, हास्यासक्ता, वातूनीपन, गति का भद्दापन, शरीर की अनोखी समतुल्यता, अनिश्चित ठवन, गायव दात, गरम और मीठे भोजनो की आवश्यकता, वेतरतीब वाणी, आवाज का ऊँचा स्वर और अनियन्त्रित मूत्रलता।

वालक वयस्का से अपनी तुलना करके समाज मे और ससार म अपनी स्थिति की अनुभूति तक पहुँचता है। लेस मोटस मे जीनपाल सार्त्रे ने लक्षित किया कि वालक यथाथ ससार मे अपने स्वय के भरण-पोषण से वचित कर दिय जात है—

---

1 फ्रेडरिक एगल्स, 'लुडविग फ्यूरबाच एण्ड दी एण्ड आव क्लासिकल जमन फिलासॉफी', इन काल माक्स एण्ड फ्रेडरिक एगल्स, सलेक्टेड वक्स, इन थ्री वाल्यूम्स, वा० 3, प्रोग्रस पब्लिशस, मास्को, 1976, पृ० 364 365

वे कृत्रिम रूप से यथार्थ से विलग किये जाते हैं। यह इस बात को प्रस्तुत करने वाला ऐसा विचार है जिसकी कोई वैसी व्याख्या नहीं करता जसी अस्तित्ववाद उस 'अभिशप्त चेतना' की शब्दावली मे करता है जिसे यथार्थ ससार मे अपना समर्थन पाने के लिए अधिक कुछ नहीं मिलता। जहाँ तक हमारा सबध है हम इस विचार की व्याख्या अपने स्वय के ढग से करते हैं और सार्त्र का सन्दर्भ केवल इसीलिए देते है क्योंकि उन्होंने निस्सन्देह जीवन के विरोधाभासो मे से एक को अभिव्यक्त किया है। सक्षेप म, बालक यथार्थ से ऐसी समाजीकरण करने वाली सस्थाओ, जसे देखभाल, भरण-पोषण एव विद्यालयो मे शिक्षा, के द्वारा कृत्रिम रूप से पृथक कर दिया जाता है। इस कारण यह महत्व की बात नहीं है कि मानव-जीवन की एक अवस्था के रूप म बाल्यावस्था स्वय मे कितनी मूल्यवान हो सकती है और व्यक्ति वत्त की सबसे प्रारम्भिक अवस्थाओ म स्वय का विकास करने वाले व्यक्तियो का काम कितना मूल्यवान हो सकता है, इसका लक्ष्य प्रौढता और वयस्कता की स्थिति म अन्तर्निहित रहता है और केवल वज्ञानिको के द्वारा ही नहीं किन्तु स्वय बालको के द्वारा भी मान्यता प्राप्त करता है। इसी प्रकार, यद्यपि कुछ भेदो के सहित, वद्ध व्यक्ति भी यथार्थ से पृथक कर दिये जाते है। इसके अतिरिक्त, वह पृथक्ता भी, कृत्रिम होती है, क्योंकि अवकाश-ग्रहण प्रकृति का नियम नहीं है किन्तु व्यक्तियो का उनकी वद्धावस्था म भरण-पोषण करने वाली सामाजिक सस्था है जिसका विकास उस सभ्यता के दौरान हुआ जिसम अतीत म वद्धावस्था को एक रोग, एक दुबलता और काम करने की क्षमता की क्षति माना जाता था। फिर भी हम विश्वास करते हैं कि जबकि वद्धावस्था के सम्बन्ध म इस प्रकार के विचार का ऐतिहासिक औचित्य है, आज यह विवादास्पद हो गया है। कारण, क्या यह आज के वयोवद्ध व्यक्ति का यथार्थ विवरण देता है?

आधुनिक ससार मे वृद्धावस्था

मानव-जीवन मे एक विशिष्ट आयु प्रभाग के रूप मे वृद्धावस्था 20वी शताब्दी मे तीव्र गति से विकास कर रही है। आज सामाजिक ढाँचा म वृद्ध व्यक्ति महत्वपूर्ण तत्व हो गये है। यह धारणा कि वृद्धावस्था 50 60 के अनुरूप चलती है, गायब हो गयी है। 18वी शताब्दी के अन्त से उस आयु वग म मृत्यु-दर चौगुनी घट गयी है। आज यथार्थ जीवन प्रत्याशा 75 वर्ष है क्योंकि हाल म ही मृत्यु-दर उन व्यक्तियो के लिए, जो अपने 70 के दशक म हैं, आधी घट गयी है। परिणाम स्वरूप सभी देशो की आबादी म वयोवृद्ध बडी सख्या मे हैं, किन्तु विशेष रूप से तथाकथित 'उन्नत रूप म विकसित' देशो म, जहाँ व्यक्ति काम से बहुत पहले

अवकाश ग्रहण कर लत है, व वयावृद्ध (70 80 वर्ष के) हो जाते ह । आज, अपने अवकाश-ग्रहण के बाद कोई व्यक्ति औसतन 15-20 वप जीवित रहता है। यह औसत जीवन-अवधि के महत्वपूण भाग, लगभग एक-चौथाई, को प्रस्तुत करता है। क्या यह यथाथ मे सत्य हो सकता है कि किसी व्यक्ति के लिए नियत जीवन-अवधि का पूरा चौथाई भाग विघटन और अवनति का काल होता है? क्या यह यथाथ मे सत्य हो सकता है कि ये व्यक्ति दरिद्रालयो और वद्धावस्था-गहो,को भरने वाले, अपने बिस्तरो पर परिरुद्ध और देखभाल और सहायता के लिए अपनी आवश्यकता के द्वारा "व्यस्त लोगो को महत्वपूण कामो से दूसरी ओर आकर्षित करने वाले, समाज पर एक 'अवाछित' भार है?" निस्सदेह नही।

विशेष रूप से, ज्यो ही हम ससार के समाजवादी देशो पर प्रमुख रूप से विचार करते है, तो हमे पता लगता है कि वृद्धावस्था के प्रति वे दृष्टिकोण, जो वयोवद्ध व्यक्तियो की चेतना को प्रभावित करते है, मौलिक परिवतना का अनुभव कर रहे हैं। सोवियत सघ मे वयोवृद्ध व्यक्तियो को सामाजिक सेवाएँ प्रदान करने और यह निश्चित करने के लिए कि वे व्यक्ति जो अपनी अवस्था अथवा सेवा-काल के वर्षो के कारण सेवानिवृत्त हो चुके है। 'जीवन के भरण-पोषण से वचित' व्यक्तियो के रूप मे ही केवल जीवित नही हैं और यह अनुभव नही करें कि वे समाज के लिए 'वाछित नही' ह। इसका सम्बन्ध केवल भौतिक पक्षो (पेंशन की मात्रा निरन्तर बढ रही है) से ही नही और न, निस्सदेह, इस तथ्य से है कि सरकार अकेले व्यक्तियो के लिए उनकी वृद्धावस्था मे पूण उत्तरदायित्व वहन करती है। युद्ध के अनुभवी, श्रम के अनुभवी और वे सभी व्यक्ति जिन्होने समाज के कल्याण के लिए अपनी शक्ति दी, समाजवादी उत्पादन मे काम किया अथवा अपने देश की सुरक्षा के लिए लडे, उन्हे सोवियत सघ मे सम्मान के अतिरिक्त विशेष सुविधाएँ दी जाती है। किसी के व्यावसायिक जीवन की समाप्ति उस सामाजिक जीवन की समाप्ति नही है जो, वृद्ध लोगो के लिए यथासम्भव सवत्र कायम रहती है।

फिर भी कुछ ऐसी कठिनाइयाँ हैं जो हमारे देश मे भी इस समस्या को सुलझाने मे मनोवैज्ञानिक निहितार्थ वहन करती हैं। आज, वृद्धावस्था मे 15 20 वप का जीवित रहना उस सन्तोष से 15 20 वप दूर रहना है जो किसी व्यक्ति के काय से उद्भूत होता है और परिवतनीय अशो मे यह व्यक्तियो को उस 'बल-कृत अवकाश' मे डाल देता है जिसके वे आदी नही होते। इससे व्यक्ति के स्वय के आलस्य और समाज के स्वय के सक्रिय जीवन के बीच विरोध की भावना तीव्र होती है। बहुत से वयोवृद्ध व्यक्ति इस विरोध को किंचित प्रतिष्ठा कम करने वाला अनुभव करते हैं क्योकि वे अब भी काम करने योग्य होते हैं। यही कारण है कि समाजवादी राज्य अवकाश प्राप्त व्यक्तियों, जो काम करना चाहते हैं, के

लिए ऐसा करना सम्भव बनाने के उपाय करते हैं। फिर भी इसका दूसरा कारण, कि यह क्या महत्वपूर्ण है, यह है कि बहुत से व्यक्तियों के लिए बलकृत अवकाश शारीरिक एवं मानसिक दोनों रूपों से एक रोगमूलक कारक होता है। तदनुसार, किसी व्यक्ति के अवकाश-ग्रहण के उपरांत उसका काम करने का अधिकार समाजवादी समाज के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि निर्मित करना है। इसने ऐसे विभिन्न रूप ग्रहण किये हैं जैसे अंशकालीन आधार पर (व्यक्ति की पेंशन कायम रखते हुए) कारखाने का काम, घर का काम, ऐच्छिक सामाजिक कार्यकलाप, सार्वजनिक पुस्तकालयों में काम, युवा लोगों के साथ व्यक्ति के अनुभव को बाँटना, और बच्चों के क्लबों का निरीक्षण। साधारणतः, सक्रियता के ये सभी रूप उस अंतर्विरोध को दूर करने में काम आते हैं जो मानव व्यक्ति, जिसने काम में अपनी सबसे पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त की है, के सामाजिक चरित्र और सम्भावनाओं के संकीर्ण क्षेत्र, जो आराम और केवल पारिवारिक जीवन में भाग लेने के निष्क्रिय रूपों के द्वारा प्रदान किया जाता है, के बीच आविर्भूत होता है।

यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि अपनी प्रकृति के अनुसार कोई व्यक्ति जीवन के स्वास्थ्यपूर्ण भाग में काम को पृथक नहीं कर सकता। यह सुविख्यात है कि जो व्यक्ति काम से दूर रहते हैं साधारणतया लम्बी आयु तक नहीं पहुँचते, जबकि वे, जो काम करते हैं, बहुत ही सक्रिय जीवन बिता चुके हैं, दीर्घ जीवन प्राप्त करते हैं। यह दिखायी देगा कि आज बहुत से व्यक्ति, जो दीर्घ आयु तक पहुँच चुके हैं वे फ्रांसीसी दार्शनिक माइकल मांटेन, जिन्होंने बताया कि वे अपने काम करते करते ही मरना चाहते हैं, के शब्दों का समर्थन करेंगे। वह अत्यंत सच्चा कथन एक 'हल्के छल' से अन्तर्विष्ट है, क्योंकि यह सामान्यतया समझा जाता है कि वे व्यक्ति, जो लम्बी आयु से काम करने में लगे रहते हैं, वे अत्यधिक दीर्घजीवी होते हैं। और जबकि इस तथ्य को वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित करना कठिन होता है फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि यह मनोवैज्ञानिक कारक के रूप में एक अत्यन्त रचनात्मक भूमिका निभाता है।

इसके साथ ही वयोवृद्ध व्यक्तियों के काम के प्रति सामान्यतया सकारात्मक रुख होते हुए भी कोई आज अतीत के प्रति अनादर करने की प्रवृत्ति भी देख सकता है मानो वयोवृद्ध व्यक्तियों के अनुभव का कोई महत्व नहीं है। फिर भी, इस बात पर बल दिया जाता है कि कोई पुस्तकों में ही सब कुछ सीख सकता है। उस दृष्टिकोण का विरोध करते हुए सोवियत वृद्धावस्था विज्ञानवेत्ता इप्पोलित डेविडोवस्की, जिन्होंने वृद्धावस्था के सम्बन्ध में एक मनोरंजक अध्ययन लिखा है जो अपने विस्तार-क्षेत्र में आधुनिक वृद्धावस्था विज्ञान की समस्याओं के दार्शनिक अधिनिर्णय के स्तर में आश्चर्यजनक है, उल्लेख करते हैं कि अनुभव और बुद्धिमत्ता हमेशा समय के साथ रहे थे और वे प्रौढ़ एवं वयोवृद्ध व्यक्तियों के विशेषाधिकार रहे हैं।

दीर्घायु और लम्बा जीवन

मानव-जीवन की प्राकृतिक अवधि क्या है ? प्राचीन चीनी सन्त राजा सोलोमन, यूनानी इतिहासकार हिरोडोटस, उपनिषदों के प्राचीन लेखक और बाइबल—सब एकमत है कि यह 70 से 80 वर्ष हैं। ओल्ड टस्टामैण्ट के भजन 90 में हम पढते हैं कि

हमारी आयु के वर्ष तीन बीसी (60) और दस वर्ष हैं
अथवा शक्ति के कारण चार बीसी (80) वर्ष भी
फिर भी उनका गर्व केवल निरर्थक श्रम और दुःख ही है
क्योंकि यह शीघ्र ही जाने वाला है, और हम कहीं दूर उड़ जाते हैं।[1]

मानव जीवन के अनित्य स्वरूप की अपने शोकगीतों में शिकायत करते हुए, प्राचीन यूनानी कवि मिमनेरमस (7वीं शताब्दी ई० पू०) कहते हैं कि मनुष्य की मृत्यु 60 वर्ष की अवस्था में आ जाती है। उनके इस मत का, सर्वविख्यात प्राचीन यूनानी सन्तों में से एक, सोलन के द्वारा विरोध किया गया जो, 80 वर्ष की अवस्था को मृत्यु की प्राकृतिक अवस्था समझते थे।

मध्यकालीन समाज में और पुनर्जागरण के दौरान मानव जीवन के सम्बन्ध में विचार कम आशावादी थे। अपनी कृति डी कटम्पटू मंडी स्यू डी मिसेरिया ह्यूमना (ऑन दी कंटेम्प्टीबल वर्ल्ड एण्ड आन ह्यूमन पॉवर्टी) में पोप इनोसण्ट III, (1161-1216) ने लिखा कि कुछ लोग 40 वर्ष की आयु प्राप्त करते हैं, जबकि वे व्यक्ति, जो 60 वर्ष के थे, केवल अपवाद ही थे। अपनी मिरोइर डी मेरिज (मिरर आव मरिज) में यूसटेच डेसचेम्प्स (चौदहवीं शताब्दी के फ्रांसीसी कवि) ने यह विचार व्यक्त किया कि स्त्रियाँ 30 वर्ष की अवस्था में वृद्धा हो गयी, पुरुष 50 वर्ष की अवस्था में वृद्ध हुए। जबकि उन्होंने 60 वर्ष को मानव जीवन की सीमा माना, वे 85 वर्ष की अवस्था तक जीवित रहे। जहाँ तक उनके इस दृढ़ कथन की स्त्रियाँ 30 वर्ष की अवस्था में वृद्धा हो जाती है, का सम्बन्ध है यह ध्यान रखना चाहिए कि उनके समकालीन डेसचेम्प्स को केवल कवि ही नहीं किन्तु महान नारी द्वेषी भी मानते थे। उनके समकालीनों के प्रमाणों के अनुसार, यह उनके अपेक्षाकृत कम सुखी पारिवारिक जीवन के द्वारा स्पष्ट होता था। जिन मतों का उल्लेख किया गया है वे अपेक्षाकृत मनमाने है और व्यक्तिगत प्रेक्षणों पर आधारित प्रतीत होते हैं।

किन्तु वैज्ञानिक ढंग से मानव जीवन की अवधि को स्थापित करने के अनेक

1 दी होली बाइबल, कैम्ब्रिज प्रिंटेड एट दी यूनिवर्सिटी प्रेस, 1903, पृ० 613

प्रयत्न भी हो चुके हैं। प्राचीनकाल से लेकर विकास के काल और जीवन की अवधि के बीच एक 'सह-सम्बन्ध' (स्थिर अनुरूपता) को खोजने के प्रयत्न किये जा चुके हैं। इस परिकल्पना का सर्वप्रथम अरस्तू के द्वारा हरिणों के सम्बन्ध में प्रतिपादित किया गया। 18वीं शताब्दी में यह फ्रांसीसी प्रकृतिवादी जार्जेज बफ्फन, जिन्होंने जादुई संख्या 7 पर अनुरूपता को आधारित किया और दृढ़तापूर्वक कहा कि जीवित प्राणियों की जीवन-अवधि उनके जन्म की अवधि से सात गुना आगे बढ़ जाती है। जीन पियरे फ्लाउरेंस गुणांक को 5 के रूप में लाते हुए और यह मानते हुए कि मानव अवयवतन्त्र का विकास 20 वर्ष की अवस्था पर बन्द हो जाता है, 100 की संख्या पर पहुँचे।[1]

19वीं शताब्दी के अन्त और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'प्रकृतिवादियों' के विचार अपेक्षाकृत अधिक आशावाद के रूप में प्रकट हुए। 19वीं शताब्दी के एक शरीर विज्ञानवेत्ता अकादमिक इवान तरखानोव का मत था कि मनुष्य की प्राकृतिक जीवन-अवधि 100 वर्ष है। उनके पोलैण्डवासी समकालीन जोजेफ मेयर ने इसे 100 110 वर्ष तक बढ़ा दिया। सोवियत वैज्ञानिक, अकादमिक अलेक्जेण्डर बोगोमोलट्स ने निष्कर्ष निकाला कि आज व्यक्ति की 'सामान्य दीर्घ आयु', 125 150 वर्ष है और इस बात पर बल दिया कि ये आवश्यक रूप से उच्चतर सीमाएँ नहीं हैं। रूसी जीव विज्ञानवेत्ता इल्या मैक्नीकोव का मत था, 150 वर्ष मानव जीवन की प्राकृतिक अवधि को प्रस्तुत करते थे।

हम विश्वास करते हैं कि जबकि ये सारे दृष्टिकोण आकर्षक हैं तो भी वे उस समस्या को नहीं सुलझा सकते जिसे वे सम्बोधित करते हैं, क्योंकि मनुष्य की प्राकृतिक जीवन-अवधि न तो जादुई संख्याओं के द्वारा, न प्राकृतिक-वैज्ञानिक परिभाषा के द्वारा नियमित होती है। इस सम्बन्ध में हम ऐसे वैज्ञानिकों, जैसे पोलैण्ड के एडवर्ड रोसेट, जो यह सोचते हैं कि यह प्राकृतिक विज्ञान की समस्या है, से सहमत नहीं हैं। जैसे अंग्रेज जीवविज्ञानवेत्ता अलैक्स कम्फर्ट सही रूप से उल्लेख करते हैं, उन प्राकृतिक विज्ञानवेत्ताओं, जो मनुष्य की प्राकृतिक जीवन अवधि 100 से 200 वर्ष तक समझते हैं के निष्कर्ष जरूरत से ज्यादा जल्दबाजी के हैं। और सोवियत जनसांख्यिकीय बोरिस उरलानिस, निस्सन्देह, इस समस्या का अध्ययन करने वाले प्राकृतिक वैज्ञानिकों की, उनकी यथार्थ जीवन प्रक्रियाओं की अवहेलना के लिए और अब हम और जोड़ेंगे, उन सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों जिनकी प्रासंगिकता का आवश्यकता से अधिक अनुमान करना कठिन है

---

1 फ्लाउरेंस जे० पी०, डी ला लांगेवाइट ह्यूमेन एट डी क्वांटाइट डी ला वी सुर लग्लोब पेरिस 1856, पृ० 86

की भूमिका की अवमानना करने के लिए भी, निन्दा करने में बिल्कुल न्याय संगत है।

किन्तु यह प्रश्न तो फिर भी रह ही जाता है मानव-जीवन की अवधि क्या है। आदर्श के रूप में, जिसे हमारे समकालीन अपेक्षाकृत उससे कम आकर्षक और वांछनीय नहीं पाते जैसे अतीत युगों के लोग पाते थे, मानव-जीवन सीमारहित और शाश्वत समझा जाता है, यह ऐसा विचार है जो अमरतत्व की भावना में स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। फिर भी, हमारे बुद्धिप्रधान युग में उस आदर्श के प्रति दृष्टिकोण सामान्यतया सन्देहवादी हैं। आज अधिकांश लोग अमरतत्व की संभावना में विश्वास नहीं करते। वे इसकी—कारण बिना नहीं—एक अनिवार्य रूप से ब्रह्मवैज्ञानिक और धार्मिक छल-कपट के रूप में व्याख्या करते हैं। और अधिक आशावादी रूप से प्रवृत्त स्वप्नदृष्टा और वैज्ञानिक भी अमरत्व को एक 'अत्यन्त सुदूर परिप्रेक्ष्य' के रूप में ही बताना पसन्द करते हैं, इस प्रकार वस्तुतः आधुनिक विज्ञान और चिकित्सा की प्रत्यक्ष उपलब्धियों और महान सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति के होते हुए भी हमारे युग में इसकी संभावना को अपवर्जित करते हैं। दूसरी ओर, आज मानव-जीवन अवधि का अधिक यथार्थ दीर्घीकरण यथासंभव इसे दीर्घ बनाने की इच्छा को उत्प्रेरित करने का काम देता है। वास्तव में, कांस्य युग में किसी व्यक्ति की औसत जीवन अवधि 18 20 वर्ष से अधिक नहीं दिखायी देती, रोमन साम्राज्य में यह 23 वर्ष थी और मध्य-कालीन समाज में 35 वर्ष तक, 19वीं शताब्दी में 44 वर्ष तक और संसार के सबसे अधिक विकसित देशों (*सोवियत संघ, समाजवादी देश, संयुक्त राज्य* अमरीका, कनाडा, पश्चिमी यूरोप) में 1970 के दशक में 68-72 वर्ष तक चढ़ गयी थी। अनुसंधानकर्ता विश्वास करते हैं कि अभी निकट भविष्य में सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी दोनों क्षेत्रों में आगे की उपलब्धियाँ मानव जीवन-अवधि में लगभग 10 वर्ष की आगे की वृद्धि को संभव बना देंगी। इसके अतिरिक्त, विशेष रूप से ऊँची आशाएँ सामाजिक कारकों (सरकारी, सामाजिक सांस्कृतिक और चिकित्सा सम्बन्धी उपायों) पर स्थापित होती हैं।

आज पहले ही से घटती बालमृत्यु-दर, उत्तरवर्ती वर्षों में संक्रामक रोगों की संख्या में कमी और निदानशास्त्र और औषधीय चिकित्सा में सुधार ने औसत जीवन-अवधि को 75 वर्ष तक बढ़ा देना संभव कर दिया है। आँकड़ों के आधार पर यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि यदि हृदय-संवहनी रोगों पर विजय पाना संभव होता तो यह किसी 60 वर्ष के व्यक्ति की औसत जीवन प्रत्याशा को 8 8 तक बढ़ा देता। इसी प्रकार यदि अर्बुदों संक्रमणों तथा दुर्घटनाओं पर विजय पाना संभव होता, यह फिर भी 1 5 वर्ष जोड़ देता। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की ऐसी ही संभावनाएँ हैं।

सक्षेप मे, वद्धावस्था का आधुनिक विज्ञान मानव-जीवन को किसी स्थिर स्तर पर कायम रखने के ठोस और व्यावहारिक काय से, औसत जीवन-अवधि का बढाकर और दुबलता के आक्रमण को पीछे ढकेल कर, अब प्रमुख रूप से सम्बन्धित है। आज एक व्यक्ति, जो 70 90 की अवस्था तक पहुँच चुका है उस जीवविज्ञान सम्बन्धी समय-सीमा जिसकी उन जातिगत गुणा के साथ साथ आनुवशिक एव व्यक्तिगत गुणो, जो अभी तक पूर्णतया समझे जान के लिए नही हो सके हैं, को पहुच रहा है।

किन्तु यह मानव दीर्घायु से सम्बन्धित तथ्या और कारको के, प्रकृति को मानव की चुनौती के रूप मे, अध्ययन करने को और अधिक महत्वपूण भी बनाता है। दीर्घायु, जिसे आज 90 वष की आयु के ऊपर पहुँचने वाली अवधि के रूप म समझा जाता है, ने मदा वज्ञानिको को आकर्षित किया है। एसी अनेक परिकल्पनाएँ और सिद्धात हो चुके है जो अन्ततोगत्वा इस या तो व्यक्तिगत विशेषताओ का अथवा स्थानीय जलवायु सम्बन्धी विशिष्टताओ काम और दैनिक जीवन के स्वरूप, सामाजिक वातावरण और आनुवशिकता का परिणाम समझत हैं। आई० मेक्नीकोव, ए० बोगोमोलेटस, और आई० पावलोव जसे प्रमुख रूसी चिकित्सा एव जीव-विज्ञान सम्बन्धी वैज्ञानिक मनुष्य की प्राकृतिक जीवन-अवधि का 100 वष स ऊपर होना मानते हैं और दीर्घायु को एक अपवाद नही किन्तु एक प्राकृतिक मनोवनानिक प्रभास समझते हैं।

दूसरी ओर, पश्चिम मे हबट स्पसर और आगस्ट वीजमन से प्रारम्भ होकर मानव-जीवन-अवधि के विस्तार के सिद्धान्त के अनक विरोधी हो चुके हैं। प्राय ये वज्ञानिक आदिम समाजा के वृद्ध लोगो का नष्ट करने की आवश्यकता से सम्बन्ध रखने वाल विचारो के बहुत समीप आ जात हैं। अमरीकी जीवविज्ञानवत्ता विलियम वोग्ट ने यह दिखाने का, कि मानव जाति के मोक्ष के लिए ससार के घनी आबादी वाले देशो म बढी हुई मृत्यु-दर आवश्यक है प्रयत्न करके सदिग्ध प्रसिद्धि अर्जित की है। उसके विचारा मे अमरीकी चीन विद्यावत्ता जी०एफ० विनफील्ड, जिन्हाने आधुनिक चीन म घटती हुई मृत्यु-दर पर दु ख प्रकट किया है, और अमरीकी जीवविज्ञानवेत्ता पाल एहरलिक, जो दी पापुलेशन बॉम्ब शीर्षक सनसनीखेज अध्ययन के लेखक हैं और जिसमे वे पृथ्वी की आबादी की अनियन्त्रित वद्धि की शल्यचिकित्सा के हस्तक्षेप की आवश्यकता वाली ककटार्बुद वृद्धि, और अधिक विशिष्टता स, ग्रह की आबादी म दो अरब व्यक्तिया की कमी, स तुलना करत हैं, के द्वारा बँटवारा किया गया है। कोई एस विशपज्ञ जसे अमरीकी चिकित्सक विलियम ओसलर, जिन्हाने केवल यह प्रस्तावित किया है कि 60 वष की आयु तक पहुँचने वाले व्यक्तिया को क्लोरोफॉम की सहायता स गुप्तमृत्यु करवा दी जाये, को खोज सकता है। फ्रासीसी जन-सांख्यिकीय बर्टिलॉन, अपनी प्रणाली म

कुछ-कुछ कम अतिवादी है, किन्तु व भी इस बात पर बल दन हैं कि समाजो क प्रयत्न वयोवद्ध व्यक्तिया के जीवन का दीर्घीकरण करन पर केन्द्रित नही होने चाहिए।

1920 के दशक म, तथाकथित सुजनन विज्ञानवेत्ताओ ने, इस बात पर जोर देते हुए कि वयोवद्ध व्यक्तिया की सख्या म कमी श्रमिका पर डाल गये भार का कम कर देगी, उस आधार-वाक्य को 'आर्थिक' कारणा से जोड दिया। फिर भी, सोवियत वैज्ञानिको और समाजवादी दशा के अतिरिक्त पश्चिम के प्रगतिशील क्षेत्रा के उनके सहयोगिया की स्थिति मानवीय सिद्धाता पर आधारित है उनका विश्वास है कि मनुष्य की जीवन-अवधि को बढाना आज के विज्ञान और चिकित्सा का महान काय है और सामाजिक सम्बधा की अग्रगामी प्रगति म एक महत्वपूण कारक ह। अत वज्ञानिका के लिए स्वाभाविक रुचि उन व्यक्तियो मे है, जिनके स्वय के जीवन मनुष्य की वतमान जीवन-अवधि का विस्तार करन के विषय म आशावाद के लिए आधार प्रदान करते है।

दीर्घायु रूस मे सदा सामाय रही है और 19वी शताब्दी म यह भी कहा जाता था कि उस सम्बध मे स्वीडन और नार्वे के सहित यह सबस अधिक अनुकूल देश रहा था। फिर भी वह दृष्टिकोण तथ्या के सम्बध मे अपेक्षाकृत सतही जान कारी पर आधारित था। आज, सोवियत सघ म वयोवद्ध व्यक्तियो की सबसे अधिक सख्याएँ काकेशस मे पायी जाती है। 1970 की जनगणना के आकडो क अनुसार इस क्षेत्र की आबादी, जा दश की सम्पूण आबादी क लगभग 7 प्रतिशत को प्रतिनिधित्व देती है, सभी अत्यन्त वद्ध व्यक्तियो के 16 प्रतिशत और ऐसे व्यक्तिया के जिनकी आयु 100 वष स ऊपर है 35 प्रतिशत के रूप मे योगदान करती है। अत्यत वद्ध व्यक्तिया के ऊँचे समानुपात वाले वग याकूतिया, ताजि किस्तान, बाइलोरशिया और बाल्टिक गणतत्रा म पाये जाते है। दीर्घायु सम्बधी अध्ययनो (सबसे अधिक व्यापक अध्ययन सोवियत विज्ञान अकादमी के मानव जाति-वर्णन सस्थान और यूयाक मे मानव पुनरुत्पादन के अध्ययन के लिए अत र्राष्ट्रीय सस्थान द्वारा क्रियावित किये गय है) ने प्रदर्शित किया है कि दीर्घायु अनेक कारको द्वारा प्रभावित होती ह। अनुसधानकर्त्ता स्वीकार करत है कि प्राकृतिक पारिस्थितिको कारक और जलवायु एक महत्वपूण भूमिका निभात हैं और ऊँचे पवतीय क्षेत्रो के विशिष्ट महत्व का उल्लेख करते है, क्योकि यह वही है (इक्वेडोर और कोलम्बिया के अतिरिक्त सोवियत सघ मे) जहाँ अधिकाश बार-बारता से वयोवद्ध व्यक्ति मिलते है। वे विशिष्ट शारीरिक एव कायिक अभि लक्षणो पर भी बल देत है। क्योकि अत्यन्त वयोवद्ध व्यक्ति साधारणतया दुबले होते है, अत चुस्त व्यक्ति, जो ताजी हवा पसद करत हैं, वद्धावस्था की दुबलता और आगिक अस्वस्थताओ से मुक्त रहते है। इन व्यक्तिया के साथ कोई मृत्यु के

'प्राकृतिक' स्वरूप, जो चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से 'आदश' समझे जाते ह, का भी अवलोकन करता है।

वयोवृद्ध व्यक्ति व्यक्तियो के रूप मे

यह भी मान लिया जाए कि हमने वद्धावस्था पर जीवन की उस निश्चित अवधि के रूप मे, जो दीर्घायु मे पराकाष्ठा पर पहुँचती है, शीघ रूप से विचार किया है। किन्तु यह फिर भी प्रश्न का केवल एक पक्ष है, जैसाकि लुसियस सेनेका द्वारा यथाय उल्लेख किया गया है, "जीवन का, एक नीति-कथा के समान, उसकी लम्बाई के लिए नही किन्तु उसके मारतत्व के लिए मूल्याकन किया जाता है, और भी "यह कोई बात नही कि हम प्रकृति के विरुद्ध चाह कितनी ही शिकायत करें, यह स्वय का उचित रूप से सचालित करती है यदि कोई यह जानता है कि इसका उपयोग कैस किया जाए तो जीवन काफी लम्बा होता है।' कोई इस बात म इन्कार नही कर सकता कि य प्रेक्षण-कथन विवेकपूण ह और आज भी तकसगत बने हुए हैं। विशेषकर, वे वद्धावस्था विज्ञान पर लागू होत है, जिसका काय, जसा हमन पहले उल्लेख किया है, केवल 'जीवन मे वर्षों को जोडना ही नहीं है, किन्तु वर्षों मे जीवन को जोडना है।' तब वयोवृद्ध लोगा के जीवन को क्या चीज अभिलक्षित करती है और उनके पृथक व्यक्तित्वा की मनोवैज्ञानिक विषय-वस्तु क्या है? हम वयावद्ध व्यक्तियो की उस मनोवज्ञानिक सरचना मे प्रवेश करने का प्रयत्न करेंगे जो अपक्षाकृत स्थिर है और उस सम्पूण अवस्था काल के प्रधान अभिलक्षणों को परिरक्षित करती है।

सवप्रथम हम एक वयोवद्ध व्यक्ति का एक अनोखा मनोवज्ञानिक चित्र अकित करें। आज के मनोवैज्ञानिक अध्ययनो म मे एक निम्नलिखित चित्र के साथ प्रस्तुत हुआ है

"वयावृद्ध लोग प्राय आत्म विश्वास के बढते हुए अभाव और स्वय से असतोप के द्वारा अभिलक्षित होत हैं। उनकी सामान्य मनावृत्ति कुछ-कुछ निराशाजनक होती है और एकाकीपन, असहायता, दरिद्रता और मृत्यु के भया स उत्पन्न चिन्ता के द्वारा अभिव्यक्त होती है। वद्ध व्यक्ति रूखे, चिड चिडे, मानवद्वेपी और निराशावादी हो जात हैं। जीवन का आनन्द लेन की उनकी सामथ्य घट जाती है और उसमे किसी अच्छी बात की अब उन्ह और अधिक आशा नही रहती। बाह्य ससार मे और नय विकासो के प्रति उनकी रुचि घट जाती है। वे प्रत्येक चीज को नापसन्द करते हैं, अत उनम चिड-चिडापन और बडबडाहट होती है। व अहवादी और आत्म-केन्द्रित और

अधिक अन्तर्वर्ती हो जाते हैं। उनकी रुचियों का क्षेत्र सिकुड़ने लगता है और वे अतीत के अनुभवों पर विचार करने की ओर प्रवृत्त होते हैं। फिर भी उनके अपने शरीरों के प्रति और अनेक भिन्न भिन्न संवेगों के प्रति बढ़ी हुई रुचि होती है और व्यक्ति में वृद्धावस्था में रोग भ्रम के तत्व प्राय मिलते हैं। आत्म विश्वास की कमी और निकट भविष्य के सम्बन्ध में अनिश्चय वृद्ध व्यक्तियों को नगण्य, कृपण, अति सतर्क, आडम्बरी, अनुदार और मोहमहीन बनाने का कारण बनता है। अपनी स्वयं की प्रतिक्रियाओं पर दुर्बल होता हुआ नियंत्रण होना है और अपने स्वयं पर उनका सामान्य नियंत्रण हीन होता है। अपने बोध, अपनी स्मरण शक्ति और बौद्धिक सक्रियता की घटती हुई तीव्रता के साथ ये सब किसी वृद्ध व्यक्ति की एक विशिष्ट प्रतिमा का सृजन करते हैं और सभी वृद्ध लोगों के कुछ सीमा तक एक दूसरे के सदृश होने का कारण बनते हैं।'[1]

चित्र वस्तुत धुंधला है, यद्यपि सोवियत मनोविज्ञानवेत्ता, यूजीन एवरबुख इस विचार को इस प्रभाव के प्रतिबन्ध के साथ, कि किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि इन परिवर्तनों में से सभी समान रूप से सभी मामलों में प्रस्तुत होते हैं कोमल बना देते हैं। निस्सन्देह जबकि, यह सही है तो किसी को इस सत्य से, जिस रूप में भी यह है, देखने में भय नहीं होना चाहिए क्योंकि इन दुखदायक व्यतिक्रमों में से अनेक वृद्धावस्था में मनुष्य के पुनर्निर्माण, एक प्रक्रिया जो, जैसा उल्लेख किया जा चुका है, अनन्य रूप से प्रतिगामी नहीं है, के साथ जुड़े रहते हैं। वृद्धावस्था किसी व्यक्ति के जीवन में कठिन काल है।

वृद्धावस्था के इस मिश्रित चित्र को और अधिक निकटता से समझने में किसी को यह जोड़ना चाहिए कि इसमें उन नकारात्मक अभिलक्षणों की अत्यधिक मात्रा अन्तर्निहित है जो किसी एक ही व्यक्ति में कम ही पाये जाते हैं। वे वर्गीकरण विद्या के दृष्टिकोण से भी आवश्यकता से अधिक वर्तमान हैं। किसी भी अवस्था में स्वयं वर्गीकरण विद्या को और अधिक यथार्थ बनाया जा रहा है। विशेष रूप से जर्मन वृद्धावस्था विज्ञानवेत्ता फ्रिट्ज जीस के द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण विद्या वृद्धावस्था के एवं वयोवृद्ध व्यक्तियों के तीन प्रकारों के बीच अन्तर प्रदर्शित करते हैं

1 नकारवादी, जो इस बात से इन्कार करता है कि वह वृद्धावस्था के लक्षणों से सम्पन्न है।

2 बहिर्वर्ती (कार्ल जुंग की शब्दावली के अनुसार) जो वृद्धावस्था के आगमन

---

1 ई०एस० एवरबुख, रेस्स्रोइस्तवा साइखीचेस्को॰ डियाटेलनोस्टी वी पोझ्डनम वोझरास्त (साइकोलॉजिकल डिसऑर्डर्स इन एडवान्स्ड ओल्ड एज) लेनिनग्राड, मेडित्सिना पब्लिशर्स, 1969, पृ० 27-28

को तो स्वीकार करता है किन्तु इस स्वीकारोक्ति तक, बाह्य प्रभावो और इद-गिद के यथाथ, विशेषकर अवकाश ग्रहण के उपरात (युवा पीढी, युवा व्यक्तियो के साथ विचारो और रुचियो म भेद, सम्बन्धियो और मित्रो की मृत्यु, तकनीकी म और सामाजिक जीवन मे नवीकरण, परिवार म परिवर्तित होती हुई स्थिति) को देखने पर, पहुचता है।

3 अ तवर्ती, जो वद्धावस्था का बौद्धिक एव भावात्मक धरातल पर (नयी रुचियो के प्रति मन्दता और अतीत का अपेक्षाकृत सजीव स्मरण, आध्यात्मिक प्रश्नो म अभिरुचि, घटती सचलनता, दुबल भावनाएँ, मैथुनीय प्रवत्तियो का ह्रास और शाति के लिए आकाक्षा) अनुभव करता है।

एफ० जीसे की वर्गीकरण विद्या का मूल्याकन करने म हम ध्यान रखें कि यह पहले ही से इस अथ मे, कि कोई अनेक वयोवृद्ध व्यक्तियो की एक अथवा कई प्रकार के आयु के अनुसार परिवतनो की 'तुलना' कर सकता है और किसी हद तक उनके व्यक्तित्व के तदनुरूप पुनर्निर्माण का मूल्याकन कर सकता है, वृद्धावस्था के वास्तविक प्रभाम के अत्यधिक समीप है। फिर भी, हमे मानना चाहिए कि इस प्रकार का मूल्याकन सदा सन्निकट ही होगा क्योकि मनोवज्ञानिक स्वरूपो का उपयोग केवल एक विश्लेषणात्मक प्रणाली है और यथाथ जीवन मे ये स्वरूप हमे 'विशुद्ध रूप मे' नही मिलते। वर्गीकरण विद्या का उपयोग एक भिन्न भूमिका अदा करता है। यह वद्धावस्था की अभिव्यक्तियो को अनुसधाताओ और कर्त्ताओ दोनो के लिए ऐसे सन्दभ मानदण्ड, जो वयोवृद्ध व्यक्तियो के साथ ठोस काम के लिए, एक आधार के रूप म काम देत हैं, प्रस्तुत करते हुए वर्गीकृत करता है। किन्तु, उपयोगी चाहे वे हो सकते है, वर्गीकरण विद्या विशिष्टीकरण। का सीमित प्रयोग ही होता है। विशेषकर, वे रवीन्द्रनाथ ठाकुर अथवा जोहन सबास्टियन बच जैसे 'असाधारण व्यक्तित्वो', जो वृद्धावस्था मे भी आश्चयजनक सृजनात्मक शक्तियो के धनी थे, की विलक्षण सृजनशीलता का स्पष्टीकरण करने मे कुछ भी सहायता नही देत। इसी प्रकार, सामान्य व्यक्तित्वो के मूल्याकन मे वर्गीकरण विद्याओ का उपयोग आयु के अनुसार परिवतनो (लैंगिक, सवेदी-बोधात्मक, बौद्धिक) की विशिष्ट अभिव्यक्तियो का स्पष्टीकरण देने मे प्राय सहायक नही होता। बोरिस अनानियेव के अनुसार व्यक्तित्व सम्पर्कों और मध्यवर्ती सम्बन्धो की विलक्षणता के द्वारा अभिलक्षित होता है। और एक वयोवद्ध व्यक्ति के व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त करने म उस माग को जानना विशेष रूप से महत्वपूण है जिसका व्यक्तित्व ने अपन सपूण व्यक्ति-वत्त के दौरान विकास किया। यहाँ वर्गीकरण विद्या का उपयोग केवल उस माग को, जिसम व्यक्ति-वत्त के दौरान आयु के अनुसार परिवतना के एक विशिष्ट स्वरूप ने विकास किया और उस माग को,

जिसमे यह उस व्यक्ति की खास विशेषताओ से सम्बन्धित है, स्थापित करने मे सहायता दे सकता है। दुर्भाग्य से आधुनिक मनोविज्ञान अब केवल अनुसधान के और उन प्रश्नो के जो प्राप्य उत्तरो की सख्या से अत्यधिक आगे बढ जाते हैं, उसी स्तर तक पहुँच रहा है। इसी कारण वयोवृद्ध व्यक्तियो के व्यक्तित्व की मनोवैज्ञानिक विषय वस्तु के सम्बन्ध का हमारा विवरण ज्ञान के वतमान स्तर तक ही सीमित है।

× × ×

विज्ञान मानव जीवन को व्यक्तित्व विकास म आयु-सापेक्ष परिवतनो की एक विशिष्ट प्रक्रिया के रूप मे देखता है। दशनशास्त्र मे 'प्रक्रिया' शब्द का सम्बन्ध, परम्परागत रूप से, किसी प्रभास के अन्तर्निहित परिवतन और निश्चित सिद्धान्तो के द्वारा नियन्त्रित इसके अन्य प्रभास मे सक्रमण से है। हमने जीवन की अवस्थाओ के ज्ञान को व्यक्तित्व रूपान्तरण की उस प्रक्रिया के रूप मे, जो निश्चित नियत्रक सिद्धान्तो के अधीन है, अपने वतमान अध्ययन के आधार के रूप मे प्रयुक्त किया है। हमने मानव जीवन की अवस्थाओ के इतिहास को बार बार अतीत की ओर मुडते हुए प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है, क्योकि हम विश्वास करते हैं कि ऐतिहासिक-सैद्धान्तिक विश्लेषण के अभाव मे आयु-सापेक्ष मनोविज्ञान केवल उन साधारण तथ्यो का वणन बनकर रह जायेगा जिनको केवल अकित करना, चाहे वे कितने ही विस्तृत हो, महत्वपूर्ण व्यावहारिक प्रश्नो का उत्तर प्रस्तुत नही कर सकता। पीढियो के प्रतिस्थापन और अनुक्रमण के माध्यम से मानव जाति के इतिहास मे सम्बद्ध होकर आयु श्रेणियाँ असाधारण रूप से उन सामाजिक एव सास्कृतिक सिद्धान्तो, जो मानव के अस्तित्व को नियन्त्रित करते हैं, के प्रतिसवेदी है और अनेक अशो मे उनके मूतरूपो को प्रस्तुत करती हैं।

हमने देखा है कि सम्पूण व्यक्ति-वृत्त के दौरान और मानव-जीवन की सभी अवस्थाओ म व्यक्तित्व विकास मे मनुष्य की उन पदाथ सापेक्ष गतिविधियाँ जो विकास की विशिष्ट सामाजिक स्थितियों म उत्पन्न होती हैं और जो महत्वपूर्ण नवीन मनोवैज्ञानिक रूपान्तरणो के आविर्भाव का कारण बनती हैं, के द्वारा एक मौलिक भूमिका निभाई जाती है।

किसी व्यक्ति के सारे जीवन म व्यक्तित्व रूपान्तरणो की बुनियादी दिशाएँ, उसकी उन गतिविधियो जो व्यक्तित्व के आत्म विकास म भी अन्तर्निहित होती हैं के परिवतनो के परिणामस्वरूप निश्चित होती हैं। हमने कई आयु वर्गों के सन्दभ म उस ढग को चित्रित किया है जिसम विशिष्ट अवस्थाएँ व्यक्तियो के द्वारा आत्मसात् की जाती हैं और जिनम वे एक अवस्था मे अगली मे पहुँचती हैं।

इन निष्कर्षों पर पहुँचने म हम अपने विश्लेषण की त्रुटियो म पूर्णतया अवगत

हैं और मानते हैं कि कुछ भागों में हमने अपने आपको या तो विशुद्ध विवरण वाले (प्राय रूपरेखात्मक) तथ्यात्मक प्रवेश भाग तक सीमित रखा है अथवा जो सबसे अधिक संभावित उत्तर होते प्रतीत होते थे उनके तदनुरूप परिकल्पनाओं पर विचार किया है। कारण यह है कि हमारा सम्बन्ध केवल मानव जीवन में आयु-सापेक्ष परिवर्तनों के सामान्य मनोवैज्ञानिक विवरण एवं व्याख्या से ही था।

□□